राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ६६

मत्स्यप्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन



प्रकाशक

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ६६

मत्स्य-प्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन

प्रकाशक

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यत: अखिल भारतीय तथा विशेषत: राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर;
ऑनरेरि मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी;
निवृत्त सम्मान्य नियामक (ऑनरेरि डायरेक्टर),
भारतीय विद्याभवन, बम्बई; प्रधान सम्पादक,
सिंघी जैन ग्रन्थमाला, इत्यादि

ग्रन्थाङ्क ६६

मत्स्य-प्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

मत्स्य-प्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन

1234

लेखक

डॉ. मोतीलाल गुप्त, एम. ए., पी-एच. डी.
रीडर हिन्दी-विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर.

प्रकाशनकर्त्ता
राजस्थान राज्याज्ञानुसार
सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०१९ | भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८४ | खिस्ताब्द १९६२
प्रथमावृत्ति १००० | मूल्य ७.०० 6.04

मुद्रक—हरिप्रसाद पारीक, साधना प्रेस, जोधपुर

RAJASTHAN PURATANA GRANTHAMALA

PUBLISHED BY THE GOVERNMENT OF RAJASTHAN

A series devoted to the Publication of Samskrit, Prakrit, Apabharamsa, Old Rajasthani-Gujarati and Old Hindi works pertaining to India in general and Rajasthan in particular.

*

GENERAL EDITOR

PADMASHREE JINVIJAYA MUNI, PURATATTVACHARYA

Honorary Director, Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur; Honorary Member of the German Oriental Society, Germany; Retired Honorary Director, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay; General Editor, Singhi Jain Series etc. etc.

* *

No. 66

MATSYA PRADESH KI HINDI SAHITYA KO DEN

By

DR. MOTILAL GUPTA,
M.A., Ph.-D.

Reader, Hindi Department,
University of Jodhpur,
Jodhpur.

* * *

Published

By

The Hon. Director, Rajasthan Prachya Vidya Pratisthana
(Rajasthan Oriental Research Institute)
JODHPUR (RAJASTHAN)

V. S. 2019] [1962 A.D.

सञ्चालकीय वक्तव्य

प्राचीन काल में राजस्थान के विभिन्न भाग विभिन्न नामों से प्रसिद्ध थे। उदाहरण-स्वरूप राजस्थान का उत्तरी भाग जाँगल, पश्चिमी भाग मरुकान्तार, दक्षिणी डूंगरपुर-बांसवाड़ा का प्रदेश वागड़, मेवाड़ का प्रदेश शिवि और मेदपाट, पुष्कर का क्षेत्र पुष्करारण्य, अर्बुदप्रदेश अर्बुदारण्य और अलवर-जयपुर का अधिकांश भाग मत्स्य कहा जाता था। महाभारत-काल में मत्स्य-प्रदेश का विराट नगर विशेष प्रसिद्ध था जहाँ पाण्डवों ने अज्ञातवास किया था। वीर अभिमन्यु की विवाहिता उत्तरा भी इसी विराट की राजकुमारी मानी जाती है। विराट के खण्डहर जयपुर-क्षेत्र में अब भी विद्यमान हैं और शिलालेखों में उत्कीर्ण जो अशोक की धर्मलिपियां भारत के इने-गिने स्थानों में मिलती हैं उनमें एक विशिष्ट स्थान इस वैराट का भी है। इस प्रकार मत्स्य-प्रदेश हमारे देश में राजस्थान का एक अति महत्त्वपूर्ण और प्राचीन इतिहास-प्रसिद्ध भू-भाग है।

भारतीय स्वाधीनता के पश्चात् देशी रियासतों का एकीकरण प्रारम्भ हुआ तो मत्स्य-राज्य के अन्तर्गत अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली की रियासतें सम्मिलित की गईं। दिल्ली के निकट होने से मत्स्य-प्रदेश का भौगोलिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक दृष्टि से मध्यकाल में और भी विशेष महत्त्व रहा है। ब्रिटिश-शासन के विरुद्ध भरतपुर का स्वाधीनता-संघर्ष भारतीय और राजस्थानी इतिहास की एक गौरवपूर्ण घटना है जिसका हृदय-स्पर्शी चित्रण हमारे अनेक भाषाकवियों ने किया है।

मत्स्य-प्रदेश के शासकों से प्रोत्साहन प्राप्त कर अथवा स्वान्तःसुखाय अनेक साहित्यकारों और विद्वज्जनों ने संस्कृत, हिन्दी तथा राजस्थानी में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में ऐसी रचनाएँ हमारे ग्रंथ-भंडारों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं जिनकी विधिवत् खोज, अध्ययन, सम्पादन और प्रकाशन का कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण है।

राजस्थान-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान का एक प्रधान उद्देश्य यह रहा है कि राजस्थान के विभिन्न भागों में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज की जावे और राजस्थान की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि के विषय में आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित किये जावें। इसी दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। राजस्थान के अन्य भू-भागों के प्राचीन हस्त-लिखित ग्रंथों और साहित्य के विषय में प्रकाशन के लिए भी हम समुत्सुक रहेंगे।

विद्वान् लेखक श्रीयुत डॉक्टर मोतीलालजी गुप्त ने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पी-एच० डी० की उपाधि के लिए लिखा है। उन्होंने इस कार्य के लिए मत्स्य प्रदेश के ग्रंथ-भंडारों का प्रत्यक्ष अवलोकन कर परिश्रमपूर्वक अनेक अज्ञात हिन्दी ग्रंथों तथा ग्रंथकारों के विषय में जानकारी प्राप्त करके अध्ययन प्रस्तुत किया है। लेखक की दृष्टि प्रबन्धगत विषय के

अनुसार मुख्यतः हिन्दी-ग्रंथों और हिन्दी-ग्रंथकारों की ओर रही है जिससे मत्स्य-प्रदेश में रचित बहुत से संस्कृत तथा राजस्थानी भाषा के ग्रंथों और उनके कर्त्ताओं का विवरण इस प्रबन्ध में नहीं आ सका है। फिर भी मत्स्यप्रदेशीय साहित्य की एक रूपरेखा अवश्य तैयार हो गई है। श्रीयुत गुप्तजी ने कई दिनों तक प्रतिष्ठान की ग्रंथ-सूचियों और ग्रंथों का निरीक्षण एवं अध्ययन करके अपने प्रबन्ध में आवश्यक संशोधन और परिवर्द्धन भी कर लिए हैं।

आशा है कि विद्वज्जन प्रस्तुत प्रकाशन से पूर्ण लाभान्वित हो कर विद्वान् लेखक के परिश्रम को सफल बनावेंगे।

मुनि जिनविजय
सम्मान्य संचालक
राजस्थान-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान,
जोधपुर।

जोधपुर,
विजयादशमी, वि० सं० २०१६

आमुख

प्रस्तुत प्रबन्ध का शीर्षक है "हिन्दी साहित्य को मत्स्य प्रदेश की देन"। निबन्ध का विषय चुना गया था साहित्य की उस अमूल्य निधि को देख कर जो हस्तलिखित पुस्तकों, खोज-सूचनाओं अथवा मुद्रित पुस्तकों के रूप में इतस्तत: बिखरी हुई पड़ी है। उस सामग्री के महत्त्व और उपयोगिता पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। अब तक हिंदी साहित्य के जो इतिहास लिखे गए हैं उनमें अधिकांशतया प्रधान लेखकों, उनकी रचनाओं और इस साहित्य के समष्टिगत प्रभाव पर ही प्रकाश डाला गया है। विभिन्न जनपदों में जो साहित्य-सृजन हुआ उसके मूल्यांकन पर जो ध्यान दिया जाना चाहिये था वह नहीं दिया गया। हाँ, इस सम्बन्ध में डॉक्टर सत्येन्द्र का 'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' एक अपवाद अवश्य है। परिणाम यह हुआ कि यहां की बहुत सी मूल्यवान सामग्री अभी तक अप्रकाशित पड़ी हुई है। इस प्रसंग में मत्स्य प्रदेश की अपनी एक विशेषता है। इस जनपद का अधिकांश भाग ब्रज भाषा-भाषी है। शेष में शुद्ध ब्रज भाषा का प्राचुर्य न होते हुए भी उसका समुचित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। फिर सामन्तशाही समय में विभिन्न राज्यों के अन्तर्गत होने के कारण मत्स्य के प्रत्येक भाग में साहित्य को विभिन्न रूप में राज्याश्रय प्राप्त हुआ। राज्याश्रय प्राप्त साहित्य भी अपना स्थान रखता है। राजस्थान की सांस्कृतिक विकास योजना के साथ मत्स्य प्रदेश के इस साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रस्तुत निबन्ध इसी का प्रयास है कि राजस्थान के समष्टिगत साहित्य-योग में मत्स्य की सेवा का मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाये।

इस विषय पर अभी तक किसी भी जिज्ञासु ने प्रकाश नहीं डाला। इधर-उधर लिखे गए कुछ लेख नगण्य मात्र ही हैं। अतएव, उनका आभार मानते हुए भी यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय, उसकी सामग्री, प्राय: सभी मौलिक है और सामग्री के सभी अंग मूल रूप में लेखक के अध्ययन का विषय रहे हैं। अपने प्रबन्ध से पूर्व प्रकाशित किसी भी सम्मति को बिना देखे और जांच किए प्रमाणित नहीं मान लिया गया है। मुंशी देवीप्रसाद एवं महेशचन्द्र जोशी ने अलवर और करौली के कुछ कवियों की कविता का संक्षिप्त परिचय, बहुत दिन हुए, लिखा था; परन्तु यह परिचय सामग्री की उपलब्धि के अनुपात में इतना कम है कि अपने ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसका दूसरा कोई भी उपयोग नहीं रह जाता। भरतपुर के बैकुंठवासी महाराजा सवाई श्री कृष्णसिंहजी के राज्यकाल में 'भारत वीर' नाम का एक सुन्दर साप्ताहिक निकलता था। इस में कभी-कभी कुछ लेख मत्स्य प्रदेश के लेखकों के विषय में निकल जाते थे। कुछ नए लेखकों को भी इससे प्रोत्साहन मिलता था। परन्तु अद्यावधि कोई ऐसा मार्ग नहीं है जिसके द्वारा समस्त साहित्यकारों की रचनाओं का रसास्वादन कराया जा सके। अलवर से निकलने वाले 'तेज प्रताप' और 'अरावली' का भी केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही रह गया है।

भरतपुर राज्य में प्रचुर सामग्री वर्तमान थी। परन्तु खोज करने पर पता चला कि उसका अधिकांश भाग पं० मयाशंकर याज्ञिक द्वारा भरतपुर से बाहर गया और उसका

अभी तक कोई विशेष उपयोग नहीं हो पाया। 'याज्ञिक' जी के निजी संग्रहालय के रूप में वह प्रसिद्ध है। यही हाल उस सामग्री का हुआ जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से खोज कार्य की सूची बनाने वालों को दी गई थी। सच तो यह है कि इन दुर्घटनाओं के कारण आज के परिवार जिनके पास हस्तलिखित पुस्तकों का भंडार है अब किसी भी खोज करने वाले पर विश्वास नहीं करते और अपनी पुस्तकें दिखाने में भी आना-कानी करते हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को भी इन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। आशंकापूर्ण वातावरण ने उसके मार्ग में अनेक शूलों को अंकुरित कर उसे पर्याप्त रूप से कंटकाकीर्ण कर दिया। परन्तु प्रभु के प्रसाद से सभी विघ्न-बाधाएँ दूर होती चली गईं। मत्स्यप्रदेश वासी होने के कारण ही कदाचित यह संभव हो सका।

लिखित सामग्री की अभिव्यक्ति के प्रकरण में अनेक विचार सामने आये। कभी विचार हुआ कि सामग्री का विभाजन राजाओं अथवा आश्रयदाताओं के राज्यकाल के अनुसार किया जाये और इस प्रकार प्रत्येक काल के साहित्य का मूल्यांकन हो। परन्तु इसमें दुविधा यह थी कि मत्स्य के अन्तर्गत सभी राज्यों का पृथक-पृथक अन्वेषण करना पड़ता और यह विवेचन कभी पुनरुक्तियों से बच न पाता। दूसरा विचार यह उत्पन्न हुआ कि क्रमागत रूप से लेखकों और उनकी रचनाओं का विवरण दे कर फिर उसकी आलोचना की जाये। परन्तु यह शैली भी अधिक उपयोगी सिद्ध न हुई क्योंकि ऐसा करने से प्रबन्ध केवल 'नॉट्स' जैसा रूप धारण कर लेता। अन्त में यही उचित समझा गया कि विषय के अनुसार सामग्री को बाँट दिया जाये। इस प्रकार के विभाजन से समस्त सामग्री की क्रमागत प्रवृत्तियों का भी पता चल सकेगा और उनका मूल्यांकन करने में भी सुगमता हो जायगी। तीसरा लाभ यह होगा कि हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों के दृष्टिकोण से अध्ययनकर्ता को यह भी मालूम हो सकेगा कि किसी भी प्रसंग में मत्स्य प्रदेश की देन क्या है? कितनी है? और कैसी है? वास्तव में यही इस प्रबन्ध का लक्ष्य भी था। प्रबन्धकर्ता का विश्वास है कि इस प्रणाली द्वारा वैज्ञानिक अनुसंधान की रक्षा हो सकी है और व्यवहारिकता का भी निर्वाह हो गया है। फिर मत्स्य प्रदेश की जो विशेषता है वह भी सामने आ गई है। उदाहरण के लिए "अनुवाद"-प्रसंग। आलोच्य काल का यह प्रसंग बड़ा ही मधुर और महत्त्वपूर्ण है। आज जब अहिन्दी भाषा-भाषी अथवा अंग्रेजी के हिमायती हिन्दी साहित्य में प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद तक के अभाव की ओर इंगित करते हैं तो यह प्रकरण उन्हें एक प्रकार की चुनौती देता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि अप्रकाशित होने के कारण यह सभी साहित्य जन-साधारण से दूर पड़ा है परन्तु इससे यह तो स्पष्ट है ही कि हिन्दी वालों ने उसकी अवहेलना ही नहीं की, उसके महत्त्व को भी नहीं समझा।

संक्षेप में प्रस्तुत प्रबन्ध सामग्री की प्रचुरता, मूल पुस्तकों के अध्ययन और परिणाम, सामग्री की अभिव्यक्ति एवं अब तक की प्रकाशित एतद्विषयी साहित्य के सदुपयोग आदि सभी दृष्टिकोणों से मौलिकता, गम्भीरता और विशदता के प्रयास का विनम्र दावा कर सकता है। प्रस्तुतकर्ता को तभी प्रसन्नता होगी जब विद्वद्वर्ग अपनी सम्मति से इस में दिए गए परिणामों को अपनी सहमति प्रदान करेगा।

मत्स्य प्रदेश में उपलब्ध इन विविध कृतियों का अध्ययन अनेक प्रकार से उपयोगी है—न केवल कुछ विशिष्ट कवियों के कृतित्व से ही परिचय होता है वरन् उस समय की प्रचलित साहित्यिक प्रवृत्तियों और विद्याओं का भी परिज्ञान होता है। साथ ही राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक प्रसंगों पर भी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। राजस्थान का हस्तलिखित साहित्य प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है और कुछ लोगों ने इस ओर कार्य भी किया है। इस प्रसंग में 'शिवसिंह-सरोज', 'मिश्रबंधु-विनोद', 'राजस्थान का पिंगल साहित्य', आदि पुस्तकों के नाम लिए जा सकते हैं परन्तु मत्स्यप्रदेश से संबंधित सामग्री इन कृतियों में भी उपलब्ध नहीं होती और लगभग यही दशा नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों की है।

इस शोध-प्रबंध में कुछ ऐसे कवियों का नामोल्लेख भी हुआ है जो मत्स्यप्रदेश के तो नहीं कहे जा सकते किंतु जिनका निकटतम संबंध इस प्रदेश के राजाओं अथवा सामान्य जनता से रहा है, यथा—रसरासि, कलानिधि, देवीदास आदि। एक बात मैं और कह दूँ। इस प्रबंध में मेरा उद्देश्य मत्स्य के संपूर्ण साहित्य का अनुशीलन नहीं रहा और न ऐसा संभव ही होता। मैंने तो इस बात की चेष्टा की है कि प्राप्त सामग्री में से ऐसा चुनाव किया जाय जिससे इस प्रदेश की प्रमुख काव्य-प्रवृत्तियों का परिचय मिल सके। इसी दृष्टि से कवियों की जीवन-संबंधी सामग्री का भी प्रायः अभाव मिलेगा। इस संबंध में मैंने अपना दृष्टिकोण विवरणात्मक और आलोचनात्मक रखा है किन्तु अब मैं समझने लगा हूं कि भाषा-विषयक अध्ययन भी बहुत उपयोगी होगा। अलवर के जाचीक जीवण कृत 'प्रतापरासो' को इस दृष्टि से संपादित किया जा चुका है और भरतपुर के सोमनाथ संबंधी काव्यों का भाषा-विषयक अध्ययन जारी है।

इस शोध प्रबंध का निर्देशन-कार्य आचार्यवर डॉ० सोमनाथजी गुप्त, अवकाश प्राप्त प्रिंसिपल महाराजा कॉलेज, जयपुर तथा वर्तमान संचालक राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के द्वारा हुआ। मत्स्य प्रदेश के हस्तलिखित साहित्य में डॉक्टर साहब की रुचि बहुत समय से रही है और जब मैंने यह विषय प्रस्तावित किया तो आपने उसका प्रसन्नतापूर्वक अनुमोदन किया। अपने साथ कुछ हस्तलिखित ग्रंथों का पाठ कराना, अनेक पते-ठिकाने बताना और हस्तलिखित ग्रंथों को उपलब्ध करने की युक्तियां बताना डॉक्टर साहब जैसे साधन-सम्पन्न व्यक्ति का ही कार्य था। यह एक सुखद प्रसंग है कि इस प्रान्त के प्रमुख साहित्यकार का नाम भी 'सोमनाथ' ही है और अभी तक मैं इन सोमनाथजी में उलझा हुआ हूँ। अपने शोध-छात्रों को जो सुविधाएं, प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन डॉ० गुप्त देते हैं वह अनुकरणीय है। इस स्थान पर इस विषय की ओर ध्यान आकृष्ट करने वाले स्वर्गीय पंडित नन्दकुमार (सन्यास लेने पर बाबा गुरुमुखिदास) का कृतज्ञतापूर्वक नाम स्मरण करना भी आवश्यक है। वे कहा करते थे 'मत्स्य क्या भरतपुर के हस्तलिखित साहित्य पर ही दर्जनों शोध-प्रबंध प्रस्तुत किए जा सकते हैं।' यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकता है किन्तु यहाँ की सामग्री का यत्किंचित अनुशीलन करने के पश्चात मेरा भी मत है कि शोध-सामग्री यहाँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। स्वर्गीय पंडितजी के व्यक्तिगत नोटों से मैंने काफी लाभ उठाया। इस प्रसंग में मेरे गुरुवर पं० मदनलालजी शर्मा, प्रसिद्ध अन्वेषक मुनि कान्तिसागरजी, स्व०

भरतपुर नरेश के पूज्य डीग वाले पंडितजी, पं० हरेकृष्ण, वैद्य देवीप्रकाशजी अवस्थी, पं० श्यामसुन्दर सांख्यधर आदि के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। श्री हिन्दी साहित्यसमिति, भरतपुर; राजकीय पुस्तकालय, भरतपुर; अलवर-म्यूजियम; अलवर-नरेश के व्यक्तिगत पुस्तकालय के अधिकारियों आदि को अनेक धन्यवाद देना भी मेरा कर्तव्य है। प्राप्त सामग्री का बहुत कुछ अंश इन्हीं स्थानों से प्राप्त हुआ। भरतपुर के महाराजा व्रजेन्द्र-सवाई श्री व्रजेन्द्रसिंहजी तथा अलवराधीश श्री तेजसिंह जू देव के प्रति भी मैं विनम्र आभार अर्पित करता हूँ। इन विद्याप्रेमी नरेशों के सहयोग तथा सुझावों का अनेक स्थानों पर उपयोग हुआ है। मुझे कहा गया कि मेरे शोध-प्रबंध के परीक्षक मेरे आदरणीय गुरुवर डॉ० धीरेन्द्रजी वर्मा तथा आगरा हिंदी विद्यापीठ के डॉ० गौरीशंकर सत्येन्द्र थे। इन दोनों विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट सुझावों का यथा-संभव समावेश करने का प्रयास कृतज्ञतापूर्वक किया गया है।

इस कृति का प्रकाशन राजस्थान सरकार के राजस्थान प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा हो रहा है। संभवतः इस प्रतिष्ठान द्वारा किसी भी शोध-प्रबंध के लिए दिया गया, यह प्रथम सम्मान है। प्रतिष्ठान के सम्मान्य संचालक, विविध भाषाओं के अद्वितीय विद्वान और प्रसिद्ध खोजकर्ता मुनिवर पद्मश्री जिनविजयजी ने इस प्रबन्ध को अच्छी तरह देखने की कृपा की और राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित करने के लिए उपयुक्त समझा। उनके द्वारा मिला यह प्रोत्साहन मेरे लिए अत्यन्त मूल्यवान है। प्रतिष्ठान के उपसंचालक पंडित प्रवर गोपालनारायणजी बहुरा के अनेक मूल्यवान परामर्श तथा पुस्तक-प्रकाशन में अभिरुचि के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। प्रवर शोध सहायक श्री पुरुषोत्तमलालजी मेनारिया ने अपने अथक परिश्रम द्वारा परिशिष्ट नं० १ तथा २ को उनका वर्तमान स्वरूप प्रदान किया, साथ ही प्रतिष्ठान के अन्य वरिष्ठ कर्मचारी भी इस कार्य में सहयोग प्रदान करते रहे – इन सभी के प्रति मैं आभारी हूँ। इस पुस्तक का मुद्रण-कार्य सुन्दर रूप में सम्पन्न कराने के लिए मैं साधना प्रेस के व्यवस्थापक श्री हरिप्रसादजी पारीक का भी कृतज्ञ हूँ।

—मोतीलाल गुप्त

हिन्दी विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय,
जोधपुर, तारीख ८ दिसम्बर, १९६२ ई०

समर्पण

अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रहकर्ता मेरे पूज्य पिता

दीवान श्री रामचन्द्रजी

तथा

स्नेहमयी जीजी (पूज्य माताजी) के चरणों में

सादर समर्पित

—मोतीलाल गुप्त

विषय - सूची



• राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के शाखा-कार्यालय।

× मत्स्य-प्रदेश के स्थान जहां लेखक ने हस्तलिखित ग्रन्थों का परीक्षण किया— १ तिजारा, २ कामा, ३ डीग, ४ राजगढ़, ५ लछमनगढ़, ६ सिनासिनी, ७ कुम्हेर, ८ भरतपुर, ९ बयाना, १० धौलपुर, ११ करौली, १२ हलेना और १३ अलवर।

मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन

[सन् १७५०-१९०० ई०]

अनुसंधेय काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

अध्याय १

पृष्ठभूमि

मत्स्य प्रदेश, चार राज्यों से मिल कर बना है—

१. अलवर,
२. भरतपुर,
३. धौलपुर तथा
४. करौली ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् उपर्युक्त चारों राज्यों को मिला कर एक संयुक्त राज्य 'मत्स्य' के नाम से बना दिया था । कहा जाता है, इन चारों राज्यों का संयुक्त नाम 'मत्स्य' श्री कन्हैयालाल माणिक्यलाल मुंशी के मस्तिष्क की उपज है । अब तो मत्स्य का भी विलीनीकरण हो गया और ये चारों रियासतें राजस्थान का अंग बन चुकी हैं ।

मत्स्य-प्रदेश का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में भी आता है और यह स्पष्ट है कि यह जनपद पहले भी था । इसकी स्थिति के विषय में विभिन्न अनुमान हैं, किन्तु कुरुक्षेत्र एवं मत्स्य को पांचाल तथा शूरसेन देश के अंतर्गत मानना चाहिये । मनु के कथनानुसार उत्तर-पश्चिम भारत में कुरुक्षेत्र वा थानेश्वर का निकटवर्ती प्रदेश, पांचाल या कान्यकुब्ज का अंचल, शूरसेन वा मथुरा प्रदेश इन सब जनपदों के समीप ही मत्स्य देश था ।[1]

महाभारत के भीष्म पर्व में तीन मत्स्य देशों का उल्लेख मिलता है —

१. पश्चिम में स्थित मत्स्य देश,
२. पूर्व में चेदि (बुंदेलखंड) में तथा
३. दक्षिण में दक्षिण कोसल के निकट ।

किन्तु मनु द्वारा प्रतिपादित मत अधिक मान्य है जिसमें आदि-मत्स्य का वर्णन

---

[1] मत्स्य सरकार द्वारा बनाई गई ऐतिहासिक कमेटी की रिपोर्ट । अपूर्ण तथा अप्रकाशित खोज पर लिखे कुछ पृष्ठों के आधार पर । (उपलब्धि-स्थान—श्री हरिनारायण किंकर, अलवर) ।

किया गया है। इसी आदि मत्स्य देश में पांडवों ने अज्ञातवास किया था। जयपुर राज्य के अंतर्गत 'बैराठ'[१] और अलवर राज्य के अंतर्गत 'माचाड़ी'[२], दो प्राचीन गांवों के नाम क्रमशः 'विराट' तथा 'मत्स्य' के प्रतीक अब भी विद्यमान हैं। मत्स्य के समीप ही जिस कुशला जनपद का उल्लेख है[३] वह कुशलगढ़ भी माचाड़ी से बैराठ जाने के रास्ते पर है। महाभारत-कालीन कुरुक्षेत्र में पटियाला से यमुना के पूर्व तक का देश भी इसमें शामिल था।[४] अलवर राज्य के उत्तरी भाग तिजारा तहसील आदि कुरुक्षेत्र के अंतर्गत थे और शूरसेन के अंतर्गत मथुरा के आस-पास का प्रदेश, व्रज, अलवर का पूर्वी हिस्सा, रामगढ़, गोविन्दगढ़ आदि, भरतपुर, धौलपुर के राज्य तथा करौली का बहुत अंश था। यही कुरुक्षेत्र तथा थानेश्वर का प्रान्त मत्स्य कहलाता था। कुरुक्षेत्र से दक्षिण तथा शूरसेन के पश्चिम में इसकी स्थिति थी। अतएव इन चार राज्यों को सम्मिलित करने पर 'मत्स्य' नाम बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ।

विराट देश अति प्राचीन है। इसका उल्लेख चीनी तथा मुसलमान इतिहासकारों ने भी किया है।[५] इस देश पर मुसलमानों के काफी हमले हुए और धर्म-परिवर्तन के लिए अत्याचार भी हुए। सम्राट अशोक के समय में बैराठ नगर अति समृद्धशाली था। राव बहादुर चिंतामणि विनायक वैद्य ने इसे शूरसेन के पश्चिम में माना है। शूरसेन की राजधानी मथुरा थी। वर्तमान विद्वानों ने यह मान लिया है कि राजपूताने का बैराठ ही आदि-मत्स्य या विराट देश है।[६] विराट और मत्स्य अति प्राचीन नाम हैं और उनका सम्बन्ध इसी स्थान से है। मत्स्य का इतिहास अति प्राचीन है। हमने इसका अभिप्राय ऊपर लिखे चार राज्यों से लिया है।

मत्स्य-प्रदेश के ये चारों राज्य अपना-अपना अलग ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। ये रियासतें अधिक प्राचीन तो नहीं, किन्तु जितने भी समय का इनका इतिहास मिल सका वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भरतपुर तथा धौलपुर जाटों की रियासतें थीं, और अलवर तथा करौली राजपूतों की।

---

१ अलवर से जयपुर जाते समय मोटरों के रास्ते में सीमा पर स्थित।

२ माचाड़ी अलवर राज्य में ही है और यहीं से अलवर के राजाओं का विकास हुआ। यह गांव आजकल राजगढ़ तहसील में पड़ता है।

३ महाभारत में।

४ काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग २, अंक ३।

५ मत्स्य सरकार द्वारा बनाई गई ऐतिहासिक कमेटी की खोज।

६ हिन्दी विश्वकोष।

१. अलवर—अलवर का इतिहास काफी पुराना है, किन्तु अलवर के वर्तमान राजाओं की परम्परा सन् १७७५ से चली जब प्रतापसिंहजी ने भरतपुर के जाटों से अलवर का दुर्ग छीन लिया। अलवर के राजा सूर्यवंशी कछवाहे हैं। कुछ लोगों ने इनके वंश को सतयुग से मिलाने की चेष्टा की है।[1] अलवर का दुर्ग बहुत पुराना और 'दिव्य' जाति का है।[2] किसी समय यहां जाटों का आधिपत्य था, किन्तु उनके उदासीन होने पर १७७५ में प्रतापसिंह ने किला छीन लिया। प्रतापसिंह माचाड़ी[3] के जागीरदार राव मुहब्बतसिंह के पुत्र थे। वे जयपुर तथा भरतपुर दोनों दरबारों में रह चुके थे।[4] इन्होंने राजगढ़ से अपना राज्य बढ़ाना आरम्भ किया, सबसे पहला किला सन् १७७० में राजगढ़ में ही बनवाया। राव प्रतापसिंहजी के कोई पुत्र न था, अतः उन्होंने थानागाजी से बख़्तावरसिंह को अपना उत्तराधिकारी चुना। बख़्तावरसिंह को महाराव राजा की उपाधि मिली। ये १८१५ ई. में गद्दी पर बैठे थे। इनके उत्तराधिकारी बनैसिंह अथवा विनयसिंह कला और साहित्य के प्रेमी थे। इन्होंने अनेक इमारतें बनवाईं। शिवदानसिंह इनके पुत्र थे और उन्होंने अपने पिता के पश्चात् १८७४ ई. तक राज्य किया। मंगलसिंह पांचवें राजा थे और इनका समय 1892 ई. तक ~~सन् १९०० तक~~ है। इनके पश्चात् महाराजा जयसिंह राजा हुए और वर्तमान महाराजा तेजसिंह[5] इनके बाद गद्दी पर बिराजे। अलवर की साहित्यिक चेतना बहुत जागरूक रही है, इसका कारण यहां के राजाओं की साहित्यिक अभिरुचि है।

२. भरतपुर—भरतपुर का इतिहास बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। यहां की वीरता और दृढ़ता की प्रशंसा अंग्रेजों ने भी मुक्त कंठ से की है।

---

[1] पिनाकीलाल जोशी 'अलवर राज्य का इतिहास' (अप्रकाशित) दो भाग।

[2] दुर्ग सात प्रकार के होते हैं:– १ गिरि दुर्ग, २ वन दुर्ग, ३ जन दुर्ग, ४ रथ दुर्ग, ५ देव दुर्ग और ६ पंक दुर्ग तथा ७ मिश्र दुर्ग। (मानसार, १० अध्याय ९०/९१)

देव दुर्ग—

१ यह वर्षा आतप आंधी पानी से अप्रभावित होता है। इसकी दीवारों पर गणेश, गुह, श्री मन्दिर, कार्तिकेय, सरस्वती, अश्विनौ आदि उत्कीर्ण किये जाते हैं। (शिल्परत्न)

२ इसका निर्माण ऐसे स्थान पर किया जाना चाहिए जो प्रकृति से ही सुरक्षित हो। (एन् इंसाईक्लोपीडिया ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर, वॉल्यूम ७, पृष्ठ २२९)।

[3] अनेक विद्वान् 'मत्स्य' का अपभ्रंश मानते हैं। व्युत्पत्ति संदिग्ध अवश्य है।

[4] भरतपुर में महाराज जवाहरसिंह तथा जयपुर में महाराजा माधोसिंह के आश्रित रहे थे।

[5] इनकी निजी पुस्तकशाला में अध्ययन और अनुसंधान करने का अवसर मिला तथा कई अमूल्य, किन्तु अप्रकाशित पुस्तकें प्राप्त हुईं।

भरतपुर के अन्तर्गत बयाना, कुम्हेर और डीग तो बहुत पुराने बताये जाते हैं, तथा सिनसिनी[1] को कुछ लोग 'शौरसेनी' से सम्बन्धित करते हैं।[2] राज्य की स्थापना बदनसिंहजी द्वारा संवत् १७७५ में हुई, जब उन्होंने डीग को अपनी राजधानी बनाया। इन्हीं के द्वारा कुम्हेर का शिलान्यास हुआ। अपने बड़े लड़के सूरजमल को डीग का और दूसरे लड़के प्रतापसिंह को वैर का शासक बनाया। बदनसिंहजी के ये दोनों ही पुत्र बड़े साहित्यिक और विद्या-पारखी थे और अनेक कवि तथा विद्वानों को इनके यहां आश्रय मिला। बदनसिंहजी के उपरान्त इनके पुत्र सूरजमल या सुजानसिंह गद्दी पर बैठे। सन् १७३२ में सूरजमलजी द्वारा भरतपुर को राज्य में मिलाया गया। तब तक यहां खेमकरण सोगरिया का आधिपत्य था। भरतपुर जीतने के बाद राज्य का विकास होता रहा। प्रसिद्ध साहित्यिक रानी किशोरी इनकी ही पत्नी थी।[3] सूरजमलजी ने बहुत-से युद्ध किये और युद्धभूमि में ही वीर गति प्राप्त की। इनके पुत्र जवाहरसिंह १८२० से १८२५ ई. तक राजा रहे। दिल्ली की चढ़ाई और वहां की विजय इन्हीं के द्वारा हुई। जवाहरसिंहजी के पश्चात् माधौसिंह और फिर दुर्जनसिंह गद्दी पर बैठे, किन्तु अगले प्रसिद्ध राजा रणजीतसिंह हुए, जो संवत् १८३४ से १८६२ तक राजा रहे। इनके पुत्र रणधीरसिंह ने १८८० तक राज्य किया। इनके पश्चात् बलदेवसिंह राजा हुये, जो स्वयं एक प्रसिद्ध कवि थे। केवल तीन वर्ष राज्य करने के बाद इनके पुत्र बलवंतसिंह संवत् १८८२ से १९०९ तक राजा रहे।[4] तदनंतर प्रसिद्ध नीति-विशारद जसवंतसिंह हुये, जिन्होंने पूरे ४० वर्ष राज्य किया। हमारा काल यहीं तक चलता है। इनके पुत्र रामसिंह, फिर कृष्णसिंह और वर्तमान महाराजा ब्रजेन्द्रसिंह इस वंश में राजा हुये।[5]

३ **धौलपुर**—यह दूसरी जाट रियासत है। इसका कुछ प्राचीन इतिहास भी मिलता है।[6] सन् ७९२ से १६६४ तक यहां तोमर राजपूत

---

[1] सिनसिनी के जाट ही भरतपुर के राजा बने। ये सिनसिनवार कहलाते हैं।

[2] ठाकुर देशराज, 'जाट जाति का इतिहास'।

[3] पंडित गोकुलचन्द्र दीक्षित, 'ब्रजेन्द्र वंशभास्कर'।

[4] भरतपुर के इतिहास में कवियों के प्रसिद्ध आश्रयदाता। इनके समय में मौलिक तथा अनूदित सभी प्रकार की कृतियां प्रस्तुत हुईं। अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ भी लिपिबद्ध कराये गये।

[5] वर्तमान नरेश काव्य-प्रेमी हैं, इनकी पैलेस-लाइब्रेरी में कुछ सुन्दर साहित्यिक सामग्री है।

[6] इम्पीरियल गजेटीयर ऑव इण्डिया, जिल्द ११।

राज्य करते थे। इस किले को सिकन्दर लोदी ने जीत कर मुसलमानी राज्य में मिलाया। खानुश्रा की लड़ाई के पश्चात् यह मुगलों के हाथ आया। भरतपुर, अलवर पर चढ़ाई करने वाला नजफखां सन् १७७५ में यहां भी पहुँचा था। कुछ समय बाद धौलपुर मराठों के हाथ लगा। सन् १८०६ में धौलपुर, बाड़ी, राजाखेड़ा और सरमथुरा को मिला कर महाराज-राना कीरतसिंह को दे दिए गए। ये बमरोली के रहने वाले जाट थे और कीरतसिंह यहां के प्रथम महाराज-राना थे। इन्होंने १८०६ ई० से १८३६ तक राज्य किया। इनके उपरान्त भगवंतसिंह राजा हुए, जो अंग्रेजों के बहुत भक्त थे। निहालसिंह इनके पौत्र थे और उनका शासन १८७३ से १९०१ ई. तक रहा। हमारा आलोच्य काल भी यहीं तक चलता है। इनके पश्चात् इनके बड़े लड़के रामसिंह राजा हुए, तदुपरान्त उदयभानसिंहजी महा-राज-राना हुए। मत्स्य के प्रथम राज्यप्रमुख ये ही महानुभाव थे। यह स्पष्ट है कि धौलपुर और उसका किला बहुत प्राचीन हैं, किन्तु आज का धौलपुर सन् १८०६ में ही अपनी सीमा निर्धारित कर सका।[1] धौलपुर की साहित्यिक चेतना विशेष महत्वपूर्ण नहीं रही।

४. करौली—यहां के महाराज जादों राजपूत हैं। ये कृष्ण के यादव वंश से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। किसी समय इनका राज्य बहुत बड़ा था। ११वीं शताब्दी में यहां का राजा इतिहास-प्रसिद्ध विजयपाल था।[2] अर्जुनपाल ने यह प्रान्त १३२७ ई० में प्राप्त किया और १३४८ में आधुनिक राजधानी करौली की स्थापना की। इस पर मुसलमान तथा मुगलों के अधिकार भी रहे। सन् १८१७ में करौली को मराठों से ले लिया गया और करौली के राजाओं को दे दिया। सन् १८५० में नरसिंहपाल यहां के राजा हुए और सन् १८५४ में मदनपालजी को राज्य मिला। सन् १८८६ में महाराज भंवरपाल गद्दी पर बैठे और इनके उपरान्त भोमपालजी तथा गणेशपालजी राजा हुए।

इन चारों राज्यों में नीचे लिखी कुछ बातें समान रूप से पाई जाती हैं, जिनसे इस प्रदेश की संस्कृति एवं साहित्य निरन्तर प्रभावित होते रहे और यहां की एकता स्थिर रही।

---

[1] सिंधिया के साथ सुलह करते समय जब अंग्रेजों द्वारा उसे गोहद दिया गया था।

[2] 'विजयपाल रासो' की एक प्रामाणिक पुस्तक यहां उपलब्ध है।

१. यह प्रदेश शूरसेन, व्रज, का एक प्रमुख अंग है, और यहां की साहित्यिक भाषा व्रज भाषा ही रही। इस प्रान्त के किसी भी भाग में जो पुस्तकें अनुसंधान में मिलीं, वे व्रज भाषा की थीं। एक दो पुस्तकों के गद्य में 'कांई' और 'छै' आदि में कुछ राजस्थानी प्रभाव हैं, किन्तु सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य व्रज भाषा का ही है।

२. अन्य राज्यों की भांति यहां भी कवियों को राज्याश्रय मिलता रहता था। इतना ही नहीं, कुछ राजा तो स्वयं कवि होते थे, काव्य-सम्बन्धी चर्चा करते रहना ही जिनका रुचिकर कार्य था। स्वतन्त्र तथा अनूदित रचनाएँ बराबर प्रस्तुत होती रहती थीं। भरतपुर के बलवन्तसिंह और कुछ अंश तक अलवर के विनयसिंह इस कार्य में बहुत आगे बढ़े हुए थे।

३. इस प्रदेश का साहित्य व्रजमण्डल से बहुत प्रभावित था। मत्स्य का कुछ भाग तो व्रज के अन्तर्गत आ ही जाता है, जैसे—डीग, कामा। यहां का काफी भाग व्रज के सन्निकट है, जहाँ की साहित्य-प्रवृत्ति का अनुगमन यहां के कवियों द्वारा बराबर होता रहा।

४. मत्स्य के साहित्य में सभी प्रकार की पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं, जिससे सिद्ध होता है कि यहां के साहित्यिकों की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी और कुछ न कुछ कलात्मक कार्य बराबर चलता रहता था। अन्य कलाओं की अपेक्षा साहित्य-कला में अच्छा कार्य हुआ। वास्तु-कला के भी कुछ सुन्दर नमूने आज तक मौजूद हैं। डीग के भवन इसका उत्तम प्रमाण हैं।[१] इन्हीं राजाओं द्वारा कुछ छत्रियां आदि भी बनवाई गईं जो उनके पूर्वजों के स्मारकों के रूप में हैं।[२] गोवर्द्धन की कुंजें भी कुछ ऐसा हो प्रयास हैं।

५. इस प्रदेश के सभी राज्य वैष्णव मत के अनुयायी रहे, अतएव साहित्य पर इसका काफी प्रभाव पड़ा। शिवजी, हनुमानजी, गणेशजी, देवीजी, गंगाजी आदि की उपासना समान रूप से होती रही और शिवस्तुति, हनुमाननाटक, गंगाभूतलआगमनकथा जैसे ग्रन्थों का निर्माण हुआ। यह एक सामान्य-सी बात है, क्योंकि वैष्णव और शैवों में अधिक भेदभाव नहीं रहा है।

६. सन् १७५० से १९०० ई० तक का समय रीतिकाल के अन्तर्गत आता है, और यहां भी रीति-सम्बन्धी रचनाएँ अधिक मिलती हैं, अतएव मत्स्य प्रदेश

---

[१] मुगलकालीन वास्तु-कला से प्रभावित 'गोपाल भवन' आदि कई भवन डीग में हैं।

[२] गोवर्द्धन में अनेक सुन्दर स्मारक बने हुए हैं। भरतपुर के महाराजाओं की अंत्येष्टि क्रिया यहीं होती रही है।

का यह साहित्यिक काल रीतिकाल के अन्तर्गत माना जाना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य प्रकार का काव्य भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इन विभिन्न प्रवृत्तियों का विश्लेषण और स्पष्टीकरण अगले कुछ अध्यायों में किया गया है। हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के अन्तर्गत जो भी प्रमुख प्रवृत्तियां उपलब्ध होती हैं, वे सभी मत्स्य-प्रदेश में भी पाई जाती हैं।

व्रजभूमि के निकट होने के कारण यहां कृष्ण की भक्ति का बहुत प्रचार रहा। वैसे, राम और लक्ष्मण की भक्ति भी रही, और भरतपुर दरबार के तो इष्टदेव ही लक्ष्मणजी हैं। प्रायः मन्दिरों में राम, कृष्ण तथा शिवजी की पूजा होती है। हनुमानजी के भी मन्दिर काफी हैं, किन्तु अपेक्षाकृत छोटे, क्योंकि वे राम के सेवक हैं। अतएव स्वामी के जैसे वैभवपूर्ण मन्दिर त्यागी हनुमान कैसे पसन्द करते? इस प्रदेश के पास ही कृष्ण की क्रीड़ा-भूमि है, जो कभी करौली और कभी भरतपुर के आधिपत्य में रही। आज भी मथुरा में असकुण्डा पर भरतपुर की कोठी विद्यमान है। गोवर्द्धन, मथुरा, दाऊजी, गोकुल आदि बराबर अपना प्रभाव डालते रहे हैं। गोवर्द्धन तो भरतपुर महाराजा के इष्ट हैं और सात कोस की परिक्रमा लगाने का उत्साह आज तक राजपरिवार में है। 'गिरवर विलास'[१] नामक पुस्तक से मालूम होता है कि किस प्रकार यहां भरतपुर के राजा ने अनेक स्थानों का निर्माण कराया और यहां का प्रसिद्ध दीप-दान प्रारम्भ हुआ।[२] व्रज के इन स्थानों से पण्डे बराबर आते-जाते रहे और उनकी कुछ साहित्यिक कृतियां भी अनुसंधान में मिलीं।[३] इन स्थानों में राजाओं का आना-जाना भी बराबर बना रहता था और यहां के साहित्य तथा संस्कृति मत्स्य को बराबर प्रभावित करते रहे। आज भी मत्स्य-प्रदेश का एक बड़ा भाग व्रज से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, वही बोली, वही वेष-भूषा और वे ही रीति-रिवाज। मथुरा के चौबे राज्यों में बराबर आते-जाते रहते थे और इनमें से कुछ तो दरबारों में बराबर उपस्थित रहते थे।[४] व्रज से निकट होने के कारण यहां का वातावरण भी बहुत कुछ व्रजभाषा के अनुकूल बन गया था।

व्रज प्रांत में व्रज भाषा के अनेक गौरव-ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। हिन्दी के प्रसिद्ध अष्टछाप के कवि इसी प्रान्त में थे और उनकी वीणाएँ यहीं निनादित

---

१ भरतपुर के प्रसिद्ध कवि उदयराम कृत।

२ इस विषय पर प्रकाशित लेखक का एक स्वतन्त्र लेख देखें—जीवन साहित्य, वर्ष १, अंक ३।

३ जैसे—पद मंगलाचरण बसंतहोरी, तिलोचन लीला।

४ उदाहरण के लिए भरतपुर नरेश बलवन्तसिंह के दरबार में जीवाराम चौबे।

हुई। गद्य और पद्य दोनों प्रकार का साहित्य निर्मित हुआ। हिन्दी काव्याकाश के सूर्य, सूर और भ्रमरगीत को माधुर्य-परिपूरित करने वाले नन्ददास इसी प्रान्त की उपज थे। नन्ददास के भ्रमरगीत का बहुत प्रचलन था और उसका प्रभाव मत्स्य के अनेक ग्रन्थों में पाया जाता है। प्रसिद्ध कवि केशवदास के पूर्वज भी भरतपुर राज्यांतर्गत कुहेर के निवासी थे। कुछ समय पूर्व यहां के साहित्य का उद्धार तथा व्रज भाषा की प्रगति को बढ़ाने के हेतु 'व्रज-साहित्य-मण्डल' की स्थापना हुई है और उसका अब तक का कार्य काफी प्रशंसनीय है।

आगरा और मथुरा मत्स्य प्रान्त के समीपवर्ती नगर हैं। आगरे में तो मुगलों का बहुत कुछ प्रभाव था और यहां के कुछ कवि, सम्भवत: राज्याश्रित भी थे।[1] इन कवियों का पास के राज्यों में दौरा होता रहता था, तथा उनके ग्रन्थों का लिपिबद्ध करने का काम भी चलता था। कुछ कवि राज्यों के राज-कवि बन जाते थे और अपने आश्रयदाता के नाम पर रचना भी कर देते थे। कुछ राजाओं की तो शिक्षा के सम्बन्ध में भी सन्देह है, और इसी कारण उनके द्वारा रीति-ग्रन्थों पर की गई अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण टीकाओं को देख कर आश्चर्य होता है।[2] आगरा प्रसिद्ध बादशाही नगर है और कुछ समय तो यह और इसके आसपास का प्रदेश भरतपुर के अधीन रहा था। अतएव यहां की साहित्यिक चेतना का मत्स्य-प्रदेश पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। मथुरा के साहित्य और संस्कृति तथा कृष्ण की लीलाओं का भी मत्स्य साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा।

हिन्दी साहित्य में सन् १९०० ई० तक का काल रीतिकाल तथा गद्यकाल दोनों से सम्बन्धित है। १९वीं शताब्दी के पिछले पचास वर्ष तो आधुनिक गद्य के कहे जा सकते हैं। परन्तु मत्स्य प्रान्त में पाये गये ग्रन्थों का अनुसंधान करने पर विदित होता है कि मत्स्य-प्रदेश में १९०० ई० तक का सम्पूर्ण काल रीतिकाल के अन्तर्गत ही मानना चाहिए। यहां तो वही भाषा, वही साहित्यिक प्रवृत्ति, वही दरबारी रंग-ढंग और उसी प्रकार के साहित्यिक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जैसे रीति काल के अन्तर्गत। जिस समय अंग्रेजों द्वारा खड़ी बोली गद्य के हेतु प्रयास किया जा रहा था और खड़ी बोली गद्य का एक स्वरूप बनने लग गया था, उस समय-मत्स्य प्रदेश में वही रीतिकालीन पद्धति चल रही थी। हो सकता है, इसका एक कारण यहां की शिक्षा की कमी रही हो, क्योंकि पिछले

[1] महाकवि राय, सुन्दर आदि।

[2] महाराजा विनयसिंहजी के नाम पर 'भाषाभूषण' की टीका।

बहुत वर्षों तक यहां का शिक्षा-प्रतिशत बहुत कम था। राज के कवियों में भी अधिकतर उत्तरप्रदेश—मथुरा, आगरा प्रान्त से आते थे। इस समय के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि सोमनाथ मथुरा के रहने वाले मथुरिया चौबे अथवा माथुर चतुर्वेदी थे। इटावा,[1] आगरा,[2] आदि नगरों से बराबर कवि आते रहते थे जो रीति-कालीन ग्रन्थों की परम्परा को निभाने का प्रयत्न करते थे। अतएव हम यहां के साहित्य को रीतिकाल में ही लें सकते हैं। वैसे यहां, भक्ति की अविरल धारा बही, और राम तथा कृष्ण की भक्ति का पूर्ण प्रचार होने से दोनों शाखाओं का काव्य उपलब्ध होता है। खोज में हमें एक प्रेम-गाथाकार भी मिला और निर्गुण का प्रतिपादन करने वाले कुछ संत भी। किन्तु इनका निर्गुण सगुण से प्रभावित है, और सतगुरु, अनहद, माया आदि की बातें कहते हुए ये कृष्ण को भगवान् मान कर उनकी लीलाओं का भी वर्णन करते हैं।

यहां की साहित्यिक परम्परा का परिचय पाने के लिए हिन्दी के रीतिकाल को देखना चाहिए। इसके अतिरिक्त मत्स्य के काव्य में वीर-रस का दर्शन भी अनेक पुस्तकों में होता है। इस प्रान्त में कई 'रासो' या 'रासा' पाये गये और सूदन का 'सुजान चरित्र' तो वीर-रस का ख्यातिप्राप्त ग्रन्थ है। कृष्ण की लीलाओं से अन्य स्थानों की भाँति इस प्रदेश में भी अनेक पुस्तकों के प्रणयन की प्रेरणा हुई। साथ ही कुछ 'मंगल' भी लिखे गये, जैसे—पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, और उसी आधार पर लिखा गया राधामंगल। रुक्मिणीमंगल तो पहले भी लिखे गये थे किन्तु 'राधामंगल' इस प्रान्त की विशेषता है।[3] राजाओं एवं राजकुमारों के हेतु सामान्य ज्ञान के लिए समय-समय पर लिखे कुछ ग्रंथ भी मिलते हैं। ऐसे 'अकलनामे' भरतपुर और अलवर दोनों स्थानों में मिले। हितोपदेश, आईने-अकबरी आदि के अनुवादों द्वारा राजाओं को राजनीति से भी परिचित कराया जाता था। हितोपदेश का प्रचलन बहुत रहा, और यहां के राजकुमारों के लिए अनेक 'विष्णु शर्मा' हुए जिनके गद्य-पद्यमय उपदेश यथेष्ट प्रचलित हुए।

भाषा के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि अलवर को छोड़ कर शेष प्रान्त की भाषा सामान्य रूप से व्रज ही है। भरतपुर और करौली तो व्रजभाषा के

---

[1] देव के पौत्र भोगीलाल अलवर राज्य के आश्रित थे।

[2] आगरा ताजगंज के निवासी देवीदास करौली राज्याश्रित थे।

[3] गोसाईं रामनारायण कृत। अन्य 'मंगलों' के साथ राधामंगल की एक ह.लि. प्रति डीग के एक वयोवृद्ध पुजारीजी के पास पाई गई।

गढ़ ही रहे हैं। इन स्थानों में यही भाषा साहित्य तथा बोलचाल दोनों के काम आती थी। साहित्य के इतिहास में यह एक सुन्दर उदाहरण है कि बोलचाल तथा पुस्तकों में एक ही भाषा का उपयोग एक ही समय में किया जाय। साहित्यिक कार्य के लिए सर्वत्र ब्रजभाषा का ही प्रयोग हुआ। विनयसिंहजी द्वारा लिखी गई भाषा-भूषण की टीका बहुत सुन्दर ब्रजभाषा गद्य में है। भाषा की ऐसी सुन्दर छटा बहुत कम देखने में आती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रान्त के ग्रन्थों को देखने पर स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि यहां की साहित्यिक भाषा निरन्तर ब्रजभाषा ही रही। राजनैतिक दृष्टि से मत्स्य राजस्थान का अंश है किन्तु इसके साहित्य पर राजस्थानी का कोई भी प्रभाव नहीं है। मत्स्य का अधिक भाग मथुरा और आगरा से अधिक मिलता-जुलता है, राजस्थान के अन्य भागों से नहीं। मत्स्य और राजस्थान के अन्य प्रान्तों में यह विभिन्नता स्पष्ट रूप में देखी जा सकती है। जहां तक राजस्थानी का सम्बन्ध है, मेरे द्वारा किये गये अनुसंधान में कोई भी ग्रन्थ राजस्थानी के उपलब्ध नहीं हो सके। इतना ही नहीं, जो भी ग्रन्थ प्राप्त हुए, उन पर राजस्थानी का कोई प्रभाव भी लक्षित नहीं होता। इसका कारण न केवल ब्रज-भाषा प्रान्त से निकटता है, प्रत्युत कवियों का प्रधानतः ब्रज-भाषा-भाषी होना है। कवियों में राजस्थान-निवासी कवि न के बराबर थे। प्रायः सभी कवि ब्रजमण्डल से आये, फिर इनके द्वारा राजस्थानी का प्रयोग कैसे संभव होता। एक बात और भी है. संभवतः उस समय ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में की गई रचना पसन्द भी नहीं की जाती। काव्य में ब्रजभाषा के लिए एक विशिष्ट स्थान है और इसी का मान-संवर्धन सभी को अभीष्ट था। कुछ वीरकाव्यों में राजस्थानी का आभास केवल मूर्द्धन्य वर्णों के संयुक्ताक्षरों-सहित प्रयोगों तक सीमित है। शब्दों में टंकार, झनझनाहट, उग्रता आदि से ही कुछ लोग राजस्थानी में खींचने का प्रयत्न करते हैं। उनके कारकों, क्रियाओं तथा सर्वनामों का रूप देखने पर इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि वे ग्रन्थ ब्रजभाषा के ही हैं। अतएव मत्स्य-प्रान्त के इस काल में साहित्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही, अन्य किसी भाषा का कोई भी प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता।

मत्स्य प्रान्त के साहित्य और संस्कृति पर तीन प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाई देते हैं:—

१. हिन्दुत्व का प्रभाव, जिससे जनसाधारण का जीवन और राजघरानों की परम्परा अधिकांश रूप में प्रभावित है। यहां के मन्दिर, त्यौहार और

उत्सव, उपासना को प्रणाली आदि इसी प्रभाव के अन्तर्गत हैं। साहित्य में भी प्रधान रूप से हिन्दू धर्म का प्रभाव दिखाई देता है। मानना पड़ेगा कि यहां का सम्पूर्ण भक्ति-काव्य इसी विचारधारा के अन्तर्गत है।

२. मुसलमानों का प्रभाव दरबारी प्रथा के रूप में दिखाई देता है। जिस प्रकार मुगल सम्राट अपने मुसाहिबों के साथ दरबार किया करते थे, उसी प्रकार, वही दरबार, वही वेश-भूषा तथा रसूमात का अनुकरण सभी राजघरानों में किया गया। साहित्यिक कृतियों में भी इस प्रभाव के दर्शन होते हैं, जैसे—मुगल सम्राटों के अनुसार किए गए दरबारों के वर्णन—लाल, बाज, बटेर आदि के युद्धों का वर्णन (देखें 'लाल ख्याल')। शिकारों के भी विस्तृत विवरण प्राप्त होते हैं। कला पर मुगल-प्रभाव बहुत कुछ दिखाई देता है। राजस्थान के बहुत-से राजाओं ने मुगलों की आधीनता स्वीकार की और मुगल दरबारों का वातावरण लगभग सभी रियासतों में आ गया। राजाओं के महल, दरबार हाल, राजाओं के चित्र आदि देख कर मुगल-कालीन सभ्यता के प्रभाव को मानना पड़ता है। साहित्य में भी मुगलों और मुसलमानों के सम्पर्क से बहुत कुछ हुआ और मत्स्य-प्रान्त का साहित्य भी उसके प्रभाव से अछूता नहीं बचा। न केवल मुसलमान कलाकारों ने साहित्य-सृजन में ही भाग लिया, जैसे—फितरत,[1] गुलाम-मोहम्मद,[2] अलीबख्श,[3] वरन् साहित्य की अभिव्यक्ति पर भी इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। निर्गुण-काव्य पर मुसलमानी प्रभाव बहुत कुछ पड़ा, और साथ ही शृङ्गार की कविता में विलास की अभिरुचि मुगल दरबारों से ही ग्रहण की गई। उस समय के कवियों की वेश-भूषा भी मुगल राज्य के दरबारियों जैसी होती थी। इसके अतिरिक्त फारसी और अरबी के अनेक शब्द काव्य में प्रयुक्त हुए। प्रसिद्ध नजफखां की लड़ाइयों के वृत्तान्तों में मुसलमानों की वार्ता खड़ी बोली, उर्दू ही प्रतीत होती है।[4] अनेक रियासतों का राजकाज फारसी-उर्दू में होता था। अतएव कोई कारण नहीं कि साहित्य भी इससे प्रभावित न होता। किन्तु एक बात अवश्य है कि कवियों ने इस अहिन्दू प्रभाव को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया और न

---

[1] गद्यकार—सिंहासन बत्तीसी के रचयिता।
[2] प्रेम-गाथाकार—'प्रेमरसाल' के लेखक।
[3] कृष्णलीलाकार—मंडावर के जागीरदार।
[4] सूदन—सुजानचरित्र।

अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को ही इसके अर्पित किया। उनकी अन्तरात्मा इस प्रभाव के विरुद्ध जिहाद की आवाज़ बुलन्द करती रही, और उस सभ्यता को हिन्दू सभ्यता में विलीन करने का प्रयास करती रही।

३. अंग्रेजों का प्रभाव इतना स्पष्ट दिखाई नहीं देता। वैसे धीरे-धीरे सभी हिन्दू राजाओं ने उनकी आधीनता स्वीकार की, किन्तु मत्स्य राज्यों में यह प्रभाव बहुत हल्का दिखाई देता है। इस सम्बन्ध में भरतपुर की गाथा तो बहुत गौरवपूर्ण है। अनेक बार आक्रमण करने पर भी अंग्रेजों को भरतपुर का दुर्ग विजय करने में सफलता नहीं मिली और लॉर्ड लेक को हर बार मुँह की खानी पड़ी। अन्त में धोखे से भरतपुर का किला काबू में किया गया। आज तक भी यह किला 'लोहागढ' नाम से प्रख्यात है। कविवर वियोगी हरि ने अपनी 'वीर सतसई' में जाटों की इस वीरता का बखान करते हुए लिखा है—

> 'वही भरतपुर दुर्ग है, अजय दीर्घ भयकारि।
> जहं जट्टन के छोकरे, दिए सुभट्ट पछारि।।'

फिर भी धीरे-धीरे इस नई विदेशी सभ्यता का प्रभाव पड़ता रहा। कई एक साहित्यकार तो अंग्रेजों की आज्ञा मान कर ऐसा साहित्य प्रस्तुत कर गये जो किसी भी राज्य के लिए लज्जा की बात हो सकती है। इसी प्रकार का अलवर राज्य का एक हस्तलिखित इतिहास महाराज अलवर की पुस्तक-शाला में मुझे मिला।[1] राजनीति के कुछ अंगों में अंग्रेजों की छाप पाई जाती है। यह मानना पड़ेगा कि साहित्य में इस विदेशी शक्ति का प्रभाव लड़ाइयों के कुछ वर्णनों को छोड़ कर अधिक नहीं पड़ा। साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव न पड़ने के दो कारण तो स्पष्ट ही हैं—

(अ) साहित्यकार अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य से परिचित नहीं थे।

(आ) राज्यों में अंग्रेजों का आना-जाना बहुत कम रहा। मत्स्य के राज्य इस मामले में काफी सजग रहे, और उन्होंने अपनी मान-प्रतिष्ठा का ध्यान रखा।

परन्तु वैसे तीनों सभ्यताओं का सम्मिश्रण हुआ और सभ्यता का एक नवीन ही रूप बन गया जो ब्रिटिश भारत में अधिक व्याप्त था और राजस्थान में इतना अधिक नहीं। राजस्थान की साहित्य और संस्कृति की परम्परा मुसलमानी प्रभाव

---

[1] शिवबख्शदान कृत—दो जिल्दों में।

से अवश्य ही न बच सकी और मत्स्य-प्रदेश में भी यह प्रभाव देखा जाता है।

इस प्रदेश के ये चार राज्य, जाट और राजपूतों के हैं—भरतपुर में सिनसिनवार जाट, धौलपुर में बमरावलिया जाट, अलवर में सूर्यवंशी कछवाहे तथा करौली में यादववंशी राजपूत। मत्स्य-प्रदेश का जो वर्णन महाभारत तथा कई अन्य पुराणों में मिलता है उसके आधार पर इन राज्य-परिवारों में एक विचित्र शृंखला मिलती है।[१]

राजा उपरिचर भारत के प्रसिद्ध सम्राट हुए हैं। इनकी राजधानी चंदेरी थी। इनके पांच पुत्रों में बड़े बृहद्रथ मगध देश के राजा हुए। कुशाम्ब[२] कौशाम्बी के राजा हुए और मत्सिल 'मत्स्य' ढुंढार देश के अधिपति हुए। प्रत्यग्रह और कुरु दो अन्य पुत्र थे। जब राजा मत्सिल ढुंढार देश के राजा होकर आये तो उन्होंने अपने नाम से इस ढुंढार देश को 'मत्स्य देश' के नाम से प्रसिद्ध किया और मत्स्यपुरी नाम का नगर बसाया।[३] यह नगर आज भी राजगढ़ तहसील, जिला अलवर में माचाड़ी नाम से स्थित है। यही स्थान अलवर के राजाओं की पुरानी बैठक है। आज भी वह स्थान देखा जा सकता है। राजा मत्सिल के समय में इस नगर में बौधेय, पौण्ड्रव, बच्छल आदि जातियां बसती थीं।[४] प्राचीन तंत्र-ग्रन्थों में आजकल के जयपुर-अलवर राज्यों को मत्स्य देश के ही अंतर्गत माना गया है। राजा मत्सिल ने यमुना और सतलज के मध्यवर्ती प्रान्त पर भी अपना अधिकार कर लिया और सतलज के तट पर 'मत्स्यवाट' नामक नगर बसाया, जिसे अब 'माच्छीबाड़ा' कहते हैं। कुछ लोग वर्तमान 'मस्लीपट्टन' का सम्बन्ध 'मत्स्यपत्तनम्' से स्थापित करते हैं। इस प्रान्त में जो स्थान पाये जाते हैं, जैसे पाण्डुपोल, उनसे स्वतः सिद्ध है कि विराट राजा का राज्य यहीं कहीं था और पांडवों का अज्ञातवास मत्स्य में ही हुआ।

इस प्रदेश के राज्यों में एक और घनिष्ठ सम्बन्ध भी उपलब्ध हुआ है।[५] राजा धर्मपाल यादव की तेरहवीं पीढ़ी में राजा तहनपाल हुए थे। राजा

---

१ मत्स्य-इतिहास द्वारा प्रस्तुत 'मत्स्य का इतिहास' नामक अप्रकाशित पुस्तक के आधार पर।

२. भागवत में इन्हें चेदि देश का ही राजा बताया गया है।

३ महाभारत आदि-पर्व, अध्याय ६४, श्लोक ४५१ से पाया जाता है कि इन भाइयों ने अपने-अपने नाम पर भिन्न-भिन्न नगर बसाये।

४ जनरल कनिंघम :बयाना राजवंश की खोज।

५ खीचियों के जागा मूकजी की बही के आधार पर।

तहनपाल के पन्द्रह पुत्रों में से ज्येष्ठ मदनपाल के वंशजों का राज्य धौलपुर में, उनमें से छोटे धर्मपाल का राज्य करौली में और तीसरे भुवनपाल के वंशजों का राज्य भरतपुर में बताया गया है। यादववंश या यदुवंश से इस बात की पुष्टि होती है। जाट लोग अपने को यदुवंशी कहते हैं। कहा जाता है कि जाटों में विवाह करने के कारण ये लोग जाट कहलाये। करौली के राजा तो अब तक यादव राजपूत हैं। अतएव इन तीनों राज्यों में एक ही वंश की तीन शाखाएँ प्रतिष्ठित हैं।[1] प्रस्तुत भौगोलिक स्थिति के अनुसार, जो चित्र के आधार पर सन् १७५० ई० से अभी तक उसी रूप में है, हम अपने प्रदेश को ब्रजमंडल और मेवात, दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। साहित्य की दृष्टि से मेवात कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता। इसका कारण यहां के निवासियों का धर्म-परिवर्तन हो सकता है।[2]

ऊपर दिये विवरण के अनुसार मत्स्य-प्रान्त में जाट और राजपूतों का होना तो आवश्यक है ही—ये ही राज-परिवार हैं। सिनसिनी और बमरौली ख्यातिप्राप्त स्थान हैं और इन स्थानों का इतिहास भी गौरवमय है। इनके अतिरिक्त इन राज्यों में, विशेषतः अलवर और भरतपुर में, मेवों की संख्या काफी रही। मेव वे लोग हैं जो मुस्लिम काल में हिन्दू से मुसलमान बनाये गये। इनके रीति-रिवाज़ हिन्दुओं से बहुत मिलते-जुलते हैं। विवाह के समय जहाँ मौलवी निकाह पढ़ाता है वहाँ पंडित फेरे भी डलवाते हैं। भरतपुर राज्य में एक पंडित 'काजीजी' कहलाते थे क्योंकि उन्हें मुसलमानों के विवाह की दक्षिणा मिलती थी।[3] मेवों के नाम भी हिन्दुओं की तरह से ही होते हैं। स्त्रियों में 'चन्द्रवदनी', पुरुषों में 'सूरज', 'नारान' इस प्रकार के नाम अब भी मिलते हैं। कालांतर में इन्हें 'सूरज खां' और नारान खां' में बदल दिया गया। किन्तु आज तक मेवों की बहुत-सी बातें हिन्दुओं से मिलती-जुलती हैं। भारत का विभाजन होने से पूर्व मुस्लिम लीग का जो प्रचार हुआ उसके कारण मेवों की भावना परिवर्तित हो गई, उनमें कट्टरता आ गई और हिन्दुओं को वे अपना शत्रु समझने लगे। हमें वह समय याद है जब मेव तथा मुसलमानों के सम्मिलित लम्बे-लम्बे जलूस निकलते थे, जिनमें पाकिस्तान की मांग की जाती थी। एक

---

[1] जनरल कनिंघम—बयाना राजवंश की खोज।

[2] कहा जाता है, मेव मेवाड़ के आदि निवासी थे। जब मीणे, भील, गूजर लोगों को मेवाड़ से निकाला तो वे आमेर के पहाड़ों में आये और धीरे-धीरे फैलते गये। महमूद गजनवी के समय में ये मुसलमान हुए और मेव कहलाये।

[3] इस प्रथा के अन्तिम काजी स्व० पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री थे।

समय ऐसा भी आया जब 'मेविस्तान' का ख्वाब भी देखा जाने लगा। सन् १९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति के अवसर पर भरतपुर और अलवर में मेवात मेवों से खाली हो गया था। अब पुनः मेव अपने गांवों में लौट आये हैं। इनके पश्चात् इस प्रान्त के निवासी ब्राह्मण, वैश्य आदि हैं। राज्य के साहित्यकारों में ब्राह्मणों का प्राधान्य रहा, इसके कई कारण हैं—

१. कवियों के प्रति पूज्य भाव का निर्वाह ब्राह्मण शरीर के प्रति अच्छा होता है।
२. पठन-पाठन का कार्य ब्राह्मण परिवारों में ही होता था, उन्हीं के यहाँ पुस्तकें रहती थीं और उन्हीं में, उनसे मिलने वाली प्रेरणा।
३. पहले का बहुत कुछ साहित्य संस्कृत भाषा में था और ब्राह्मण ही इस देव-वाणी के अधिकारी समझे जाते थे। अतः साहित्य के क्षेत्र में वे ही आगे रहे।
४. प्रायः भारत के सभी भागों में ब्राह्मण ही राजकवि होते रहे। मत्स्य में भी इसी प्रवृत्ति का अनुकरण किया गया।

साहित्य के क्षेत्र में कुछ वैश्य और कायस्थ भी अवतरित हुए। इस अनुसंधान में थोड़े ही ग्रंथ ऐसे मिले जिनके रचयिता निश्चित रूप से ब्राह्मणेतर हैं, जैसे-बल्देव खण्डेलवाल, गोविन्द नाटानी, अजुध्याप्रसाद कायस्थ, चतुर्भुज निगम और रसानन्द जाट। काव्य-प्रतिभा राजघरानों में भी मिलती है, जैसे भरतपुर के बल्देवसिंह और अलवर के बख़्तावरसिंह। इस प्रान्त का बहुत-सा भाग हरिजनों से बसा हुआ है, जिनमें जाटवों (चमारों) की संख्या अधिक है। ये लोग अपने कार्य के अतिरिक्त खेती-बारी भी करते हैं। इन राज्यों में मुसलमान भी काफी थे। मेव तो सब मुसलमान ही थे और इनमें लालदास जैसे धर्म-प्रवर्तक और साहित्यकार हुए। लालदासजी[1] का संप्रदाय लालदासी कहलाता है, ये लोग लालदास को ही मानते हैं। इनका उपदेश निर्गुण संतों का सा है। राम-नाम-जप एवं कीर्तन को प्रधानता देते हैं। नम्रता, पवित्रता आदि का भी ध्यान रखते हैं। हिन्दू

---

[1] लालदासजी धोली दूब, अलवर, में संवत् १५९७ में उत्पन्न हुए। अलवर से १६ मील दूर बांबोली में अधिक रहते थे। इनकी वाणी का संग्रह 'लालदासकी चेतावणी' के नाम से स्व० हरिनारायणजी पुरोहित द्वारा हुआ है। इनका 'मखदूम साहब' लालदासियों के लिए वेदसदृश है। भरतपुर के 'नगला' गांव में इनकी मृत्यु हुई। लालदासी साहित्य पर इधर और भी कार्य हुआ है।

और मुसलमान दोनों को मिलाने की चेष्टा इनके द्वारा भी हुई। इनका कहना था—

> हिन्दू तुरक को एक हीसाव। राह बनाई दोनों अजायब॥
> हिन्दू तुरक एक सो बुझे। साहब सब घट एकहीं सुझे॥

अलीबख्श[1] जैसे उच्च घराने के मुसलमान भी साहित्य-सृजन में भाग लेते थे।

कुछ ऐसे परिवार रहे हैं जिनको जीविका ही साहित्यिक रचना और दरबारों में कवित्त-गायन पर चलती थी। राजस्थान के चारण और भाट विख्यात हैं। काव्य-कला इनका पेशा था—राजाओं की प्रशंसा, उनका गुणगान, उनके पूर्व-पुरुषों की गौरवगाथा को दरबारों में सुनाना। अलवर में बारहट[2] और भट्ट[3] लोग इस कार्य में बहुत आगे रहे हैं। भरतपुर में चौबे[4] इस ओर सजग थे। साथ ही कुछ भाट और चौबदार इस ओर ध्यान रखते थे। इन लोगों का राज्य से संपर्क रहता था और उन्हें कुछ मासिक मिलता रहता था। राजकवि रखने की परम्परा बहुत प्राचीन है, किन्तु मत्स्य-प्रान्त के राजकवियों का क्रम-बद्ध पृथक् वृत्तान्त उपलब्ध नहीं होता, हाँ, कवियों का बहुत बड़ा प्रतिशत राज्याश्रित था। कुछ लोगों को तो अब तक थोडी-बहुत 'परवरिश' मिलती रही, किन्तु अब यह प्रथा धीरे-धीरे लुप्त होने लगी है।

इस प्रान्त के इतिहास पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि अलवर और भरतपुर के राज्य तो बड़ी विकट परिस्थितियों में निर्मित हुए। इन राज्यों को स्थापित करने का श्रेय व्यक्तिगत वीरता को है। भरतपुर का राज्य महाराज बदनसिंहजी ने १७३२ के लगभग स्थापित किया। यह समय घोर मार-काट का था और राज्य की स्थापना इधर-उधर से छीन-झपट कर की गई थी। इनके पिता चूरामन तो एक प्रकार से व्यवस्थित डाकू ही कहे गए हैं, किन्तु साथ ही एक वीर लड़ाका भी। बदनसिंहजी के पश्चात् सूरजमल को तो लड़ाइयों में अपनी जान ही दे देनी पड़ी। जवाहरसिंह की वीरता का गुण-गान आज भी सर्वत्र होता है। इसी प्रकार अलवर के प्रतापसिंहजी ने भी अपना

---

१ यह 'राव' कहलाते थे और इन्हें मंडावर की जागीर मिली हुई थी। अलवर नरेश ने लेखक को इनका परिचय 'प्रिंस अलीबख्श आँव मंडावर' कह कर दिया था।

२ जैसे शिवबख्श।

३ जैसे मुरलीधर भट्ट।

४ सोमनाथ, वैद्यनाथ चौवे थे। आज तक इनका परिवार भरतपुर में दानाध्यक्ष कहलाता है।

राज्य इधर उधर से छीन-झपट कर स्थापित किया। कहा जाता है—

अष्टादस बत्तीस में, अरिसिर ढोल बजाय।
महाराज परतापसिंह, गढ़ जीते सब धाय॥[१]

धौलपुर और करौली की गाथा इतनी विकट नहीं है। इनके वर्तमान स्वरूप को बनाने में अंग्रेजों का हाथ रहा। करौली को १८१७ ई० में मराठों से लेकर करौली के राजाओं को दे दिया, और इसी प्रकार सन् १८०६ में धौलपुर का राज्य महाराज कीरतसिंह को दिया गया। इस प्रकार मत्स्य के राज्यों का आधुनिक निर्माण सन् १७५० से १८२० के अंतर्गत हुआ और इस काल की साहित्यिक चेतना भी उसी प्रवृत्ति के अनुरूप रही। सन् १८२० से १९०० तक का समय अपेक्षाकृत शान्ति का था और इसमें अनेक प्रकार के काव्य-साहित्य की रचना हुई। साहित्य-सृजन की दृष्टि से यह प्रान्त बहुत महत्वपूर्ण है। अनुसंधान में मिली सामग्री के आधार पर तथा पुराने जानकार व्यक्तियों से वार्तालाप करने के उपरान्त मेरी यह धारणा है कि यहां का साहित्यिक वातावरण बहुत ही जागरूक रहा। यद्यपि यहां के राजाओं को निरंतर युद्ध करने पड़ते थे, किन्तु कवि लोग भी अपना काम बराबर करते रहते थे। सूरजमल और जवाहरसिंह के समय में भी, जब इन राजाओं को इतिहास-प्रसिद्ध युद्धों में भाग लेना पड़ा, काव्य-रचना यथेष्ट मात्रा में हुई। कुछ राजा तो स्वभाव से विद्या-व्यसनी थे और उनकी शक्ति तथा धन का सदुपयोग साहित्य की अभिवृद्धि में होता था। उदाहरण के लिए भरतपुर के एक राजा बलवन्तसिंहजी को ही लीजिए।[२] इनके समय में साहित्य के विविध अंगों की पूर्ति हुई। अनेक पुस्तकों के अनुवाद हुए। बहुत-सी पुस्तकें लिपिबद्ध की गईं। कम से कम २५-३० साहित्यकारों के नाम प्राप्त होते हैं[३]—

१ महाराज बलवंतसिंह स्वयं. २ श्रीधरानन्द रीतिकार. ३ बलदेव, खण्डेलवाल वैश्य—विचित्र-रामायण के रचयिता. ४ गणेश—विवाह विनोदकार. ५ रामकवि—रीति के सम्पूर्ण विषयों के लेखक. ६ लक्ष्मीनारायण—गंगालहरी. ७ जुगल कवि—रसकल्लोल. ८ वैद्यनाथ—विक्रम-पंचदण्ड-कथा. ९ रूपराम—ज्योतिप-

---

[१] बहुत समय तक अलवर का राज-संकेत— 'गढ़ जीते सब धाय' ही रहा। कुछ ही वर्षों पूर्व महाराज जयसिंहजी ने इसे 'आत्मानं सततं विद्धि' में परिवर्तित किया।

[२] इनका समय सन् १८२६ से १८५३ तक है।

[३] स्व० पंडित मयाशंकर याज्ञिक की खोज में भी इस समय के बहुत-से कवियों के नाम दिये गये हैं।

ग्रन्थों के लेखक. १० रसानन्द—प्रसिद्ध कवि, अनेक ग्रन्थों के कर्ता. ११ देवियः खवास—रसानन्द के सेवक, राजनीतिकार. १२ वटुनाथ—रासपंचाध्यायी. १३ रामकृष्ण—दानलीला. १४ भोलानाथ कायस्थ—शंकरशरण: (शिवपुराण का भाषानुवाद.) १५ ललिताप्रसाद—रामशरण ग्रन्थ. १६ सेवाराम—नल-दमयन्ती चरित्र. १७ गोपालसिंह—संग्रहकर्ता. १८ मोतीराम—नायिकाभेद पर पुस्तक १९ मणिदेव—महाभारत के कुछ पर्वों के अनुवादकर्ता. २० ब्रजेस—स्फुट काव्य. २१ ब्रजचन्द—शृंगार तिलक. २२ ब्रजदूलह—पद रचयिता. २३ पंगु-कवि—कृष्णगायन. २४ देवीदास—सुधासागर. २५ जीवाराम—प्रसिद्ध लिपिकार. २६ चतुर्भुज मिश्र—अलंकार-आभा. २७ गोपालसिंह डचोढ़ीवान—स्फुटपद. २८ 'लाल-ष्याल' के रचयिता।

कला के अन्य अंगों की दृष्टि से हम कोई और विशेष बातें नहीं पाते। कुछ भवनों के निर्माण की बात पहले कही जा चुकी है। दरवारों में चित्रकार और संगीतज्ञ कुछ तो अवश्य थे ही, किन्तु उनकी ख्याति इतनी नहीं हुई कि उनका कुछ विवरण दिया जा सके। अलवर तथा भरतपुर के म्यूजियमों में जो चित्र-संग्रह मिलते हैं उनसे इस दिशा में कुछ प्रकाश पड़ता है, परन्तु कह नहीं सकते कि यह केवल संग्रह-कार्य है अथवा राजदरबारों में किया गया यहीं के चित्रकारों का कृतिकलाप। यदि राजदरवारों में भी कार्य हुआ होगा तो उनकी संख्या वहुत कम रही होगी। ऐसा मालूम होता है कि इन सग्रहालयों में अधिक कार्य संग्रह का ही है। हाथीदांत पर नक्काशी का काम, पत्थर की कारीगरी, मिट्टी के वर्तन आदि यहां की दस्तकारी के सुन्दर नमूनों में देखे जा सकते हैं, किन्तु इनका युग धीरे-धीरे बीतता जा रहा है और ये उद्योग भी नष्ट होते जा रहे हैं। जीविकोपार्जन का प्रधान साधन कृषि रहा और दूसरा सरकारी नौकरी। नौकरी के वहाने वहुत-से परिवारों का पालन हो जाता था। भरतपुर में एक पलटन 'वाईसी'[१] कहलाती थी। कहा जाता है, इसमें किसी समय २२०० जवान थे। ये जवान वड़े विचित्र थे, जिनमें कुछ तो माता के उदर में बैठे हुए भी जवानी प्राप्त कर लेते थे, और कुछ अपने दाह-संस्कार के उपरान्त भी हाजरी पाते हुए अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। इनकी वेश-भूषा निराली थी–अंगरखा, पाजामा और लुक्केदार पगड़ी तथा कमर में वंधी तलवार। इनको कुछ कार्य भी नहीं करना पड़ता था। इनका नाम रजिस्टर में दर्ज हो जाता था और महिना समाप्त होने पर तनख्वाह मिल जाती थी। जनता की सामान्य प्रवृत्ति

[१] 'वाईस' शब्द जयपुर में भी वहुत प्रचलित रहा—महाराज प्रतापसिंहजी को अपने दरबार में सब तरह के गुणीजनों की बाईसी संग्रह करने का विशेष शौक था, जैसे—कवि बाईसी, वीर बाईसी, गंधर्व बाईसी आदि—कर्णकुतूहल ५-१९।

धार्मिक थी। लोग बेईमानी नहीं करते थे। समय पड़ने पर व्यापार करने वाले बनिये भी तलवार पकड़ लेते थे। कुछ बनिया-परिवारों की कहानी तो बहुत ही ओजपूर्ण है।[1] और पेशे भी यथाक्रम चलते थे।

इस प्रान्त का बहुत कुछ साहित्य उपलब्ध है। यहां की साहित्यिक संस्थाओं में काफी हस्तलिखित पुस्तकें मिलती हैं। यह सभी सामग्री काफी पहले की एकत्रित की हुई है। आजकल तो खोज का काम कुछ अन्य प्रकार ही है, लुप्तप्राय, किन्तु सुन्दर साहित्यिक ग्रन्थों को एकत्रित करने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि इस ओर थोड़ा भी ध्यान दिया जाय तो बहुत-से लुप्त साहित्य का उद्धार किया जा सकता है और हिन्दी साहित्य के भण्डार की अभिवृद्धि हो सकती है।[2] अपनी खोज के सिलसिले में मुझे अनेक स्थानों पर जाना पड़ा, बहुत-सी संस्थाओं तथा व्यक्तियों के संग्रहालयों को देखने का भी अवसर मिला। भरतपुर का बहुत कुछ साहित्य वहां के राजकीय पुस्तकालय (अब जिला पुस्तकालय) तथा श्री हिन्दी साहित्य समिति में प्रस्तुत है। राजकीय पुस्तकालय में संग्रहीत सम्पूर्ण सामग्री भरतपुर राज्य के तोशाखाना से प्राप्त हुई थी। एक प्रकार से यह संग्रह राजाओं द्वारा ही किया गया है और कालान्तर में पुस्तकालय को प्रदान कर दिया गया। श्री हिन्दी साहित्य समिति का हस्तलिखित साहित्य अनेक व्यक्तियों के कठोर परिश्रम का फल है। इस ओर विशेष परिश्रम करने वाले व्यक्तियों में वैद्य देवीप्रकाश अवस्थी (अब स्वर्गीय) तथा पंडित नन्दकुमार शर्मा (अब गुरुमुखिदास) के नाम लिये जा सकते हैं। हस्तलिखित पुस्तकों को संग्रह करने का प्रथम प्रयास पंडित मयाशंकर याज्ञिक द्वारा हुआ और उन्होंने अपने निजी पुस्तकालय में बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियां एकत्रित कीं। भरतपुर की कुछ सामग्री अन्यत्र भी मिलती है, जिनमें महाराज भरतपुर का नाम प्रमुख है। सामग्री अव्यवस्थित है परन्तु काम की कई चीजें मिलीं। राज्य-परिवार से सम्बन्धित और भी कई व्यक्ति हैं जिनके पास

---

[1] इन वीर परिवारों में हल्दिया वंश विशेष उल्लेखनीय है। अलवर राज्य से संबंधित खुशालीराम हल्दिया का वर्णन पढ़ने योग्य है। जयपुर राज्य में यह परिवार बहुत प्रसिद्ध हुआ और अलवर में भी इस परिवार के लोग हैं। इस वंश में आजकल जयपुर के राव नरसिंहदास हल्दिया प्रमुख हैं। हल्दिया वंश की वीरता और राजनैतिक चातुरी इतिहास-प्रसिद्ध है। देखें—मेरे द्वारा संपादित तथा रा. प्रा. वि. प्र. मंदिर से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला 'प्रताप रासो'।

[2] प्रसन्नता का विषय है कि राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर इस संबंध में बहुत ही प्रशंसनीय कार्य कर रहा है।

पुस्तकों के संग्रह हैं, जैसे—रावराजा यदुनाथसिंह, वृन्दावन वाले राजाजी, वैर वाले राजाजी।[1] प्राप्त सामग्री अव्यवस्थित और जीर्णावस्था में मिली है।

अलवर में सामग्री तो कम है किन्तु है अधिक व्यवस्थित। इसका सबसे बड़ा संग्रह अलवर म्यूजियम में है। पहले पोथीशाला के नाम से एक सरकारी विभाग था किन्तु बाद में यह सम्पूर्ण सामग्री म्यूजियम को दे दी गई।[2] महाराज अलवर का निजी पुस्तकालय अनेक सुन्दर हस्तलिखित पुस्तकों से परिपूर्ण है। मैंने कई दिन उनके 'विजय पैलेस' पर ही व्यतीत करके पुस्तकालय का अवलोकन किया और कुछ उपयोगी सामग्री मिली। अनुसंधान के क्षेत्र में पंडित रामभद्र ओझा का नाम प्रमुख है। कवि जयदेवजी की शिष्य मण्डली भी जिसमें, पंडित नाथूराम, पंडित हरिनारायण किंकर तथा व्रजनारायण आचार्य के नाम लिये जा सकते हैं, इस ओर अग्रसर हुई। कुछ साहित्य बारहठों के पास है और कुछ भट्ट लोगों के पास। यहां के अनेक कवि बारहठ हैं, जैसे—उम्मेदराम, रामनाथ, शिवबख्श, बख्तावरदान। जावली के ठाकुर साहब के पास कई पुस्तकें मिलीं। तिजारा में भी एक संग्रहालय था किन्तु उसकी सामग्री अब नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। बसवा, राजगढ़ आदि स्थानों में भी सामग्री प्राप्त होती है किन्तु ऐसी अवस्था में जिससे लाभ उठाना बहुत कठिन है।

इसी प्रसंग में मन्दिरों का नाम भी लिया जा सकता है, जिनमें प्रधानता वल्लभकुली मन्दिरों की है जहां कृष्ण साहित्य मिलता है। कामां के प्रसिद्ध चन्द्रमाजी के मन्दिर में हस्तलिखित सामग्री है, परन्तु इस प्रकार की सामग्री से कोई विशेष प्रयोजन हल नहीं होता, क्योंकि प्रथम तो उस सामग्री का दर्शन ही कष्ट-साध्य है और उसमें प्रायः पूजा संबंधी पद हैं। इनका साहित्यिक मूल्य भी थोड़ा ही प्रतीत होता है। सूर के पदों को संग्रह करने की ओर बहुत रुचि रही है। इस प्रसंग में एक बात जान कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। सूर के पांच-छै हजार पद प्रचलित हैं किन्तु मुझे एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने बताया कि नगर के पास एक ग्राम में एक ठाकुर के यहां सूर के सवा लाख पदों की हस्तलिखित पुस्तक मौजूद है। हिन्दी जगत में यह समाचार बहुत महत्वपूर्ण है और संभव है इसका पता लगने पर सूर संबंधी धारणाओं में अनेक परिवंतन हों। उस ग्राम

---

[1] वैर के आदि शासक प्रतापसिंहजी कवियों के लिए कल्पवृक्ष सदृश थे। इस प्रदेश के प्रसिद्ध कवि सोमनाथ इन्हीं के आश्रित थे। आज भी वैर वालों के पास कुछ साहित्य बताया जाता है, किन्तु मुझे उपलब्ध नहीं हो सका।

[2] इस समय यह सामग्री रा० प्रा० वि० प्र० की देखरेख में दे दी गई है।

का पता ठिकाना बहुत कुछ पूछने पर भी वे न बतला सके। पता नहीं उन्हें स्मरण ही नहीं आया अथवा वे बताना ही नहीं चाहते थे। डीग के पास घाटा नामक स्थान में गुसांइयों का एक पुस्तकालय है जिसमें हस्तलिखित पुस्तकें भी मौजूद हैं, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से इस संग्रह का मूल्य अधिक नहीं, क्योंकि वैद्यक-पुस्तकें ही अधिक संख्या में हैं। कुछ सामान्य पदावली और कृष्णलीला-साहित्य अवश्य मिलता है। गोवर्द्धन में कुसुमसरोवर पर निवास करने वाले कृष्णदास बाबाजी ब्रज-साहित्य के अनुसंधान में लगे हुए हैं। गोवर्द्धन और भरतपुर का बहुत घनिष्ठ संबंध रहा है। एक प्रकार से गोवर्द्धन भरतपुर का ही भाग है क्योंकि अंग्रेजी राज्य में होते हुए भी यहाँ की आधे से अधिक भूमि भरतपुर की थी। भरतपुर के राजाओं का दाह-संस्कार गोवर्द्धन में ही होता है। मानसी गंगा के उत्तरी तट पर भरतपुर के राजाओं की छत्रियां बनी हुई हैं जो स्थापत्य-कला का अच्छा नमूना हैं। कुसुमसरोवर पर भी महाराजा सूरजमल तथा वर्तमान महाराज की पितामही की सुन्दर छत्रियां हैं। इनमें से पहली छत्री में अनेक चित्र हैं जिनका संबंध भरतपुर राज्य और वहां के मन्दिरों से है। भरतपुर में स्थित मन्दिर हरदेवजी के पुजारी गोसाईं बेनीप्रसाद जी ने बताया कि गोवर्द्धन की छत्री में भरतपुर के हरदेवजी के मन्दिर का ही चित्र है। अस्तु, यहां की सामग्री प्राय: अव्यवस्थित अवस्था में है और बहुत कुछ सुन्दर हस्त-लिखित साहित्य समुद्रपार यूरोप और अमेरिका भेजा जा चुका है।[1] फिर भी जो कुछ साहित्य मौजूद है वह मत्स्य की प्रतिष्ठा स्थापित करने में यथेष्ट है। संभव है, अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा कुछ और भी महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो सके।

हमारे चारों राज्यों का वर्तमान स्वरूप सन् १७५० के लगभग निर्मित हुआ और हमने अपने अन्वेषण का समय तभी से चुना है। इन स्थानों में इससे पहले का साहित्य बहुत कम मात्रा में उपलब्ध होता है। इस समय से पहले की सामग्री प्राप्त करने की दृष्टि से जयपुर के कुछ पुस्तकालयों को देखा गया। वहां के सार्वजनिक पुस्तकालय में तो हस्तलिखित पुस्तकों की संख्या बहुत कम है। अपने काम की हमें एक ही उपयोगी पुस्तक 'दयाबोध' प्राप्त हुई जो मुद्रित प्रति के

---

[1] दो एक महाशय यही काम करते थे। एक महाशय भजनलाल बोंडीवाला अपनी जीविका अमेरिका और जर्मनी को हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकें भेज कर ही प्राप्त करते थे। अमेरिका के विश्वविद्यालयों में संग्रहीत हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची देखने पर इस बात की पूर्ण पुष्टि हो गई।

अनुसार थी। जयपुर महाराज की राजभवन लाइब्रेरी का अनुसंधान करने पर इस काल से पहले का काफी साहित्य मिला, किन्तु उसमें यह पता लगाना कठिन है कि मत्स्य प्रान्त में कितना काम किया गया होगा। निश्चित रूप से इस प्रदेश से संबंधित कुछ नाम सामने आते हैं, जैसे—

(१) **लालदास**—इनका जन्म १५९७ वि० में हुआ था। इनका मत लालदासी कबीरपंथ से मिलता जुलता है। ये दादू-नानक के समकालीन थे। इनका जन्म मेव जाति में हुआ था, किन्तु यह हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर पक्ष-पाती थे। इनका संग्रह 'लालदास की वाणी' है। भगवान का संकेत राम, साहब, धनी आदि अनेक नामों से किया है—

> डोरी पकड़ो राम की, नित उठ जपिये राम।
> कहा मोहला जगत सूं, पड़े धनो सूं काम॥

यह एक पहुँचे हुए महात्मा थे और इनके मानने वाले इनको बहुत ऊँचा मानते हैं। इनके नाम से शेरपुर में अब तक मेला लगता है। कहा जाता है, बादशाह अकबर इनका दर्शन करने के लिए इनके स्थान धौली दूब में स्वयं ही आये थे। इनका मृत्यु-संवत् १७०५ बताया जाता है। लालदासजी को हम सरलता से संत कवियों की कोटि में रख सकते हैं—

> कहे लाल साँई को प्यारो, श्रवण सुनो इक सबद हमारो।
> हिन्दू तुरक एकसौ सूझै, साहब घट सब एकहि सूझै॥
>
> कहे लाल साँई को प्यारो, साहब एक दणावण हारो।
> हिन्दू तुरक को एकहि साहब, राह बणाई दोय अजायब[1]॥

लालदासी मत आज भी प्रचलित है। ये लोग लालदास के अतिरिक्त और किसी को नहीं मानते। किसी शुभ अवसर के होने पर 'लालदास का रोट' करते हैं। लालदास की मृत्यु नगला जिला भरतपुर में हुई। असाढ़ शुक्ला १५ को शेरपुर जिला अलवर में इनके नाम से हर साल मेला लगता है।

(२) **नल्लसिंह**—इनका सम्बन्ध करौली राज्य से था और इन्हें वहां के राजाओं का आश्रय प्राप्त था। विजयपाल बयाना के प्रसिद्ध राजा थे

---

[1] 'अरावली पत्रिका', जिल्द तीन, संख्या १-३। अलवर की इस साहित्यिक पत्रिका का सुरुचिपूर्ण संपादन होता था—बहुत कुछ अनुसंधित तथा विवरणात्मक साहित्यिक सामग्री भी रहती थी। किन्हीं कारणों से यह पत्रिका केवल कुछ समय ही चल सकी।

ग्रौर इनसे सम्बन्धित "विजयपाल रासो" नाम से एक सुन्दर वीरकाव्य की रचना नल्लसिंह द्वारा की गई। इस पुस्तक की तथाकथित प्रामाणिक एक हस्तलिखित प्रति करौली के मन्दिर में है जिसके दर्शन किये जा सकते हैं। इनका समय बहुत पुराना है ग्रौर ये वीरगाथा काल के कवियों में गिने जाते

इनके काव्य के सम्बन्ध में ग्रनेक संदिग्ध वातें हैं ग्रौर साथ ही इस हस्तलिखित प्रति के सम्बन्ध में भी। वैसे कुछ लोग तो इस प्रति को नल्ल के समय का ही लिखा हुग्रा मानते हैं।

(३) **करमाबाई**—यह वही प्रसिद्ध करमावाई हैं जिनकी खिचडो का भोग जगदीश में ग्रब भी लगता है। इनकी समाधि, अरावली पर्वत की तलहटी में, गढ़ी मामोड़ पर है। यह स्थान ग्रलवर के ग्रन्तर्गत ग्राता है। इनकी साहित्यिक कृतियाँ उपलब्ध नहीं होतीं किन्तु इनके कवि होने की प्रसिद्धि ग्रवश्य है। भक्तभाल में करमावाई का उल्लेख इस प्रकार है—

हुती एक वाई ताको 'करमा' सुनाम जानि,
विना रीति भांति भोग खिचरी लगावही।
जगन्नाथ देव ग्राप भोजन करत नीके,
जिते लगें भोग तामें यह ग्रति भाव ही॥
गयो ताहं साधु, मानि बड़ो ग्रपराध करै,
भरै वहु सांस सदाचार ले सिखाव ही।
भइयों ग्रवार देखें खोलि के किवार,
जो पै जूठनि लगी है मुख धोए बिनु ग्राव ही॥

(४) **जोधराज**—ये ग्रत्रि गोत्रीय ग्रादि-गौड़ ब्राह्मण थे। डाक्टर ग्रियर्सन का कहना है कि वह १४२० ई० में पैदा हुए। कहा जाता है ये निमराना (ग्रलवर) के महाराज चन्द्रभान के ग्राश्रित थे। इन्हीं की ग्राज्ञा से 'हम्मीर रासो' एक प्रसिद्ध वीर-काव्य की रचना हुई।[1] शुक्लजी तथा बा० श्यामसुन्दरदास ने इनके काव्य की प्रशंसा की है। मिश्रबन्धु इन्हें तोपकवि की श्रेणी में रखते हैं। डाक्टर ग्रियर्सन के समय को न मानते हुए खवा (जयपुर) के कुमार ने जो डा० दास को पत्र लिखा उसमें जोधराज को १८ वीं शताब्दी वि० का माना है। इनकी रचनाएँ गद्य में भी मिलती हैं। हम्मीररासो वीर ग्रौर शृंगार दोनों की सफल रचनाग्रों का उदाहरण है। इसी प्रणाली पर बहुतस मय बाद ग्रलवर के राजकवि चन्द्रशेखर

[1] का० ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

वाजपेयी ने सं० १९०२ में 'हम्मीर हठ' और लिखा था। यह भी एक सुन्दर वीर काव्य है।

इन कवियों की रचनाओं से दो तीन बातें हमारे सामने आती हैं—

१. मत्स्य प्रदेश में वीर काव्यों की परम्परा प्रचलित हो चुकी थी। 'विजयपाल रासो' तथा 'हम्मीर रासो' जो वीर गाथा काल के शीर्ष हैं यहीं लिखे गए। यह परम्परा बराबर चलती रही। सूदन के 'सुजान-चरित्र,' तथा जाचीक जीवन के 'प्रताप रासो' का प्रणयन इसी पद्धति का अनुगमन था। कुछ समय उपरान्त 'यमन-विध्वंस-प्रकास'[1], 'महल-रासो'[2] आदि ग्रन्थ भी लिखे गए।

२. धर्म की ओर प्रवृत्ति रही। कृष्ण और राम भक्ति तो थी ही क्योंकि यह प्रान्त यदुवंशी तथा सूर्यवंशी राजाओं के द्वारा शासित था। यदुवंशभूषण 'कृष्ण' और सूर्यवंशावतंस 'राम' विषयक कविता का प्रचार क्यों न होता? निर्गुण भक्ति के लिए भी कुछ क्षेत्र बन गया था और राज्य के मेव तथा हिन्दुओं में स्नेहयुक्त सम्मिलित जीवन बिताने का प्रयास किया जाने लगा था।

३. उस समय काव्य की भाषा राजस्थानी से प्रभावित थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों ने जनवाणी का उपयोग किया। लालदास[3] को तो ऐसा करना आवश्यक ही था और अन्य कवि राजस्थान के थे ही। अतएव यहीं की बोली ली गई। भाषा-विषयक यह परम्परा आगे नहीं चल पाई। काव्य में ब्रजभाषा की माधुरी पर सब कोई मुग्ध थे, फिर मत्स्य ही पीछे क्यों रहता और विशेषकर जब मत्स्य की काव्य-धारा उत्तर-प्रदेश से आये पंडितों द्वारा प्रवाहित की गई थी। राजस्थानी के दर्शन कहीं-कहीं ही हो पाते हैं। उस समय की एक विशेषता और थी, मुसलमानों की बातें मिश्रित खड़ी बोली उर्दू में कराई जाती थीं। जैसे—

इस वास्ते तुमसे अरज बहु भांति कीजत है बली।
अब हाथ उस पर रक्खिए तब लेह जंग फते अली॥

इस समय के उपलब्ध साहित्य पर दृष्टिपात करने से जन-जीवन संबंधी कुछ बातें और मिलती हैं। मत्स्य प्रदेश में सगुणोपासना का जोर था—राम और

---

[1] दत्तकवि—उग्र काव्यकार।

[2] जयदेव, अलवर।

[3] लालदास ने साधारण कोटि के लोगों को जन-वाणी में उपदेश दिया।

'इक प्रीति श्री हरदेव सौं.........'

सूरजमल की छत्री में भी हरदेवजी के मन्दिर का चित्र है[1]। कुछ समय उपरान्त ऐसा हुआ कि राजा ने लड़ाई के लिए गौसांईजी को भी कहा। 'गौसांई' लड़ाई पर कैसे जाते ? बैरागी तो तैयार थे ही, अतएव राज्य के गुरु बैरागी हो गये और श्री लक्ष्मणजी की मानता शुरू हुई। पहले राज्य के झंडे के नीचे 'गोकुलेन्दु की जय' लिखा जाता था। पिछले महाराज ने राज्य-चिन्ह के नीचे 'लक्ष्मणजी सहाय' के स्थान पर 'गोकुलेन्दुर्जयति' लिखवाया था। इसे पुनः बदल कर 'लक्ष्मणजी सहाय' कर दिया गया है। राजा, ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ सभी धर्म की मर्यादा का निर्वाह करते थे। पढ़ने-लिखने का स्तर बहुत नीचा था। फिर भी कुछ धनी व्यक्ति समाज में अपने पढ़ने के लिए हस्तलिखित प्रतियां लिखवाते थे। इन प्रतियों की प्रतिष्ठा भी खूब थी। मेरे पूज्य पिताजी के पास जो हस्त-लिखित प्रतियों का थोड़ा सा संग्रह था वह उनके पूजा वाले बस्ते में रहता था और उन्हीं में से कुछ पुस्तकों का पाठ नित्य नियम में शामिल था। उस समय हस्त-लिखित प्रतियों का खूब प्रचलन था, मूल्य भी आज के हिसाब से कुछ अधिक नहीं था। ४०, ५० पत्र की पुस्तक का मूल्य एक रुपया चार आना तथा १५०-२०० पत्रों की पुस्तक ४-५ रुपये की मिलती थी। भरतपुर तोशाखाने की कुछ किताबों पर यह मूल्य लिखा हुआ पाया गया[2]। हस्तलिखित पुस्तकें वहुत सुन्दरता के साथ लिखी जाती थीं। आरम्भ से अन्त तक एक ही प्रकार की लिपि रहती थी और स्याही में भी अन्तर नहीं आता था। यदि किसी शब्द को काटने की आवश्यकता पड़ती थी तो यह कार्य 'हरतार' लगा कर किया जाता था।

प्राप्त साहित्य में राजघरानों के अतिरिक्त सामान्य जन-जीवन के भी कुछ चिन्ह मिलते हैं। राजाओं का कार्य युद्ध करना, शासन करना तथा कवियों को आश्रय देना होता था। प्रजा को सर्वदा राजा के सुख-वैभव का ही ध्यान रखना पड़ता था। किन्तु राजा लोग समय-समय पर प्रजा को आमंत्रित करते थे। उत्सवों के अवसर पर बहुत भीड़ हो जाती थी और अनेक शुभ अवसरों पर दान, इनाम आदि भी दिये जाते थे। राज्य में ब्राह्मणों का सम्मान होता था और राज-कार्य में भी उनसे सहायता ली जाती थी। इनके अतिरिक्त कायस्थ, वैश्य आदि भी सेवा में लिए जाते थे और राजा इस बात का ध्यान रखते थे कि

---

[1] यह छत्री गोवर्द्धन में कुसुम सरोवर नामक स्थान पर है।

[2] उदाहरणार्थ 'हितोपदेश भाषा कलमी जिल्द समेत डेढ रुपया'।

उनकी प्रजा सुखी रहे। राजा के विनोद, आखेट, क्रीड़ा आदि जनता को भी उत्साह प्रदान करते थे। महल की रंगरेलियों के अलावा कभी कभी 'लाल' की जोटें भी तैयार की जाती थीं।[1] राजपुत्रों को पढ़ाने के लिए पंडित रखे जाते थे जो हितोपदेश और आइने अकबरी आदि से राजनीति और सामान्य नीति सिखाते थे। वैद्यक और ज्योतिष का भी कार्य चलता था। अंग्रेजी अस्पताल उस समय तक स्थापित नहीं हुए थे। लोगों का स्वास्थ्य उत्तम कोटि का था। कभी-कभी राज-परिवारों में झगड़े भी हो जाते थे। भरतपुर के दुर्जनसाल, करौली के मदनपाल और अलवर के मोहब्बतराय आदि इसके उदाहरण हैं। इस समय में अंग्रेजों का आतंक सभी जगह छाया हुआ था। यद्यपि कुछ लोग उन्हें अछूत समझते थे किन्तु उनकी ओर से सर्वदा सजग रहते थे। 'फिरंगी' नाम जन-साधारण में आतंक का सूचक होता था। लोगों का साधारण ज्ञान सुनी-सुनाई बातों पर आधारित होता था। जीवाराम के 'अक्कलनामे' से जिन बातों का ज्ञान होता है वे वास्तविकता से दूर हैं। बंगाले में जादू की बात केवल जनश्रुति पर अवलम्बित है नहीं तो उस समय तक बंगाल पर पूर्ण रूप से अंग्रेजों का अधिकार था और जादू आदि सब दूर हो चुके थे तथा जादू आदि के स्थान पर वहाँ आधुनिक विज्ञान की बातें प्रारम्भ हो चुकी थीं।

मन्दिरों और गाय को पूज्य भाव से देखा जाता था। गंगा और यमुना की पवित्रता प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती थी। शिवजी की पूजा घर-घर होती थी और जिस प्रकार आजकल शिवरात्रि को महादेवजी का 'व्याहुला' सुना जाता है उसी प्रकार भक्त लोग तब भी रात्रि को व्याहुला सुनते और जागरण करते थे। लोगों के विचार धार्मिक थे और राजा को देवता मान कर उसमें भक्ति और विश्वास रखते थे। मत्स्य का जन-समाज कुछ पिछड़ा हुआ प्रतीत होता है, सामान्यत: वे उस समय की प्रचलित विचारधारा से पीछे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्स्य में उन्नीस सौ तक पश्चिम का प्रभाव आया ही नहीं था। लोग अंग्रेजों को अछूत समझते थे और इसी प्रकार विदेशी सभ्यता तथा संस्कृति को। कुछ लोग अंग्रेजों से हाथ मिलाने के पश्चात् स्नान तक करते थे। उर्दू और फारसी का प्रचार था और संस्कृत का सम्मान। कुछ लोग हिन्दी के उत्थान में सतर्क थे और ऐसे ही पुरुषों के उद्योग से आज हिन्दी का अस्तित्व राज्यों में दिखाई पड़ रहा है।

हमें अपने अनुसंधान में अनेक प्रकार की हस्तलिखित प्रतियां मिलीं। इनमें

---

१ 'लाल ख्याल' देखें।

कई प्रकार के कागज का प्रयोग किया गया है, कुछ देशी और कुछ विदेशी। स्याही चमकदार और गहरे काले रंग की लगाई गई है। विराम लगाने, दोहा, चौपाई, कविता आदि शीर्षक लगाने में कहीं-कहीं लाल स्याही का उपयोग भी होता था। जहां कहीं कुछ काटने की आवश्यकता पड़ती थी तो हरतार लगाया जाता था। इन हस्तलिखित प्रतियों में कुछ लेख बहुत ही सुन्दर और स्पष्ट तथा मोटे अक्षरों में हैं। राजदरबार में इन हस्तलिखित पुस्तकों को बड़े यत्न से रखा जाता था। जिल्दें सुन्दर बनती थीं और उन पर रेशमी कपड़ा चढ़ाया जाता था। एक ही पुस्तक में आवश्यकता के अनुसार छोटे बड़े अक्षर लिखे जाते थे। उस समय लोगों में संग्रह की प्रवृत्ति थी। उच्च कोटि के कवियों की कृतियां लिपिबद्ध की जाती थीं और कुछ लोग अपनी रुचि के अनुसार पद, कवित्त, सवैया, दोहा आदि संग्रह कर लेते थे। कुछ ग्रन्थों का बहुत प्रचलन था और उनकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां मिली हैं, जैसे—

(१) **प्रचलित धार्मिक ग्रन्थ**—तुलसी के सभी ग्रन्थ लिपिबद्ध मिले। इनमें मानस, विनय, कवितावली तथा रामाज्ञा (सुगनौती) पर विशेष ध्यान दिया गया था। मानस के अनेक काण्डों की अलग-अलग बहुत-सी प्रतियां मिलीं। 'तुलसी' के साथ वालमीकि रामायण की भी प्रतियां पाई गईं। महाभारत की हस्तलिखित प्रतियां कम ही मिलीं। संभव है इसका कारण इसका वृहद् आकार हो। इनके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण, महाभारत, भागवत, शिवपुराण, देवीमहात्म्य, हितोपदेश आदि के पद्यानुवाद प्रस्तुत किए जाते थे। इन अनुवादों का कुछ भी उद्देश्य रहा हो किन्तु ये इस बात का प्रमाण हैं कि इन ग्रन्थों की ओर लोगों की रुचि थी और इनका पाठ भक्ति तथा श्रद्धा के साथ किया जाता था।

(२) **बिहारी सतसई**—की अनेक प्रतियां मिली हैं जिनमें कुछ सटीक भी हैं। इसी प्रकार देव के ग्रन्थों की भी हस्तलिखित प्रतियां हैं। केशव की रामचन्द्रिका पर भी लोगों का ध्यान गया। देवजी तो इधर-उधर जाते ही रहते थे और उनके साथ इनके ग्रन्थों का प्रचार भी बढ़ता था। पद्माकर के फुटकर छंद बहुत-से लोगों ने संग्रह किये थे।

(३) **सूर के पद**—अनेक संग्रह मिले, किन्तु ये अपेक्षाकृत बहुत छोटे हैं। इनके संकलन का कार्य प्रायः बल्लभकुली मंदिरों में होता था। सूर के पदों की हस्तलिखित पुस्तकें बहुत-से मन्दिरों में पाई गईं जिनमें से आरती और पट खुलने के समय सूर के पदों का गायन होता था। इन

प्रतियों को देखने से पता लगता है कि कालान्तर में लोगों ने अपने बनाये हुए भी अनेक पद सूर के पदों में सम्मिलित कर दिये।

(४) **हितोपदेश आदि संस्कृत ग्रन्थ**—हितोपदेश का बहुत प्रचलन था और हमारी खोज में इस ग्रन्थ के अनेक अनुवाद मिले जो गद्य और पद्य दोनों में हैं।

अलवर और भरतपुर इन दोनों स्थानों में बहुत कुछ सामग्री मिली। मत्स्य प्रान्त के इन दोनों प्रमुख स्थानों के उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करने पर कुछ बातें विशेष रूप से दिखाई देती हैं—

१. अलवर का काव्य अधिक सौम्य है। उसमें न उद्दंडता है और न उग्रता; किसी बड़ी लड़ाई का वर्णन भी नहीं है। कहीं कहीं उपद्रव करने वालों पर जो सख्ती की गई उसी को बढ़ा कर लिख दिया गया है। राजाओं के प्रति बहुत ही श्रद्धा थी और जो भी ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं वे किसी न किसी राजा के 'विलास' या 'प्रकास' हैं। दत्त कवि, जिनकी उग्रता उल्लेखनीय है, इस नियम के अपवाद कहे जा सकते हैं।

२. भरतपुर का काव्य बहुत उग्र और तीव्र है। उसमें काफी गर्मी और कटुता है। लड़ाइयों के कारण इसमें वीर-रस का अच्छा समावेश हो गया है। भरतपुर के कवि कुछ स्वतंत्र प्रकृति के भी प्रतीत होते हैं। राजाओं की गुण-गाथाओं के अतिरिक्त कुछ स्वतंत्र ग्रन्थ भी हैं, जैसे—सिंहासन बत्तीसी, नवधा भक्ति, महादेव को व्याहुलो, शिवस्तुति, ब्रजलीला तथा अनेक ग्रन्थों के अनुवाद। अलवर का क्षेत्र इतना विस्तृत प्रतीत नहीं होता।

३. अलवर में अंग्रेजों के प्रति कोई भी विद्रोह-भावना नहीं देखी जाती। किसी ने तो अंग्रेजों के इशारे पर अलवर की बहुत-सी लज्जाजनक बातें कह डाली हैं। संभव है उन बातों में सत्य का भी अंश हो, किन्तु कोई भी सम्मानपूर्ण व्यक्ति इस प्रकार की बातें कहना पसन्द नहीं करेगा। अंग्रेजों ने अनेक बार अलवर राज्य में हस्तक्षेप किया। केडल नाम के अंग्रेज की कारगुजारी प्रसिद्ध ही है।

४. भरतपुर में अंग्रेजों के लिए और साथ ही मुसलमानों के लिये बहुत उग्र पद्य लिखे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेज और मुसलमान

दोनों ही भरतपुर से भयभीत रहते थे—

(अ) भेजी फोरि पटक पछार षात षंभन तैं
रेजी अंगरेजन की रोवैं कलकत्ता में ।[1]

(आ) हल्ला में हारेंगे फिरंगी हजार भांति
जालिम जटा के कटा करि डारेंगे ।[1]

(इ) तेगन तें तोड डारे मूंड अंगरेजन के
परे रहे खेत में भिखारी के से कूलरा ।

जब भरतपुर के जाट अंग्रेजों से इस प्रकार का आतंकमय व्यवहार कर रहे थे तब—

माचोरी कौ राव सो तौ जग में जनानों भेष
करि पहरे कर चूडौ अनबट घूघरा ।

इसमें संदेह नहीं, यह अतिशयोक्तिपूर्ण कविता है, क्योंकि इसमें उदयपुर, जयपुर को भी ऐसा ही कहा है—

चौके द्रगपाल छत्र धारी महिमंडल के
जैंपुर उदैंपुर उठाय आयो लूगरा ।[1]

अलवर के साहित्य में गंभीरता की गरिमा है। भरतपुर का काव्य उग्रता से चमत्कृत है। इसका कारण दोनों स्थानों का वातावरण और परिस्थिति भी है। वैसे अलवर का राज्य महाराजा प्रतापसिंह ने भरतपुर से ही छीना था और युद्ध में भी करारी हार पहले ही दे चुके थे, जब प्रतापसिंह जयपुर सेना के नायक थे। किन्तु भरतपुर में कुछ कारण ऐसे बने रहते थे कि कवियों की अपनी वाक्-प्रतिभा को वीर-रस से संबंधित करने के अवसर मिल ही जाते थे ।

इस अनुसंधान का कार्य अनेक स्थानों में हुआ है, जैसे—सार्वजनिक पुस्तकालय, राजाओं के विशाल भवन, मंदिरों के जगमोहन, पुराने पंडितों की बैठकें, राजगढ़ और डीग के खंडहर, नगर और डहरा जैसे छोटे गांव, मथुरा, आगरा जैसे बड़े नगर, पुराने क्षतिग्रस्त मंदिर, यमुना का तट, कुसुम-सरोवर तथा उनके पास की छत्रियां, वृन्दावन की कुंजें, किलों के कुछ भग्नावशेष, राजकीय संग्रहालय, बारहठों के सामान्य द्वार, पंसारियों की रद्दी, दीमक लगे बस्ते, वेदपाठी ब्राह्मणों के चरण, गिरिराज की पर्वत-शृंखलाएँ आदि। इस कार्य के सम्पादन में बहुत-से व्यक्तियों का सहयोग रहा जिनमें चारों राज्य के नरेश, वहां के साहित्यकार, क्यूरेटर, पुस्तकालयाध्यक्ष, राज कर्मचारी आदि सम्मिलित हैं। अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है कि लोगों की कुछ ऐसी मनोवृत्ति है कि

---

[1] 'परसिद्ध' कवि द्वारा।

वे अपने पास संग्रहीत साहित्य को प्रकट होने देना नहीं चाहते । अनेक स्थानों पर तो बस्ते मात्र का दर्शन हुआ, किन्हीं स्थानों पर पुस्तकों के स्पर्श की आज्ञा नहीं मिली और कुछ महानुभावों ने तो केवल बातों में ही टहला दिया ।

मैंने सम्पूर्ण सामग्री को छः भागों में विभाजित किया है—

१. रीति-काव्य,
२. शृंगार-काव्य,
३. भक्ति-काव्य,
४. नीति, युद्ध, इतिहास आदि,
५. गद्य-ग्रन्थ, और
६. अनुवाद-ग्रन्थ ।

अध्याय २

रीति - काव्य

सन् १७५० से १९०० ई० तक का अधिकांश रीतिकाल के अंतर्गत आता है और यही रीति-परम्परा मत्स्य में भी चली। यहां के अनेक विद्वान कवियों ने इस ओर ध्यान दिया और रीति के सभी प्रसंगों पर अपनी वाणी का उपयोग किया। पंडित रामचन्द्र शुक्ल के कालविभाजनानुसार रीतिकाल संवत् १९०० वि० में ही समाप्त हो जाता है, किन्तु मत्स्य प्रदेश में सन् १९०० ई० तक की प्रवृत्ति को देखते हुए १७५० से १९०० ई० तक का सम्पूर्ण काल रीतिकाल में ही रखना उपयुक्त होगा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल बहुत महत्त्व रखता है, और जहाँ तक संख्या का प्रश्न है, इस काल में कवियों को एक बाढ़ सी आ गई। यह बात तो नहीं कही जा सकती कि इस काल में की गई संपूर्ण कविता निकृष्ट कोटि की थी, क्योंकि जिस काल में बिहारी जैसे रसिक, भूषण और सूदन जैसे वीर काव्यकार, देव जैसे सम्पूर्ण कवि, सोमनाथ जैसे आचार्य, रसानन्द जैसे काव्य-मर्मज्ञ हों उसे हम निम्नकोटि का नहीं मान सकते। फिर भी इस काल के कवियों की एक बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की थी जिनकी कविता काव्य के वास्तविक गुणों से दूर पड़ती है।

हिन्दी में रीति काव्य का आरम्भ संस्कृत के रीति ग्रंथों की पद्धति पर हुआ। प्राचीन काल से ही संस्कृत के काव्याचार्यों ने इस ओर अपना ध्यान दिया। एक बात हम अवश्य देखते हैं कि संस्कृत के आचार्य काव्य के विभिन्न अंगों के विश्लेषण की ओर अधिक ध्यान देते थे, कविता के क्षेत्र में इतना दखल नहीं रखते थे। उदाहरण के लिए मम्मट को ही लीजिये। उन्होंने सूत्र, वृत्ति, कारिका आदि के द्वारा काव्य के विभिन्न अंगों के तथ्य का अति सुन्दर प्रतिपादन तो किया किन्तु उदाहरण के रूप में जो अवतरण दिए वे अन्य कवियों के ही थे। दुर्भाग्य से हिन्दी में काव्यत्व और आचार्यत्व मिश्रित-सा हो गया और ऐसा होने से साहित्य के दोनों अंगों को हानि पहुँची। संस्कृत साहित्य-शास्त्रियों के अनुसार काव्य के अनेक सम्प्रदाय हैं, जिनमें पांच प्रमुख हैं—

१. रस-संप्रदाय— वैसे तो इस मत के प्रवर्तक भरतमुनि हैं जिनके नाट्य-शास्त्र में 'रस' का सम्यक् विवेचन किया गया है। पर जन-श्रुति के आधार पर रस का प्रथम आचार्य नन्दिकेश्वर माना जाता है। रस-निष्पत्ति के संबंध में भरत का प्रसिद्ध सूत्र था 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस-

निष्पत्तिः ।' इसमें रस के सभी अंग आ जाते हैं। इस 'रसनिष्पत्ति' पर अनेक विद्वानों ने विचार किया और चार वाद अत्यंत प्रसिद्ध हुए—

(अ) भट्ट लोल्लट का उत्पत्तिवाद,
(आ) शंकुक का अनुमितिवाद,
(इ) भट्ट नायक का भुक्तिवाद, तथा
(ई) अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद।

इनमें अभिनवगुप्त का सिद्धान्त बहुत मान्य हुआ और काव्य-प्रकाश के रचयिता मम्मट, साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ तथा पंडितराज जगन्नाथ ने रसगंगाधर में इसी मत को माना है। एक प्रकार से अभिनवगुप्त का यह सिद्धान्त भारतीय साहित्य-शास्त्र में सर्वमान्य हो गया है।

२. **अलंकार-सम्प्रदाय**— इस सम्प्रदाय का सर्वप्रमुख आचार्य रुद्रट था। अलंकारों का उल्लेख तो सबसे पहले भरतमुनि[1] ने ही कर दिया था परन्तु इसका सर्वप्रथम वैज्ञानिक विश्लेषण भामह ने अपने काव्यालंकार में किया। ये लोग अलंकार को ही काव्य की आत्मा मानते हैं। अलंकारों की संख्या भरत के बताये चार अलंकारों से बराबर बढ़ती रही, और कालांतर में सैकड़ों पर जा पहुँची। हिन्दी के रीतिकाल में अलंकार-योजना का बहुत बड़ा हाथ रहा और बहुत-सी कविताएँ तो केवल अलंकार की छटा दिखाने भर को लिखी गईं। श्लेष, अनुप्रास आदि तो इतने प्रिय हुए कि कुछ लोग इनमें ही काव्य की इति-श्री समझने लगे। मत्स्य में भी यह प्रवृत्ति काफी दिखाई पड़ती है, किन्तु इसके साथ ही कुछ विद्वानों द्वारा अलंकार-निरूपण का प्रशंसनीय कार्य भी किया गया।

३. **रीति-सम्प्रदाय**— इस सम्प्रदाय को स्थापित करने वाले आचार्य वामन थे। इन्होंने 'रीति' को काव्य की आत्मा माना और कहा 'रीतिरात्मा काव्यस्य'। रीति क्या है? इसका स्पष्टीकरण करते हुए इन्हीं आचार्य महोदय ने अन्यत्र कहा है 'विशिष्टा पद-रचना रीतिः'। एक प्रकार से रीति वालों ने काव्य के बाह्य पक्ष पर अधिक बल दिया। और हृदय पक्ष की अवहेलना की गई, आत्माभिव्यक्ति के लिए बहुत कम स्थान रह गया। रचना-चमत्कार ही काव्य का सर्वस्व बना दिया गया। काव्य में यह रचना-चमत्कार गुणों पर आश्रित रहता है और दोषों से उसका स्तर गिरता है,

---

[1] भरतमुनि ने चार अलंकारों का उल्लेख किया है—उपमा, रूपक, यमक और दीपक।

अतएव रचना में गुणों का प्रयोग और दोषों का परिहार होना चाहिए। गुण और दोषों का विवेचन हिन्दी काव्य-शास्त्रियों ने भी किया। कुछ ग्रंथ तो केवल इसी प्रसंग को लेकर लिखे गए। हमारी खोज में इस प्रकार के हस्तलिखित ग्रन्थ भी प्राप्त हुए।[1] इस प्रकार के ग्रन्थों में अन्य प्रकरणों के साथ गुण और दोषों पर विशेष रूप से लिखा गया है।

४. **वक्रोक्ति-सम्प्रदाय**–इस प्रसंग में कुन्तक का नाम उल्लेखनीय है। उनके ग्रन्थ 'वक्रोक्ति जीवित' में वक्रोक्ति को काव्य का प्राण माना गया है। उन्होंने वक्रोक्ति को 'कथन की विचित्रता'[2] कहा है। यह वक्रता वर्ण, पद, वाक्य, प्रबंध आदि में हो सकती है, अतएव केवल वक्रोक्ति अलंकार ही 'वक्रोक्ति' का प्रतिपादक नहीं। क्रोचे[3] का अभिव्यंजनावाद भी इससे मिलता-जुलता है। वास्तव में वक्रोक्ति अभिव्यंजना की एक प्रणाली है। इसे काव्य की आत्मा मानने में संकोच होता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार तो इसमें केवल वाक्-वैचित्र्य ही है। इससे मन को एक हलकी-सी प्रसन्नता मिलती है, हृदय की गम्भीर वृत्तियों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। वक्रोक्ति के बहुत-से उदाहरण मत्स्य-प्रदेश में उपलब्ध 'भ्रमर गीत' और 'दानलीला' आदि में पाये जाते हैं।

५. **ध्वनि-सम्प्रदाय**—इस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्द्धन द्वारा हुई। उनका कहना था—'काव्यस्यात्मा ध्वनिः'[4]। काव्य की आत्मा ध्वनि है तथा काव्य का वास्तविक सौंदर्य व्यंग्यार्थ का होना है। इस सम्प्रदाय के आचार्यों ने, जिनमें काव्यप्रकाश के लेखक मम्मट का नाम भी शामिल किया जा सकता है, काव्य का वर्गीकरण ध्वनि के आधार पर ही किया। मम्मट ने बताया कि काव्य तीन प्रकार का होता है—

१. ध्वनि-काव्य, २. गुणीभूत व्यंग्य, तथा ३. चित्र।

इन आचार्यों ने ध्वनि में रस का भी समावेश किया और 'रस-ध्वनि' को सर्वश्रेष्ठ माना। कुछ विद्वान इसी आधार पर ध्वनि-सिद्धांत को रस के अंतर्गत

---

[1] रसानन्द–'वृजेन्द्र विलास'।

[2] 'वैदग्ध्यभंगी भणिति'।

[3] 'एसथैटिक्स–क्रोचे'।

[4] ध्वन्यालोक १–१।

मानते हैं। अभिनवगुप्त ने इस सिद्धांत को बहुत लोकप्रिय बना दिया, साथ ही रस तथा ध्वनि के संबंध का महत्त्व भी काव्य-शास्त्र में स्थापित कर दिया।

यदि इन सभी सम्प्रदायों पर एक विस्तृत दृष्टिपात किया जाय तो ये पांचों सम्प्रदाय दो श्रेणियों में आ जायेंगे—

१. रस और ध्वनि—जो कविता की आत्मा पर अधिक बल देते हैं। इनमें काव्य का अंतरंग प्रमुख है।

२. शेष तीनों—इनमें काव्य के बहिरंग को प्रधानता दो गई है।

रीतिकाल में कविता के बाह्य अंग पर अधिक ध्यान दिया गया। हिन्दी में 'रीति' शब्द मान्य हुआ, जैसे संस्कृत में अलंकार। हिन्दी में 'रीति' का प्रयोग उन ग्रन्थों के साथ हुआ जो 'लक्षण ग्रन्थ' होते थे। जिन ग्रन्थों में रस, अलंकार, गुण, दोष, नायक-नायिका भेद आदि का वर्णन होता था वे रीति-ग्रन्थ कहे जाने लगे। संस्कृत काव्य-शास्त्रियों ने रीति का जो अर्थ ग्रहण किया जिसका अभिप्राय 'विशिष्ट पद-रचना' होता था, वह हिन्दी में ग्रहण नहीं हुआ। हम हिन्दी में इस शब्द को इसके विस्तृत अर्थ में स्वीकार करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि रीति शब्द को ग्रहण करने से हमारा ध्यान काव्य के बहिरंग की ओर अधिक जाता है, उसकी आत्मा अथवा अंतरंग की ओर इतना नहीं, और रीति काव्य के अंतर्गत जहां रस, ध्वनि आदि का वर्णन हुआ है वहां व 'रचना' की दृष्टि से स्वोकार किये गये हैं। जिस ग्रन्थ में रचना संबंधी नियमों का विवेचन हो उन्हें रीतिकाव्य की संज्ञा दी गई। संस्कृत में रीतिकार 'आचार्यत्व' की पदवी से विभूषित किये जा सकते हैं, कवित्व का उनमें प्रायः अभाव मिलता है। वास्तविक सिद्धान्तकारों को देखिए, उनमें काव्य नहीं मिलेगा, काव्य-निरूपण ही मिलेगा। हिन्दो में इन दोनों का सम्मिश्रण हो गया। अतः हिन्दी में रीतिकाल के अंतर्गत दो प्रकार के कवि मिलते हैं— १. आचार्यत्वप्रधान २. शृंगार-प्रधान। इस अध्याय में उन्हीं कवियों को लिया गया है जिनमें आचार्यत्व का प्राधान्य है।

मत्स्य के रीतिकारों ने हिन्दी में प्रचलित शैली का ही अनुगमन किया। काव्य-शास्त्र पर सर्वप्रथम हिन्दी लेखक कृपाराम[1] माने जाते हैं।[2] इनके पश्चात् गोपा, करनेस, सुन्दर आदि बहुत-से लोगों ने इस विषय पर लिखा,

---

[1] हित तरंगिणी–संवत् १५९८ वि०।

[2] डॉक्टर भागीरथ मिश्र–हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास।

परन्तु रीति-ग्रन्थों की वास्तविक परंपरा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली जिसने काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, कविकुल कल्पतरु आदि ग्रन्थ लिखे। इनके उपरान्त लक्षण ग्रन्थों की भरमार होने लगी। कवियों में यह एक नियम-सा बन गया कि पहले विभिन्न रस, अलंकार आदि का लक्षण लिखना और फिर उनके उदाहरण में एक छंद लिख देना। कभी-कभी तो संदेह होने लगता है कि किसी कवि विशेष को कवि कहें या आचार्य। हिन्दी के काव्य-क्षेत्र में यह भेद इस प्रकार से लुप्त-सा हो गया। पंडित शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है कि इन कवियों में सूक्ष्म विवेचन की कमी थी, सम्यक् मीमांसा नहीं हो पाती थी, अतएव उन्हें आचार्यत्व की गौरवयुक्त पदवी नहीं दी जा सकती।[1] तोष, जसवंतसिंह आदि कुछ उत्तम आचार्य अवश्य मिलते हैं, परन्तु एक बहुत बड़ी संख्या उन कवियों की है जिनकी रचनाओं को भरती का काव्य कहा जा सकता है। मत्स्य प्रदेश के कवियों का अनुसंधान करने पर हमें कुछ कवि ऐसे मिले जिनके ग्रन्थों से विदित होता है कि वे कवि आचार्य कहे जाने के सर्वथा उपयुक्त हैं। कुछ ने तो सिद्धान्त प्रतिपादन में बहुत चातुर्य दिखाया है और व्याख्या को अधिक स्पष्ट करने के हेतु गद्य का भी प्रयोग किया है। हिन्दी में मम्मट कृत, 'काव्यप्रकाश' की ओर कवियों का ध्यान अधिक गया। इसके कई कारण हैं—

१. कवि समाज में काव्य-प्रकाश का अधिक प्रचार था।

२. इस ग्रन्थ में काव्य के सभी अंगों की व्याख्या है।

३. इसमें काव्योपयोगी सभी प्रकरण—रस, ध्वनि, अलंकार, रीति आदि विद्यमान हैं।

४. समय-समय पर विद्वानों द्वारा इस ग्रंथ पर अनेकों टीकाएँ की गईं।

५. काव्य-प्रकाश में ध्वनि और रस का सुन्दर समन्वय किया गया।

दूसरा अधिक प्रचलित ग्रन्थ विश्वनाथ का साहित्यदर्पण था। इस ग्रन्थ का भी बहुत प्रचार था। काव्य के इन ग्रन्थों का बहुत उपयोग हुआ। हिन्दी के कवियों ने अनेक छायानुवाद प्रस्तुत किये। इस प्रसंग में मत्स्य प्रदेश के राम कवि, सोमनाथ, रसानन्द, कलानिधि, मोतीराम और जुगल कवि के नाम सम्मान के साथ लिये जा सकते हैं। सोमनाथ का 'रसपीयूषनिधि', रसानन्द का 'व्रजेंद्रविलास' और कलानिधि का 'अलंकार कलानिधि' तो सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है। रीतिकाल के अन्य कवियों से मिलान करने पर इन कवियों में आचार्यत्व की दृष्टि से कोई

---

[1] शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास : रीतिकाव्य का सामान्य परिचय।

कमी नहीं पाई जाती। सोमनाथ के 'रसपीयूषनिधि' को देख कर तो आश्चर्य होता है कि इस ग्रन्थ का अधिक प्रचार क्योंकर नहीं हुआ जब कि यह ग्रन्थ काव्य-सम्बन्धी सम्पूर्ण विषयों से समलंकृत है। यदि सोमनाथ का समुचित अध्ययन किया जाय तो उसकी प्रतिभा किसी भी साहित्य-पारखी को आश्चर्य से में डाल सकती है। मत्स्य प्रदेश के रीतिकालीन कवियों के ग्रन्थों में कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। जैसे—

१. कवि और आचार्य—हिन्दी में कवि और आचार्य एक हो गए हैं। मत्स्य में भी बहुत कुछ सीमा तक यही प्रवृत्ति दिखाई देती है किन्तु रीति-ग्रन्थों के अतिरिक्त भी उनके कुछ अन्य ग्रंथ हैं जिनसे उनकी कवित्व शक्ति का अच्छा आभास मिलता है। कुछ कवियों में तो हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि–

(अ) रीति का प्रतिपादन करते समय वे आचार्य हैं, तथा

(आ) अपनी अन्य रचनाओं में वे कवि हैं।

२. हिन्दी में संस्कृत के विभिन्न वादों अथवा सम्प्रदायों का प्रचलन नहीं हुआ—केवल अलंकार, रीति आदि की ही प्रधानता रही। इसका कारण यह हो सकता है कि हिन्दी में काव्य के विभिन्न अंगों का निरूपण करने की प्रणाली बहुत कुण्ठित रही। हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि हिन्दी वालों ने कुछ अलंकारों कीं संख्या तो अवश्य वढ़ाई और शृंगार के अंतर्गत नायक-नायिका भेद का निरूपण भी विस्तार के साथ किया किन्तु काव्य के अन्य अंगों पर कुछ भी मौलिक कार्य नहीं हुआ। इस सम्वन्ध में विषय प्रति-पादन की उत्कृष्टता मत्स्य की देन कही जा सकती है।

३. रीतिकालीन कवियों को कवित्त, सवैये आदि छंद अधिक प्रिय थे। मत्स्य प्रदेश में भी यही मनोवृत्ति रही। कहीं-कहीं दोहे और छप्पय की ओर भी रुचि देखी गई है। वैसे तो इस काल के कवियों ने पदों में भी कविता की किन्तु उनमें काव्य-निरूपण नहीं हुआ, कविता मात्र ही हुई।

४. मत्स्य प्रदेश की खोज में कुछ ऐसी पुस्तकें भी मिलीं जिनमें राग-रागनियों का निरूपण हुआ है। सामान्यत: हिन्दी में इस कोटि के निरू-पण ग्रंथ नहीं मिलते हैं किन्तु व्रज में संगीत का अधिक प्रचार था। वहाँ कवियों का ध्यान राग-रागिनियों की ओर भी गया।

५. रीतिकाल के कवियों ने शृंगार की ओर अधिक ध्यान दिया और इसी कारण शृंगार सम्बन्धी विषयों का अधिक विवेचन हुआ। नायक

नायिका के भेदों की संख्या करोड़ों तक पहुँचा दी गई।[1] नख-सिख अथवा सिख-नख में नायक-नायिकाओं का वर्णन भी कवियों के किसी शृंगारिक झुकाव के कारण था। हम इन प्रसंगों को भी रीति-काव्य के अंतर्गत ले रहे हैं क्योंकि इनका आधार किन्हीं लक्षणों पर होता है और उनके वर्णन की प्रणाली एक तरह से निश्चित सी बन गई थी। नायक-नायिका भेदों का निरूपण संस्कृत ग्रंथों में भी हुआ। जिस पद्धति का आरम्भ धनंजय[2], विश्वनाथ[3] द्वारा हुआ, उसकी बहुत-कुछ रूप-रेखा हमें रुद्रभट्ट[4] और भोज[5] के ग्रन्थों में मिलती है। हिन्दी में भी कृपाराम, मतिराम, देव, पद्माकर आदि ने इस ओर ध्यान दिया। इस प्रकार के कई ग्रन्थ हमें अपने अनुसंधान में प्राप्त हुए और वे उसी कोटि के हैं जैसे हिन्दी के अन्य ग्रंथ। इन ग्रन्थों में अन्वेषण की क्षमता और वर्णन की विशदता बहुत सुंदर रूप में उपलब्ध होती है।

६. मत्स्य प्रदेश के रीति-ग्रंथों में हमें राधाकृष्ण का इतना अवर शृंगारी रूप नहीं मिलता जितना हिन्दी के अन्य ग्रंथों में। यह उस प्रदेश का काव्य है जहां राधा और कृष्ण की ओर पूज्य भाव अधिक है, अतएव इस प्रकार का प्रसंग समाज को और विशेषत: आश्रयदाताओं को रुचिकर नहीं होता। मत्स्य के कवियों ने इस मनोवृत्ति का पूरा ध्यान रखा।

रीतिकालीन कवि प्राय: राज्याश्रित थे। चिंतामणि नागपुर में मकरंदशाह के यहाँ रहे, बिहारी मिर्जा राजा जयसिंह के यहाँ थे, और मडन राजा मंगदसिंह के दरबार में रहते थे। इसी प्रकार मतिराम बूंदी के महाराजा का आश्रय पाते थे और भूषण शिवाजी तथा छत्रसाल के प्रशंसक थे। नेवाज कवि पन्ना नरेश के आश्रित थे और देव के तो अनेक आश्रयदाता थे।[6] भिखारीदास प्रतापगढ़ के सोमवंशी राजाओं के पास रहते थे। इस प्रकार अनेक कवियों ने अपने-अपने आश्रयदाता ढूंढ़ रखे थे। मत्स्य प्रदेश के अनेक कवि भी राज्याश्रित थे, यथा—

१. सोमनाथ — राजकुमार प्रतापसिंह (वैर निवासी),

---

[1] जसवंतसिंह के 'भाषा-भूषण' पर महाराज विनयसिंह की टीका, नायका भेद—१३२७१२४०।

[2] दशरूपक।

[3] साहित्यदर्पण।

[4] शृंगारतिलक।

[5] शृंगार-प्रकाश।

[6] कहा जाता है ये महाशय आश्रयदाता की खोज में भरतपुर भी आए थे।

२. कलानिधि — राजकुमार प्रतापसिंह (वैर निवासी),
३. शिवराम — महाराज सूरजमल (डीग निवासी),
४. जुगल कवि — महाराज बल्देवसिंह,
५. कृष्ण कवि — रा० गोविंदसिंह,
६. हरिनाथ — महाराज विनयसिंह,
७. राम कवि — महाराज बलवंतसिंह,
८. मोतीराम — ,, ,,
९. बलभद्र — महाराज महीसिंह,
१०. भोगीलाल — महाराज बख्तावरसिंह, और
११. रसानन्द — महाराज बलवंतसिंह।

इन राज्याश्रित कवियों का कार्य अपने राज-कवि होने को सार्थकता प्रदान करना था। इन लोगों ने इस बात का निरंतर प्रयास किया कि अपने समय और अवसर का पूरा-पूरा उपयोग करें। इनके द्वारा लिखे गए कुछ ग्रन्थ तो वास्तव में उच्च कोटि के हैं। ग्रंथों को देखने से ऐसा पता लगता है कि ये ग्रंथ—

१. या तो राजाओं के मनोविनोदार्थ लिखे गए अथवा राजपुत्रों के शिक्षण हेतु क्योंकि उस समय यह प्रणाली थी कि राजपुत्रों की शिक्षा के हेतु नवीन ग्रंथों का निर्माण होता था। 'अकलनामा' नाम के ग्रंथ कुछ इसी विचार से लिखे जाते थे।

२. एक कारण काव्य-निरूपण भी हो सकता है। कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें राजाओं को प्रसन्न करने की तनिक भी चिंता न थी। प्रत्युत जो चाहते थे कि उनके द्वारा काव्यांगों का विधिवत् निरूपण हो। इस प्रसंग में हम गोविंद कवि[1] का नाम ले सकते हैं। गोविंद कवि किसी राजा के आश्रित नहीं थे।

---

[1] इस कवि का नाम 'रसिक गोविन्द' और इनकी पुस्तक का नाम 'रसिक गोविन्दानंदघन' लिखा है। यह बात भ्रमात्मक है। मेरी खोज में इस कवि द्वारा लिखित 'गोविन्दानन्द-घन' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं जिनमें पुस्तक का नाम स्पष्ट रूप से 'गुविंदा-नन्दघन' लिखा हुआ है, 'रसिक गुविंदानन्दघन' नहीं। पंडित रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डाक्टर नगेन्द्र आदि ने भी 'रसिक' ही लिखा है। मेरे कथन के प्रमाण में दो-तीन पंक्तियाँ देखिए—

रच्यो गुविंदानन्द घन वृन्दावन रसवंत।
×
यहै गुविंदानन्द घन नाम धरयो इहि हेत॥
×
रच्यो गुविन्दानन्दघन रसिक गुविंद विचारि।

(टिप्पणी का शेष अंश आगे के पृष्ठों में है)

(पृष्ठ ३८ की टिप्पणी का शेष अंश)

इस 'रसिक गुविंद' से भ्रम उत्पन्न होता है। कवि को रसिक कहा गया है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि हम उनके नाम में भी उनके इस गुण या धारणा को शामिल कर दें। उन्होंने अपना नाम स्पष्ट रूप से बताया है।

रसिक, भक्त, लेपक गुविंद कवि कोक काव्य बिलसैया।

×

सुकवि गुविंदादिकनि कृत यह आनन्द समूह।
याते नाम आनन्दघन धरचौ रहत प्रत्यूह॥

×

मित्र 'गुविंद' को चित चुरावै

×

वारी बैस वारी उजियारी श्री 'गुविंद' कहैं।

वास्तव में पुस्तक का नाम तो आनंदघन और कवि का नाम गोविन्द है। किन्तु दोनों को मिला कर पुस्तक का नाम 'गोविन्दानंदघन' हुआ। इन सबके उपरान्त हस्तलिखित पुस्तकों में पुस्तक का नाम स्पष्ट रूप से 'श्री गोविन्दानंदघन' लिखा गया है, फिर भी न जाने किस कारण से अनेक विद्वानों को इस प्रकार का भ्रम हुआ। निम्बार्क सम्प्रदाय के 'सर्वेश्वर'—सम्पादक श्री व्रजवल्लभ शरणजी से वृन्दावन में बात करने पर, तथा सलेमाबाद के श्री जी महाराज से तत्सम्बन्धी चर्चा करने पर पता लगा कि रसिक शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया कि इस नाम के उस समय श्री जी महाराज भी थे, अतः दोनों नामों में कुछ भेद करना आवश्यक था। वैसे इनका नाम 'गोविन्द नाटानी' था। मेरे अनुमान से तो इस भ्रान्ति का कारण एक दूसरे से हुबहू अवतरण लेने की परम्परा है। एक और भी बात देखिए। शुक्लजी ने—

'सालिग्राम सुत जाति नटानी बालमुकुंद को भैया' के आधार पर इनकी जाति, जैसा कवि ने संकेत किया, वही लिख दी है। 'नाटानी' जाति नहीं होती, प्रत्युत खण्डेलवाल वैश्यों में 'नाटानी' गोत्र होता है, नाटानी गोत्र के खण्डेलवाल जयपुर में बहुत प्रतिष्ठित थे और वहाँ का एक रास्ता अब तक 'नाटानियों का रास्ता' कहलाता है। नाटानियों की प्रसिद्ध हवेली भी उसी रास्ते में है। उस गली में अनेक नाटानियों के घर हैं। बालमुकुंद नाटानी महाराज जयपुर के दीवान थे और उसी आधार पर बहुत से नाटानी अब भी 'दीवानजी' कहलाते हैं। इनमें श्री सीतारामजी नाटानी से मेरी बहुत सी बातें हुईं। इन बातों के आधार पर ऐसा लगता है कि जिन बालमुकुंद का कवि ने अपने ग्रन्थ में वर्णन किया है और जो कवि के भाई लिखे गये हैं वे जयपुर के प्रसिद्ध दीवान बालमुकुंद ही हैं—

·········बालमुकन्द को भैया।

दोनों का समय मिलाने पर बात बहुत-कुछ मेल खाती है। एक बात और भी सोचने की है। अपना परिचय देते समय कवि या लेखक अपने पिता के नाम का उल्लेख करते हैं। भाई के नाम का उल्लेख विशेष परिस्थिति में ही किया जाता है। कवि द्वारा अपना परिचय बालमुकुंद के भाई के रूप में देना इस बात को प्रमाणित करता है कि ये बालमुकुंद अवश्य ही कोई प्रसिद्ध व्यक्ति थे।

कवि के खण्डेलवाल होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं। सब से पहला प्रमाण तो

गोविंद कवि वृन्दावन में गुरु-चरणों में बैठ कर राधाकृष्ण के पदों की वंदना करते हुए काव्य के विभिन्न अंगों का निरूपण करते थे। इनके ग्रंथों का मत्स्य प्रदेश में बहुत प्रचार था। हमारी खोज में राजभवन पुस्तकालयों में 'गोविंदानंदघन' की कई प्रतियाँ प्राप्त हुईं। ब्रिटेन के पुस्तकालयों में भी एक प्रति देखी थी। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के पुस्तकालय में एक प्रति है। इनके गुरुद्वारे वृंदावन में तो इनके ग्रंथों की कई-एक प्रतियाँ संग्रह रूप में विद्यमान हैं। इनके अन्य ग्रंथों के नाम हैं—

(१) युगल रसमाधुरी, (२) रामायण सूचनिका, (३) कलियुगरासौ, (४) लछिमनचंद्रिका, (५) समयप्रबंध, (६) अष्टदेश, (७) पिंगल ग्रंथ, (८) रसिक गोविंद आदि। 'गोविंदानंदघन' में काव्य के विविध अङ्गों की व्याख्या बड़े स्पष्ट रूप में की गई है।

उदाहरण के रूप में स्वरचित छंद ही नहीं, अन्य कवियों के छंद भी दिए गए हैं। मीमांसा को अधिक स्पष्ट करने के लिए गद्य का भी उपयोग किया है और कहीं-कहीं तो प्रश्नोत्तर के रूप में विवेचन बहुत ही साफ हो जाता है। विषय-प्रतिपादन में अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों का उल्लेख किया है। 'रस-निरू-

---

(पृ० ३९ की टिप्पणी का शेष अंश)

इनका नाटानी गोत्र है जो जयपुर में खण्डेलवालों के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलता। और निश्चय रूप से कवि का जन्म जयपुर में हुआ था।

जयपुर जनम जुगल पद सेवी, नित्य विहार गवैया।
श्री हरिव्यास प्रसाद पाय भौ वृन्दा विपिन बसैया॥

इस संबंध में पुस्तक का रचना काल भी कुछ संकेत देता है—

वसु सर वसु ससि अब्द १८५८
रवि दिन पंचमी बसंत।

आज भी बसंत पंचमी को खण्डेलवाल वैश्य बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हैं। बरेली, आगरा, भरतपुर, अलवर, जयपुर, खण्डेला, दौसा आदि स्थानों में, जहां खण्डेलवालों की संख्या अधिक है, यह दिन उत्सव के रूप में मनाया जाता है। जयपुर में तो इस दिन गंगामहारानी के मन्दिर में विशेष उत्सव होता है। वहां का सारा कार्य बसंत से ही प्रारम्भ होता है। यहां के खण्डेलवाल वैश्यों की प्रसिद्ध संस्था 'हितकारिणी' का वार्षिक अधिवेशन, नव पदाधिकारियों का निर्वाचन आदि कार्य इसी दिन होते हैं। अतएव नाटानी गोत्र में उत्पन्न खण्डेलवाल वैश्य गोविंद कवि ने इसी शुभ दिन में अपने भतीजे श्री नारायण के लिए यह सुन्दर पुस्तक लिख कर प्रदान की।

बेटा बाल मुकंद को श्री नारायण नाम।
रच्यो तासु हित ग्रंथ यह..........॥

पण' प्रकरण देखिए—

अथ रस-निरूपणं—अन्य ज्ञान रहित जो आनंद सो रस।

प्रश्न– अन्य ज्ञानरहित आनंद तो निद्रा हू है।

उत्तर– निद्रा जड़ है, यह चैतन्य है।

भरत आचारज सूत्रकार कौ मत—विभाव अनुभाव संचारी भाव के संजोग तें प्रगट होय सो रस। मिलाइए 'विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पतिः,

अथ काव्यप्रकास कौ मत—कारण कारज सहायक हैं जे लोक में इन ही कों नाट्य में काव्य में विभाव अनुभाव संचारी भाव संज्ञा है। इनके संयोग तें प्रगट होइ जो स्थायी भाव सो रस।

अथ साहित्य-दर्पन कौ मत—

सोरठा– सत्व विसुद्ध अभंग स्व प्रकास आनंद चित।
अन्य ज्ञान नहि संग ब्रह्मा स्वाद सहोदरसु॥

मिलाइए–सत्वोद्रेकादखण्डस्व प्रकाशानन्द चिन्मय।
वेद्यान्तर स्पर्शशून्यो ब्रह्मा स्वाद सहोदरः॥

साहित्यदर्पण–तृतीय परिच्छेद, २

अथ अभिनवगुप्त पादाचर्ज कौ तत्व लक्षण—

रसिकनि के चित्त में प्रमुदादि कारण रूप करि कैं॥ वासना रूप करिकै स्थिति॥ नाट्य के काव्य के विषैं विभाव अनुभाव संचारी भाव साधारण ता करिकैं प्रसिद्ध। अलोकिक॥ ऐसे निकरि कें प्रगट कीनौं हुवौ। मेरे शत्रु के उदासीन के मेरे नहीं सत्रु के नहो उदासीन के नहीं॥ या ही तैं साधारण। जहां स्वीकार परिहार नहीं सो साधारण। साधारण उपाय बलि करि कैं ततछिन उतपत्ति भयौ। आनन्द स्वरूप। विषयांतर रहित। स्वप्रकास अपमित जो भाव। स्व स्वरूप को सो नांही। न्यारौ नहों तौ हू जीव नैं विषय कीनौ हुवौ। विभावादिक की स्थिति जा कौ जीवित आनंद वृत्ति जाके प्राण। प्रयान कर सा न्याय करि कैं अनुभव कीनै हुवौ अगारी फुरत सौ। हृदय में धरत सौ। अंगिन कौ आलिंगति सौ। और ज्ञान कौ छिपावत सौ। परब्रह्म अस्वाद कौ तजावत सौ। अलौकिक चमत्कार करै जो रत्यादि स्थाई भाव सो रस॥

सौ नव विधि—

प्रश्न– सांति कछु कै सै।

उत्तर–सांति काव्य में कहियत नाट्य में नाहीं याते।

कवि बल्देव खंडेलवाल ने भी अपना ग्रंथ "विचित्र रामायण" बसंत पंचमी को ही समाप्त किया था—त्रय नभ नव ससि समय में माघ पंचमी हेत।

कवि ने ऊपर लिखी सभी पुस्तकों का मनन और अनुशीलन किया था, इसमें कुछ भी संदेह नहीं । भरत, मम्मट, विश्वनाथ, अभिनवगुप्त आदि चोटी के आचार्यों के विचार देते हुए रस का निरूपण किया गया है । ये पुस्तकें साहित्य-क्षेत्र में आज भी प्रामाणिक मानी जाती हैं । कहीं-कहीं कठिन प्रसंगों को प्रश्नोत्तर के रूप में भी समझाया गया है । काव्य शास्त्र का ज्ञान कराने के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है ।

ये महानुभाव सुनी हुई बातों से ही संतोष नहीं करते थे । स्थान-स्थान पर इनकी बुद्धि का पूर्ण उपयोग देखा जाता है, और कहीं-कहीं मत-प्रतिपादन में विचित्र उक्तियां भी दी हैं । शृंगार के रसराजत्व का प्रतिपादन गोविंदजी इन शब्दों में करते हैं—

शृंगार लक्षणं—

'शृंग' कहिये 'मुष्य' ता 'आर' कहिये 'प्राप्ति' मुष्यता प्राप्ति जाहि सब रसादिकनि में होइ सो शृंगार ।

सो दुविध..............संयोग, वियोग............इसी प्रकार से

अथ संजोग लक्षरण—

बिलासी जाहि अवलंब्य करिकें परसपर सेवन करैं सो संयोग । नाइका नायक परसपर आलंबन । चन्द्र चंदन कुहू सब्दादि उद्दीपन । भू विक्षेप कटाक्षादि अनुभाव । आलस चिंता लज्जा निद्रा उत्कंठा हर्षादिक संचारी भाव । रति स्थायी भाव । स्याम वर्ण । श्रीकृष्ण देवता ।

सवैया—

सखीन के आछे अलापन तें उह कुंज मैं क्यों हू गई सुषदैन ।
विलोक पिया रसिया कौ नई दुलही सुभई भय चक्रत नैंन ।।
लख्यौ पुनि त्यौं अपने तनकौं अति गाढै गुविंद रह्यौ रस तैन ।
बिलज्जित ह्वै कै तबै रस कूजित कूजन को लगी कोमल बैन ।।

इहां नायका विषयालंबन—कुंज उद्दीपन —रति कूजित अनुभाव – लज्जा त्रास संचारी भाव । रति–स्थायी भाव ।

इसके अतिरिक्त कवि ने लाल, कासीराम, सिरोमन, सोमनाथ, किशोर, सेनापति, घनस्याम, कवित्त 'काहू को' आदि के उदाहरण देकर अपने भाव का स्पष्टीकरण किया है । यह ग्रंथ परम विलक्षण है, क्योंकि इतना सुंदर और विद्वतापूर्ण समाधान तथा तुलनात्मक विश्लेषण जिसमें संस्कृत कवियों का आचार्यत्व तथा हिन्दी कवियों का कवित्व मिश्रित है, अन्यत्र मिलना संभव नहीं ।

इन कवि महोदय की जो हस्तलिखित पुस्तकें मुझे मिलीं उनमें गोविंदानंदघन की प्रतियों में ३०० से ३१० तक पत्र थे। इनके द्वारा दिए गए उदाहरणों से पता लगता है कि उस समय तक मत्स्य के उत्कृष्ट कवि सोमनाथ की काफी प्रसिद्धि हो चुकी थी। सोमनाथ के अनेक उदाहरण दिया जाना इसका ज्वलंत प्रमाण है। संभव है, इन महानुभाव का कवि सोमनाथ के पास आना जाना रहा हो और तभी इनके ग्रंथों का मत्स्य में इतना प्रचार बढ़ा हो।

इस ग्रंथ-रत्न में चार अनुबंध हैं—

१.	रस भाव विभाव अनुभाव सात्विक	प्रथम अनुबंध	२८५ छंद
२.	नायका नायक निरूपणं	द्वितीय अनुबंध	२४८ छंद
३.	दूषण उल्लास निरूपणं	तृतीय बंध	३५ छंद
४.	गुण अलंकार निरूपणं	चतुर्थ बंध	८७८ छंद

उपर्युक्त वर्णन से इनके आचार्यत्व में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता। इस पुस्तक का विस्तार, इनका काव्य शास्त्र परिचय, काव्य के विभिन्न अंगों की विवेचनात्मक प्रणाली, मौलिकता प्रदर्शन, इनके आचार्यत्व की घोषणा करते हैं। साथ ही ये एक सुंदर कवि भी हैं।

दो उदाहरण—

संग अली नवली अलि की कर कंज की मंत्र कली लै फिरावै।
अंग सुबासिन कोमल हासनि नैंन बिलासनि मैंन नचावै॥
भूषन भेद की कौन कहै धुनि नूपुर ही की कही नहिं आवै।
नृत्यति सी गति बानी विचित्रित मित्र गुविंद कौ चित्त चुरावै॥

घुंघराली अलक संवारी अनियारी भौहैं,
कजरारी आखें कजरारी मतवारी मैं।
धारी सारी जरतारी सरस किनारी वारी,
मालती गुही है बैनी कारी सटकारी मैं॥

बारी बैस रूप उजियारी श्री गुविंद कहैं,
बारी सुरनारी नरनारी नागनारी मैं।
मिलन बिहारी सौं दुलारी सुकुमारी प्यारी,
बैठी चित्रसारी की तिवारी सुषकारी मैं॥

मत्स्य प्रदेश से संबंधित अनेक कवियों ने सुंदर कृतियों की रचना की। इनकी पुस्तकों को देखने से पता लगता है कि इनमें से बहुत से आचार्य पदवी के अधिकारी हैं।

सर्व प्रथम शिवराम को ही लीजिए।[1] इनकी जो एक ही पुस्तक उपलब्ध हुई है उसी के आधार पर इनको कविश्रेष्ठ कहने में संकोच नहीं हो सकता। उस युग में इनको उस पुस्तक पर ३६,००० रु० पुरस्कार रूप में आदरपूर्वक दिया गया था। पुस्तक के अंत में लिखा है—

जबहि ग्रंथ पूरन भयौ, तबहि करी वकसीस।
धरें रुपैंश्रा मांन सौं, दए सहस छहतीस॥

इस पुरस्कृत पुस्तक का नाम कवि ने 'नवधा भक्ति' लिखा है। रचयिता का नाम 'शिव सुवंस शिवराम कविराज' लिखा गया है। पुस्तक का पूरा नाम 'नवधा भक्ति रागरस सार' है। पुस्तक समाप्त होने की तिथि कवि ने निम्न प्रकार लिखी है।

दंपति [२]रस [६]मुनि [७]ससिहि [१]धर, फागुन शुदि रविवार।
तिथि पूरन पूरन भयौ, भक्ति राग रस सार॥

सूरजमल का राज्यकाल सं० १८१२ से १८२० वि० है, अतएव इस ग्रथ की रचना उनके युवराज काल में ही हुई। इस पुस्तक में ५ खंड हैं :—

१. प्रथम खंड– कवि तथा राजा के कुल का वर्णन आदि।
२. द्वितीय खंड– सूरजमल कौ नगर बंस सभा वर्णन।
३ तृतीय खंड– पुस्तक के दो पत्र नहीं हैं, विषय संदिग्ध है।
४. चतुर्थ खंड– प्रेम लक्षना।
५. पंचम खड– गुन अस्त्र-शस्त्र वर्णन।[2]

इस हस्तलिखित पुस्तक में 'श' और 'ण' शुद्ध रूप में लिखे गए हैं—'स' और 'न' के रूप में नहीं। स्थान-स्थान पर संस्कृतगर्भित भाषा मिलती है जो कवि की ज्ञानगरिमा और भाषाशुद्धि का उदाहरण हैं। प्रथम छप्पय ही देखिये—

गवरिनंद जुतचंद सकल आनंद कंदवर।
एकदंत सोभंत भाल चंदन विशालधर॥

विघ्न हरन दुखकटन धरन गज बदन प्रचंडन।
जगवंदन बुधिसदन हर्ष शिवकुल जश मंडन॥

शिवराम फबित फरसा सुकवि, कर त्रिशूल गणपति धरहि।
श्री सुजान ग्रह दिन रयन, पलु पलु पलु रक्षा करहि॥

---

[1] कविराज शिवराम महाराज सूरजमल के पास उनके युवराज काल से ही रहते थे। उनके ग्रंथ 'नवधा भक्ति रागरस सार' में 'श्री मन्महाराज कुमार श्री सूरजमल' लिखा है।

[2] इस में अनेक राग-रागिनियों के रूप का वर्णन है—जैसे 'राग विलावल को रूप'।

संस्कृतगर्भित भाषा की छटा देखें—

त्वमेव नित्य मंगला सुसिद्धि निद्धि दायिनी।
त्वमेव दीप ज्योति षंड मंडलेश रायिनी॥
त्वमेव चंड मुंड से अषण्ड ब्रह्म षंडिनी।
त्वमेव वाक वादिनी सुबुद्धि नित्य दायिनी॥

सूरजमल का यश सुन कर ये कविवर उनके पास आये—

श्री जदुवंस सुजान बली रतनाकर से गुन चौदह पाये।
कीरति हू सुनि कैं शिवराम सु सूरजमल्ल को देखने आये॥

अपने संबंध में लिखते हैं—

सकुहाबाद परिगनै खरी दषिन दिसा वषानौं।
पंच कोस तहि तैं पारोली जमुना तट ग्रह मानौं॥
तहां वसत शिवराम कवीश्वर धर्म कर्म गुन जेता।
आदि अनादि होत हैं आये सतजुग द्वापर त्रेता॥
नगर कुम्हेंर जानि मथुरा ढिग, सूरजमल महाराजा।
नवधा भक्ति राग रस बरन्यो, सुनो तुम्हारे काजा॥
धर्म कर्म सों सदा रहो तुम, प्रेम प्रीति हरि साजा।
कवि शिवराम कहत गुन बरनै, उदधि पार जस बाजा॥

पुस्तक में कवि ने अपने वंश का वर्णन भी किया है। संभवत: अलाउद्दीन के दरबार में इनके वंशजों का मान था। और उनमें से कोई बादशाह का वजीर भी था।

साहिनसाहि अलावदीं, दिल्लीपति रनवीर।
बोलि कहीजै सर्म सों, तुम वजीर गंभीर॥
भुज प्रचंड नव खंड तहि, बढ़चौ वजीर प्रताप।
करी कृपा तव साहिजू, दई हाथ की छाप॥

यह पुस्तक कुम्हेर में लिखी गई, इसका भी प्रमाण है। उन दिनों सूरजमलजी भी कुम्हेर में ही रहते थे।[१]

सूरजमल्ल सुजान को, पुर कुम्हेर शुभथान।
कछु मिश्रित वर्णन करचौ, राजभोग अवजान॥—क–यौ[२]

इस ग्रंथ का आरंभ समय संवत् १७३५ वि० है।

संवत् सत्रह सै बरस, अरु पैंतीस बषान।
माघ मास सित अष्टमी, बार बरनि गुर पानि॥

---

[१] मथुरा से २२ मील की दूरी पर।
[२] 'र' का मिलाना देखें "चौ"।

तबै ग्रंथ को जन्म भव, करै कवित्त सु तीनि।
दये ग्रंथ कै आदि ही, जानहु परम प्रवीन।।

इन कविराज का वर्णन प्रमुख रूप से रागों का है। छहों रागों के नाम बताते हुए इनका कहना है—

प्रथम राग [१] भैरव कहौं, [२] मालकोश [३] हिंडोल।
[४] दीपक पुनि [५] श्री राग शुभ, [६] मेघराग शुभ बोल।।

इन एक-एक राग के ८ पुत्र और ५ स्त्रियां हैं और उनका गायन समय के अनुसार होता है —

एक एक कै आठ सुत, पांच भारजा मान।
अपने अपने रितु समय, गावत चतुर सुजान।।

भैरव राग की पांच स्त्रियों के नाम सुनिए--

[१] बंगाली अरु [२] भैरवी, [३] वेला [४] वली प्रमान।
[५] पुन्य स्नेहा भारजा, भैरव राग सुजान।।

अब आठों पुत्र भी देखिये—

[१] बंगालो शुभ राग सु [२] पंचम जानियै।
[३] मधुर राग [४] देशाष [५] सुहर्ष बखानियै।।
[६] ललित राग शुभ जान [७] बिलावल मानि जिय।
पै हां [८] माधव राग सकल सुत जोनिलय।।

राग बिलावल का स्वरूप भी देख लीजिये—

तन में किसोरी भोरी गोरी गोरी राजै वर,
चन्द्रकान्त चन्द्रिका उजारौ जाकौ घर में।
पीय सों संकेत पाय दयावंत पूरी भरी,
भूषन अनन्त मनि भूषन से घर में।।
नीलज कमल कान्ति भांति भांति देह दिपै,
बार बार मुसकात शशि रात भर में।
ऐंड सों ऐडात कछु अंचल उड़ात उर,
नागरी 'बिलावल' सरोज लिये कर में।।

गौने चलि आई नई दुलही सुहाग भरी,
भावभरी वेलि सुबरन की सुभोरी सी।
कहै शिवराम रति मंदिर लों लाई सखी,
बातन लगाय गुन गनन की गौरी सी।।

देख भजति प्यारे गहि लीनी दौरि चंचला सी,
ता समै तिहारी भई प्यारी गति औरी सी।

कंपत त्रसत कुम्हलानी अकुलानी परी,
केहरि की कौरी में कुरंग की करौरी सी ।।

इसी प्रकार सभी रागों के स्वरूप का चित्रण किया गया है। पुस्तक के नाम से ही पुस्तक का विषय ज्ञात होता है।

१ नवधा भक्ति

२ राग

३ रस—इन सब का सार अतः 'नवधा भक्ति राग रस सार'

नव प्रकार की भक्ति के बारे में भी कवि की उक्ति देखें—

१ स्रवन सुनत पुलकित हृदय नयन द्रवत जलधार ।
२ कीरंतन वानी कि हित गद गद मुदा बिदार ।।
३ सुमरन तेरे मंत्र तन प्रफुलित सब अँग अंग ।
४ परस बन अभिराम छवि चढै सुपानि रंग ।।
५ अरचन तैं आनंद रति वंदन विहृचल दीन । ६
७ दरसंतन उत्सव सुरस प्रगट सखा सुख लीन ।। ८
९ आत्म निवेदन रिद्धि सिद्धि मन वंछित सोई साथ ।
नवधा विधि शिवराम कवि चढ़े प्रेम हरिहाथ ।।[1]
नवधा भक्ति सुभाव यह सकल सिद्धि को सारु ।
वरन सिंधु संसार तैं लहै सुपावै पारु ।।
नवधा भक्ति हिये धरहु सूरज मल निहसंक ।
प्रीति राषि शिवराम सौं जैसे नव को अंक ।।[2]

कवि ने कई स्थानों पर संस्कृत के श्लोकों का प्रयोग भी किया है। उदाहरण के लिए १४ प्रकार के कायस्थ देखिए—

१ नैगमा २ माथुरा ३ गौरा ४ माडीर ५ वल्लभीस्तथा ।
६ श्रीवास्तव्य ७ नागरश्चैव ८ सूर्योच ९ सक्सेनयः ।।
१० संभरी ११ संभरश्चैव १२ कुलश्रेष्ठ १३ चुनाहकः ।
१४ अहिष्टानक कायस्था एते चतुर्दश स्मृताः ।।

---

[1] यहां भक्ति के ९ प्रकार बताये गये हैं— १ श्रवण २ कीर्तन ३ स्मरण ४ स्पर्श ५ अर्चन ६ वंदन ७ दासत्व ८ उत्सव ९ आत्म-निवेदन ।

[2] कवि का गणित—ज्ञान देखने योग्य है। नौका अंक सर्वदा ९ ही रहता है, जैसे ६३, ६+३, ९ ५७६ ५+७+६ = १८, १+८ = ९। ९ का कितना ही गुणा करें अंगों का योग सर्वदा ९ ही रहेगा। कवि का कहना है कि सूरजमल कितने ही बढें किन्तु शिवराम से एक सी प्रीति रखें। पुरस्कार में भी उन्हें ३६,००० रुपया मिला था। इसमें भी ३+६ = ९ की प्रीति का पालन किया गया।

उस समय तक भरतपुर राज्य में कई नगरों का निर्माण हो चुका था—

गोवर्द्धन श्रीमानसी गंगा सोभित आई।
जिनि पै श्री व्रजराज जू कीनि कृपा बनाई।।

× × ×

पुनि पूर्व देस मथुरा वषानि।
पुरमर्थ[1] दक्ष दक्षिण सुजानि।।
सिनसिनी[2] वुद्ध बाड़व वषानि।
दक्षिण सु वैर[3] सोभित सुवेस।
पुनि दींघ[4] महा उत्तर सुदेस।।

इस पुस्तक में राग-रागनियों का जैसा सुन्दर विवेचन है वैसा वहुत कम देखने में आता है। इस ग्रन्थ को हम अच्छी तरह लक्षण ग्रन्थ की कोटि में ले सकते हैं, क्योंकि इसमें भक्ति, राग और रस तीनों की विशद व्याख्या की गई है। तीनों को देखते हुए राग की व्याख्या वहुत उत्तम दिखाई देती है। कवि की कविता के अंशों को देखने पर मालूम होता है कि वे संस्कृत के भी पंडित हैं और उन्हें गणित का भी ज्ञान था। शिवराम की वहुज्ञता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। वे भक्ति, राग, काव्य, गणित, शास्त्र, दर्शन आदि सभी विद्याओं में पारंगत थे। उनकी कविता का एक नमूना और देखिये जहां 'निधि' शब्द के द्वारा एक विचित्र चित्र उपस्थित किया गया है—

१ सुभनिधि संभुनिधि सभानिधि सोभानिधि
सील कौं सलिलनिधि सब सुखनिधि हौ।
देवनि कौ दाननिधि दीनन कौ दयानिधि-आनन्द
कौ निधि अरु नेह नवौनिधि हौ।।
गुननिधि ज्ञाननिधि मान सम्माननिधि
जदवंस श्री सुजान सील कुलनिधि हौ।
कलानिधि केलिनिधि करन कल्याननिधि
कवि शिवराम काज राज कृपानिधि हौ।। १

२ रूपनिधि रसनिधि रसनि रसिकनिधि
रीर के हरननिधि निधने के निधि हौ।
वेद निधि विद्या निधि परम प्रवीननिधि
विश्वनिधि बुद्धिनिधि त्रिद्धि सिद्धिनिधि हो।।

---

[1] भरतपुर, भर्थपुर।

[2] सिनसिनी—भरतपुर के जाट राजाओं का उद्गम-स्थान।

[3] भरतपुर से ३०–३५ मील—वयाना से मोटर द्वारा मार्ग।

[4] भरतपुर का प्रसिद्ध कस्बा डीग, जो निश्चयपूर्वक दीर्घ का अपभ्रंश है।

प्रेमनिधि प्राननिधि पूरन कृपालनिधि
प्रगट पियूषनिधि निधिन की निधि हो :
तेजनिधि जैतनिधि भाग श्री सुजाननिधि[1]
कवि शिवराम महाराज जसनिधि हो ।। २

इस पुस्तक के पढ़ने से मैंने निम्न निष्कर्ष निकाले[2]—

१. शिवराम की कविता उच्च कोटि की है। भाषा की स्वच्छता, अलंकारों का प्रयोग और शब्दों का चयन, सब पर पूर्ण अधिकार दिखाई देता है।

२. इनकी कविता से भरतपुर राज्य की बहुत सी बातें मालूम होती हैं। साथ ही इनके तथा इनके आश्रयदाता के वंश-संबंधी बहुत सी बातों का ज्ञान होता है।

३. कवि की बहुज्ञता में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता। वे हिन्दी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं के पूर्ण पंडित थे। भक्ति, राग और रस तीनों का सार एक ही स्थान पर उपस्थित करना इसका प्रबल प्रमाण है।

४. राग-रागिनियों का बहुत ही वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। उनके नामों की गिनती ही नहीं की गई वरन् उसका पूर्ण स्वरूप, कुटुम्ब-परिवार सहित उपस्थित किया गया है। काव्य और गायन दोनों तरह से यह एक उत्तम प्रयास है।

---

[1] सूरजमल का दूसरा नाम 'सुजानसिंह' भी था। इन्हें सूजा, सुजान, सूरज, सूरजमल, सूरजमल्ल आदि अनेक नामों से संबोधित किया जाता था।

[2] कवि शिवराम को लक्षणकार और आचार्य मानने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं दिखाई देती। साथ ही ये एक उत्तम कोटि के कवि भी थे। चांदनी का चित्रण देखें—

नभ सुरसरि की लहरि लहरति किधौं,
छीरनिधि छीटा छिहरति छवि छाई है।
रामरूप रंजित के रावटी सुधारि किधौं,
फटिक महल भूमि आरसी बनाई है।
पूरि कें कपूर पूरि चंदन की चूरि व्योम,
पारद तुषार की बुपारी बिपराई है।
कीनों तास आसन निसां विलास चांदनी कि,
चंद अरु चांदनी की चादरि बिछाई है।।

इस छंद में उनके मित्र 'रामरूप' का नाम आता है।

जब कवि शिवराम सूरजमल के पास रहते थे, लगभग उसी समय उनके भाई प्रतापसिंहजी[1] के पास दो अत्यंत उच्च कोटि के कवि और आचार्य रहते थे। इनके नाम हैं सोमनाथ और कलानिधि।

सोमनाथ का नाम हिन्दी काव्य-साहित्य में अत्यंत प्रसिद्ध है। जब रीतिकाल के आचार्यों का वर्णन आता है तब माथुर कवि सोमनाथ का वर्णन अवश्य मिलता है। हिन्दी के प्रारम्भिक इतिहासों में भी सोमनाथ का नाम दिया गया है। सोमनाथ का 'रस-पीयूषनिधि' नाम का एक सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ है। जिस प्रकार गोविन्द कवि का 'गोविन्दानंदघन', देव का 'काव्यरसायन', दास का 'काव्य-निर्णय', प्रताप साहि का 'काव्यविलास', सूरति मिश्र का 'काव्यसिद्धान्त' आदि ग्रन्थ हैं उसी प्रकार सोमनाथ के 'रसपीयूषनिधि' में काव्य के सम्पूर्ण अंगों का वर्णन किया गया है। इनके इस परम प्रसिद्ध ग्रन्थ में २२ तरंगें हैं और पुस्तक के अंत में लिखा है—

'इति श्री मन्महाराज कुवार श्री परतापसिंह हेत कवि सोमनाथ[2] विरचते रसपियूषनिधौ अर्थालंकार संसृष्ट संकर अलंकार वरननं नाम द्वाविंसतितम-स्तरंगा २२।' ये बाईस तरंगें इस प्रकार हैं—

१ राजकुल वरननं,

---

[1] बदनसिंहजी के कई पुत्र थे। इनमें दो बहुत ही प्रतापी थे—

१. सूरजमल—जो कुम्हेर में रहा करते थे।
२. प्रतापसिंह—जिनका निवास-स्थान वैर था।

ऐसा मालूम होता है कि इन स्थानों का पूरा अधिकार इन राजकुमारों को मिला हुआ था। वैर में प्रतापसिंहजी के वंशज अभी तक हैं और वैर वाले राजाजी कहलाते हैं। इनमें से कई से मेरा परिचय है किन्तु परिचय होने पर भी कोई साहित्य उपलब्ध नहीं हो सका। कहा जाता है कि इन लोगों के पास काफी मूल्यवान सामग्री है।

[2] इनके बहुत से ग्रन्थों का नाम हमने सुना था। खोज में निम्न ग्रन्थ मिले—

१. ध्रुवविनोद　　६. संग्रामदर्पण
२. महादेव को ब्याहुलो　　७. वृजेंद्रविनोद
३. सुजानविलास　　८. रासपंचाध्यायी
४. रसपीयूषनिधि　　९. शशिनाथविनोद
५. प्रेमपचीसी　　१०. रामायण के अनुवाद

इनके ग्रन्थों से यह भी पता लगता है कि ये कुछ दिनों नवाब आजम खां के आश्रय में भी रहे थे, और वहां रह कर इन्होंने 'नवाबोल्लास' नाम का एक ग्रन्थ और लिखा है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार इन्हें देव, दास, श्रीपति आदि की कोटि में रखते हैं।

२ कविकुल वरननं,
३ गुरु लघु गनागन मात्रा वरन प्रस्तार नष्ट उदष्ट मेरु मर्कटी पताका वरननं,
४ मात्रवलि वरननं,
५ वर्ण वृत्य,
६ सब्दार्थ,
७ ध्वनि भेद रस लछनं रंग स्वामी,
८ स्वकीया भेद,
९ परकीया सामान्या,
१० मानमोचन वरननं,
११ कृष्णाभिसारिका,
१२ उत्तमादि नाइका,
१३ नाइका दर्सन दृष्टानुराग चेष्टा,
१४ हाव वरननं,
१५ दसा वरननं,
१६ रस ध्वनि,
१७ असंलक्ष्यक्रम व्यंगि ध्वनि,
१८ ध्वनि,
१९ मध्यम काव्य गुनीभूत व्यंगि,
२० काव्य दोष वरननं,
२१ काव्य गुण अलंकार वरननं,
२२ अर्थालंकार संसृष्ट संकर अलंकार वरननं,

उस समय की प्रचलित पद्धति के अनुसार इन बाईस तरंगों में काव्य के सम्पूर्ण अंगों का विवेचन किया गया है। तरंग आठ से पन्द्रह तक नायिका भेद से संबंधित हैं। पिछली ९ तरंगें विशेष रूप से दृष्टव्य हैं क्योंकि इनमें काव्य-प्रकाश आदि ग्रन्थों की छाया दिखाई देती है। हमारी खोज में इस ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हुईं जिनसे पता लगता है कि यह ग्रन्थ काफी प्रचलित था।

ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार किया गया है—

"श्री गणेशाय नमः। अथ रसपियूषनिधि लिष्यते।

छप्पय—

सिंधुर बदन अनंद चंद सिंदूर भाल धर।
एक दंत दुतिवंत बुद्धि निधि अष्ट सिद्धिवर॥

मद जल श्रवत कपोल गुंजरति चंचरीक गन ।
चंचल श्रवन अनूप थोद[1] थरकत मोहति मनि ।।
सुर नर मुनि वरनत जोरि करि गुन अनंत इमि ध्यायचित्त ।
ससिनाथ[2] नंद आनंद करि जय जय श्री गणनाथ नित ।।

कवि ने भरतपुर के राजकुल का वर्णन इतिहास की दृष्टि से यथावत् किया है। इनके अनुसार भी बदनसिंहजी के दो पुत्र बहुत गौरवशाली थे। सूरजमल राज-कार्य में अधिक भाग लेते थे—

राजकाज करता बड़े सूरजमल्ल उदार ।

प्रतापसिंहजी सूरजमल के छोटे भाई थे और कवियों के लिए कल्पवृक्ष के समान थे। इनके दरबार में अनेक कवि रहते थे। सोमनाथ भी इन्हीं के दरबार में थे। अपने आश्रयदाता का वर्णन करते हुए इनका कहना है—

बाहुबली तिनके अनुज, श्री परताप सुजान ।
धरम धुरंधर जगत में, मोज भोज परमान ।।
समझ कुमर परताप को, निपुन राज के काज ।
दियौ वैंरि[3] गढ़ि हरष के, बदनसिंह महाराज ।।

अपने आश्रयदाता की प्रशंसा करने में सोमनाथ ने उस समय की प्रचलित प्रणाली का अनुगमन किया है जिसके अनुसार आश्रयदाता में सम्पूर्ण गुणों की कल्पना की जाती थी और राजधानी को इन्द्रपुरी के समान समझा जाता था। प्रतापसिंहजी के दरबार में बहुत से गुणी लोग रहते थे और वैर के राजा की[4] उदारता का उपभोग करते थे।[5] प्रतापसिंह वीर भी थे।[6] उस समय के लिए

---

[1] स्थानीय प्रयोग, अर्थ है – 'मोटा पेट'।

[2] कवि के अनेक नाम मिलते हैं—सोमनाथ, सोम, ससि, ससिनाथ, नाथ, शशिनाथ।

[3] वैर।

[4] वैर का वर्णन—

सुंदर सफल चहुं ओर दरसत बाग अरविंद मंडित सरवर हमेसके ।
वसैं चारयों बरन जितैया जंग जालम और राचे प्रेम रंग साचे वचन सुवेसके ।।
जगमगै गढ महा महल विलंद महाराजै श्री प्रताप मानो उदय दिनेसके ।
आठहू पहर जहां मोद नित नेरैं होत वैर पर वारौं कोटि सहर धनेस के ।।

[5] सिद्ध मसनंद पै विराजै परतापसिंह भूपनि मयूषनि ह्वै झलकै हुलास है ।
पाछे चौंरवारे आछे अंवसनिवारे आगै सोहत सुगन्ध भीनै सुन्दर पवास हैं ।।
चंहु ओर सरसें निरेश कहि सोमनाथ हिये में सुहृदसुप देव कौ तलास है ।
आस पास मंडित अपंड नीति वारे जहां पंडित प्रकास वाकवानी कौ विलास है ।।

[6] प्रताप की तेग देखिए—

शंकर के अंग सी है गंग की तरंग सी,
विरंच के विहंगम सी चंद तै उदार सी ।

(टिप्पणी का शेष अंश आगे के पृष्ठ में है)

यह आवश्यक था कि कोई भी राजा युद्ध के लिये सर्वदा प्रस्तुत रहता था।

छिरौरा वंश में उत्पन्न कवि सोमनाथ प्रतापसिंह जैसे आश्रयदाता को पाकर कृतार्थ हो गए और अपनी वाणी का पूर्ण उपयोग किया। इनके ग्रन्थों से विदित होता है कि कवि ने अपनी बुद्धि का उपयोग अनेक क्षेत्रों में किया और साहित्य के विविध अंगों की पूर्ति सुन्दर रूप में की। इस ग्रन्थ में कवि ने अपने वंश का वर्णन भी किया है और अपने लिए लिखा है—

सोमनाथ तिनकौ अनुज, सब तैं निपट अजान।

यह देखने की बात है कि जहां रीतिकालीन कवि अपनी प्रशंसा के पुल बांध देते थे और अपनी बुद्धि तथा काव्य-चातुर्य की प्रशंसा करते अघाते नहीं थे, वहां सोमनाथ ने अपने को 'सब तैं निपट अजान' कह कर उसी आदर्श का अनुकरण किया है जिसके अनुसार महात्मा तुलसीदास ने अपना परिचय 'कवित विवेक एक नहिं मोरे' अथवा 'मूढ मति तुलसी' कह कर दिया है।

इस ग्रन्थ के प्रणयन हेतु प्रतापसिंहजो ने स्वयं ही कवि को आज्ञा दी थी। कवि लिखता है—

सु यह कुमर परताप कौ, हुक्म पाइ सविलास।
रस पियूष निधि ग्रन्थ कौ, बरनत सहित हुलास।।

एक बार पुनः तुलसी के अनुकरण पर संत और असन्तों के चरणों की वंदना करते हुए कवि सोमनाथ कहते हैं—

सज्जन दुर्ज्जन की सदां, सहस गुनी परनाम।
दया कीजियौ दीन लषि, सोमनाथ को नाम।।

सबसे पहले कवि 'पिंगल' का प्रकरण लेते हैं क्योंकि उनका कहना है—

छंद रीति समझै नहीं, बिन पिंगल के ज्ञान।
पिंगल मत तातैं प्रथम, रचियत सहित सयान।।

(पृ० ५२ की टिप्पणी का शेष अंश)

सारदा छविन्न सी अनंत मित्र मित्र सी,
सुरेस आतपत्र सी नछत्र की कतारसी।
बाहुवली बषत विलंद परतापसिंघ,
किति तुव राजै इमि थिरा के सिंगारसी।
रूप के पहारी अमंद छीर धारसी।
पियूष पारावार सी सतोगुन कै सारसी।।

अब पिंगल के सविस्तार निरूपण की ओर अग्रसर होते हैं—

पिंगल कीं मत निरिष के नाथ[१] कहै पहिचान।

तदनन्तर वे 'सप्त मात्रा प्रस्तार स्वरूप प्रसंग' को लेते हैं—

प्रथमहि गुरु तर लघु लिषैं, आगैं वरन सरूप।
जे अबसेष सु गुरु लिषै, यह्र प्रस्तार अनूप।।

इसके पश्चात् 'पंच वरन प्रस्ताव स्वरू१' का वर्णन है, फिर सप्त मात्रा प्रस्तार के २१ योग बताये हैं। पंचमात्रा के ३२ योग बताये हैं। पंच मात्रा के ३२ योग बताये गये हैं। 'गण' की व्याख्या वर्ग-प्रणाली से की गई है जिससे सारी बातें एक साथ स्पष्ट हो जाती हैं। फिर तीन मेरु की बात बताई है। छन्दों का वर्णन उच्च श्रेणी का है किन्तु इसमें कुछ उलझावट सी आ जाती है। छन्दों के प्रकरण में कवि की प्रतिभा दिखाई पड़ती है और छन्दों संबंधी वर्णन काफी अच्छा है। आवश्यकतानुसार छन्दों का स्पष्टीकरण करने में अनेक प्रणालियों का प्रयोग किया है। मात्रा मर्कटी के स्वरूप को भी वर्गाकार रूप में समझाया गया है।

इसी प्रकार काव्य के विभिन्न प्रसंगों को विस्तृत व्याख्या के साथ बताया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने मम्मट के काव्यप्रकाश पर अधिक ध्यान दिया है और पुस्तक की पिछली तरंगों में ध्वनि-प्रकरण विस्तार के साथ समझाया गया है। रस, नायक-नायिका आदि प्रसंगों को भी सुन्दरता के साथ बताया गया है। व्याख्या को अधिक स्पष्ट बनाने के लिए गद्य का प्रयोग भी किया गया। वीभत्स का उदाहरण लीजिए—

इतही प्रचंड रघुनंदन उदंड भुज,
उतै दसकंठ बढ़ि आयौ रुंड डारि कै।
सोमनाथ कहै रन मंड्यौ फर मंडल में,
नाच्यौ रुद्र शोणित सों अंगनि पखारि कै।।
मेद गूद चरबी की कीच मची मेदनी में,
बीच बीच डोलें भूत भैरों मुंड धारि कै।
चाइन सौ चंडिका चवात चंड मुंडन कौ,
दंत सौ अंतनि चचोरे किलकारि कै।।[२]

गद्य में व्याख्या—

'इहां चंडिका और देषनि वारौ आलंबन विभाव, और आतनि को

---

[१] सोमनाथ।

[२] 'रस ध्वनि' १६वां तरंग–रस पीयूषनिधि।

चचोरवौ उदीपन विभाव और देषन वारे के वचन अनुभाव और असूया संचारी भाव इनतै ग्लानि स्थायी भाव व्यंगि तातै वीभत्स रस।'

इस प्रकार रस के चारों अंगों को बताते हुए आचार्य सोमनाथ ने उक्त छंद में वीभत्स की प्रतिष्ठा की है।

नायिका वर्णन में कवि प्रचलित प्रणाली से पीछे नहीं रहता। परकीया को देखिए—

सुष पावति ज्यौं तुम त्यौं हमहू,
कबहुंक तो भूलि इतैवौ करौ।
दुरि दूर ही दूर रह्रो अनतैं,
छिनसे निस द्यौस वितैवौ करौ॥
चित दैकैं सुजान सुनौ ससिनाथ,
सनेह की रीति जितैवौ करौ।
अंषियांन की ताप रितैवौ करौ,
सुरतो मुसक्याइ चितैवौ करो॥[1]

और यह कृष्णाभिसारिका—

अगमदसार सब अंगनि लगायौ आछै,
अतर बसायौ नील अंबर उदार में।
छोर दीनी वेंनी कसी कंचुकी तनेंनी करि,
पेंनी करी डीठ अति अंजन के ढार में॥
सोमनाथ कहैं यों सिंगारि सजि चंदमुषी,
छिपकैं सिधारी रजनी के अभिसार में।
कछु न सम्हारि टूटे मनिनिके हार,
करी मदन सुमारि मन नंद के कुवार में॥[2]

थोड़ा 'हाव' और देख लीजिए फिर इस प्रसंग को बन्द करेंगे—

प्रात उठी अरविंदमुषी निसि कै करि केलि कलानि सौं पागी।
आरसी हेरति हीं उर मांझ अयान छटा सु निरंतर जागी॥
चारु कपोलनि में झलकी दुति कान के मानिक तैं रंग रागी।
जानि के पीक लकीर लगी सु गुलाब के नीर सौं धोवनि लागी॥

कवि ने सभी प्रसंगों को स्पष्ट बनाने के लिए स्वरचित और उपयुक्त उदाहरण दिए हैं। काव्य-गुण अलंकार वाली तरंग में अनेक आकृतियां, वर्ग, खाने, चित्र आदि हैं। मंत्री गति, अश्वगति, त्रिपदी, उर्द्धन तारा, धनुर्बंधचित्र, गतागत-

---

[1] 'परकीया सामान्या' नवम तरंग—रस पीयूष निधि।

[2] 'कृष्णाभिसारिका' एकादश तरंग।

चित्र, चरणगुप्त आदि को चित्रों द्वारा मनोहर प्रणाली में हृदयंगम कराया गया है।

मंत्री गति चित्र स्वरूप देखिए—

क	ही	मु	न	वा	त	ग	ही	उ	न	ता	त
उ	ही	र	न	धा	त	न	ही	बि	न	सा	त
स	ही	म	न	पां	त	उ	ही	अ	न	दा	त
ज	ही	व	न	पा	त	उ	ही	सु	न	आ	त
न	ही	अ	न	खा	त	य	ही	गु	न	गा	त
म	ही	व	न	खा	त	द	ही	ति	न	खा	त
स	ही	ब	न	बा	त	ति	ही	ब	न	जा	त
य	ही	दि	न	रा	त	च	ही	प	न	पा	त

प्रत्येक पंक्ति में 'ही' 'न' 'त' की दो-दो बार आवृत्ति हुई है, साथ ही प्रत्येक पंक्ति में लघु गुरु का क्रम बराबर चला है।

अन्तिम बाईसवीं तरंग बहुत बड़ी है क्योंकि इसमें अलंकार-प्रकरण है। शब्दालंकार के अतिरिक्त अन्य सभी अलंकारों का इसी तरंग में निरूपण हुआ है। इस तरंग में ३०३ छंद हैं जिनमें से २६७ छंद अर्थालंकारों की परिभाषा, उदाहरण और व्याख्या में लिखे गए हैं। इस प्रकरण का निर्वाह बहुत साव-धानी के साथ किया गया है। जिस प्रकार काव्यप्रकाश के अन्तिम उल्लास में अलंकारों का निरूपण है उसी प्रकार इस ग्रन्थ में भी अन्तिम तरंग का उपयोग अलंकारों को स्पष्ट करने के लिए किया गया है। काव्यप्रकाश में उल्लासों की संख्या १० है और सोमनाथजी के पीयूषनिधि में २२ तरंगें हैं किन्तु इन बाईस तरंगों को काव्यप्रकाश के १० उल्लासों में भलो प्रकार बिठाया जा सकता है। प्रथम दो तरंग परिचयात्मक हैं तथा ८ तरंग से १५ तरंग तक नायिका वर्णन है, अतएव इन तरंगों को छोड़ कर बाकी तरंगें इस प्रकार बिठाई जा सकती है—

१. काव्यप्रकाश का प्रथम उल्लास			रसपीयूषनिधि तरंग	३
२.	,,	,,	द्वितीय	,,	६, ७
३.	,,	,,	तृतीय	,,	७
४.	,,	,,	चतुर्थ	,,	१६, १८
५.	,,	,,	पंचम	,,	१७, १६
६.	,,	,,	षष्ठम्	,,	१६

७.	काव्य प्रकाश उल्लास सप्तम्	रसपीयूष निधि तरंग	२०
८.	,, ,, अष्टम्	,,	२१
९.	,, ,, नवम्	,,	२१
१०.	,, ,, दशम्	,,	२२

काव्य प्रकाश में छंद-निरूपण तथा नायिका भेद नहीं है किन्तु रसपीयूष-निधि में यह प्रसंग भी शामिल कर लिए गए। पहली कुछ तरंगें और बीच की आठ तरंगें इन प्रसंगों के लिए काम में लाई गई हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ सर्वांग-पूर्ण है और काव्य के सभी प्रसंगों का सुन्दर विवेचन एक ही स्थान पर उप-लब्ध है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन कवि के ही शब्दों में १७९४ वि० है—

सत्रह सौं चौरानवां, संवत् जेठ सुपास।
कृष्ण पक्ष दशमी भृगू भयो ग्रन्थ परकास॥

यह पुस्तक काफी बड़ी है, और इसमें प्रयुक्त कविता का स्तर भी काफी ऊँचा है। कहीं-कहीं कुछ दोष भी दिखाई देते हैं जो अधिकतर लिपि से संबंधित हैं। हो सकता है ये अशुद्धियां लिपिकार के कारण ही आ गई हों। यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में मत्स्य प्रदेश के इन महाकवि का स्थान कवित्व और आचार्यत्व की दृष्टि से बहुत ऊँचा है।

कलानिधि[1] नाम के एक उत्कृष्ट कवि भी प्रतापसिंहजी के दरबार में थे। सोमनाथ और कलानिधि ने मिल कर सम्पूर्ण रामायण का हिन्दी अनुवाद किया था, ऐसा कहा जाता है। हमें हमारी खोज में कुछ काण्ड मिले जिनके आधार पर अनुवाद वाली बात सत्य प्रतीत होती है। रीतिग्रन्थों के सम्बन्ध में कला-निधि के दो ग्रन्थ प्राप्त हुए—

१. शृंगार माधुरी
२. अलंकार कलानिधि

---

[1] कवि कलानिधि के संबंध में अनेक बातें सुनने और पढ़ने को मिलीं।
'मिश्रबन्धु विनोद' में तीन कलानिधि दिये गए हैं—

१. कृष्ण कलानिधि नं० ९१२ पर सं० १८२०
२. कलानिधि नं० ९९२ पर सं० १८०७
३. लाल कलानिधि नं० १०१७ पर सं० १८०७

किन्तु इनकी पुस्तकों का अध्ययन करने पर मालूम होता है कि ये तीनों एक ही कलानिधि थे—

१. तीनों का समय १८०७से १८२० का माना गया है।

[पृष्ठ ५७ की टिप्पणी का शेष]

२. नामों के आधार पर– तीनों नामों में कलानिधि शब्द सम्मिलित है। इस बात का निराकरण इस तथ्य से हो जाता है कि इनका नाम 'श्री कृष्ण भट्ट' था और 'कलानिधि' संभवतः इनकी उपाधि थी। ये महाशय कहीं केवल अपना नाम लिखते थे जैसा नं० १ पर, कहीं उपाधि अथवा उपनाम रखते थे जैसा नं० २ पर, कहीं-कहीं अपने नाम का अन्तिम अंश 'लाल' कलानिधि के साथ जोड़ कर लाल कलानिधि बन जाते थे जैसा नं० ३ पर। इन तीनों नामों को साधारण रूप से देखने पर भी इनमें कोई विभिन्नता प्रतीत नहीं होती।

३. ग्रन्थों में पाई गई सामग्री के आधार पर—

श्रृंगारमाधुरी में लिखा है—

हुकम पाय नृप को सुकवि, सकल कलानिधि लाल।
यह श्रृंगार रस माधुरी, कीन्हौं ग्रन्थ रसाल।।

और उसी ग्रन्थ में लिखा है—

संवत् सत्रह सौ बरस, उनहत्तर के साल।
सावन सुदि पून्यौ सुदिन, रच्यौ ग्रंथ कवि लाल।।

रामगीतम् के अंत में लिखा है—

श्रीकृष्णेन कलानिधिना कविनैवं।
कथितमुपासन विदलित दैवं।।

युद्ध काण्ड में—

अज चक्रवर्ति कुमार गुन गनगहर सागर जानई।
श्री रामचरण सरोज अलि परताप सिंह विराजई।
तेहि हेत रामायण मनोहर कवि कलानिधि ने रच्यौ।
तंह युद्ध काण्ड वयासि में पुनि इंद्रजित् गर्जन मच्यौ।।

ऊपर दिए गए अवतरणों में 'कलानिधि' नाम किसी न किसी रूप में अवश्य आया है। खोज करने पर पता लगता है कि ये महाशय प्रतापसिंहजी के दरबार में बहुत समय तक रहे थे और उन्हीं के संग्रह में ये पुस्तकें भी थीं।

४. रचना की एकता– कवि कलानिधि के नाम पर प्राप्त होने वाले ग्रन्थों का अध्ययन करने पर काव्य का एक-सा स्तर मिलता है। इनका रामायण का अनुवाद करना, रामगीतम् की रचना, तत्सम् शब्दों का प्रयोग इस बात के प्रमाण हैं कि ये संस्कृत के पंडित थे और इन अनेक ग्रन्थों का रचयिता एक ही होना चाहिये।

५. वैर से संबंधित लोगों का भी यही कहना है कि 'कलानिधि' नाम के कवि जो वैर वाले प्रतापसिंहजी के दरबार में थे, एक उच्च कोटि के कवि तथा पंडित थे और उनकी अनेक रचनाओं से मत्स्य प्रदेश विभूषित हुआ। उनका कलानिधि नाम सर्वत्र प्रचलित पाया गया।

ये दोनों ग्रन्थ भरतपुर आते समय कवि के पास थे, और इनका प्रचार तथा सम्मान यथेष्ट मात्रा में हुआ। भरतपुर राज्य के आश्रित होने के नाते ही हम कलानिधि के इन ग्रन्थों को मत्स्य के अतंर्गत लेते हैं। इसमें संदेह नहीं कि भरतपुर के महाराज कुमार प्रतापसिंहजी ने कवि के काव्यत्व को विकसित कराने का सुअवसर प्रदान किया। उस जमाने में कविगण आश्रयदाता की खोज में इधर-उधर जाया करते थे। महाकवि देव को तो कोई अच्छा आश्रयदाता ही नहीं मिल पाया। संभव है कि कलानिधि भी कई स्थानों पर गए होंगे किन्तु यह बात निर्विवाद सी मालूम होती है कि इनका अधिक समय वैर में ही व्यतीत हुआ, और वहीं रहकर इन्होंने अपने जीवन का सब से बड़ा काम—बाल, युद्ध और उत्तर काण्डों का हिन्दी पद्यानुवाद किया। प्रस्तुत दोनों पुस्तकें--शृंगारमाधुरी और अलंकारकलानिधि, भरतपुर में नहीं लिखी गईं। पहली पुस्तक बूंदी के राजा बुद्धसिंहजी के लिए लिखी गई थी, और दूसरी महाराज भोगीलाल के लिए।[1]

---

[1] कलानिधि के और भी कई ग्रन्थ खोज में मिले—

१. उपनिषद्सार–माण्डूक्य, केन आदि उपनिषदों का गद्य अनुवाद।
२. दुर्गा माहात्म्य–तेरह तरंगों में दुर्गासप्तशति का अनुवाद।
३. रामगीतम्–गीतगोविंद प्रणाली पर लिखा ग्रंथ।

संस्कृत—

१. प्रशस्ति मुक्तावली।
२. सरस रसास्वादः।
३. वृत्तमुक्तावली।
४. पद्यमुक्तावली–प्रकाशित रा. प्रा. वि. प्र.।
५. ईश्वरविलास–प्रकाशित रा. प्रा. वि. प्र.।

रामगीतम् का उद्धरण—

भव भय दुःखनिवारण सुखकारण ए।
भवति करुणभवभाजि ! रघुवर राम रमे॥
जनकसुता परिरम्भण धृत सम्भ्रम ए।
निज—जन—सुरतरुरख ! रघुवर राम रमे॥

ये पुस्तकें तथा वाल्मीकि रामायण के तीन काण्डों का हिन्दी अनुवाद इस बात का प्रबल प्रमाण है कि कलानिधि संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे।

इनकी पुस्तकों से मालूम होता है कि ये महाशय बूंदी के महाराजा बुद्धसिंहजी के यहां थे। ये भोगीलाल के पास भी गये और अंत में भरतपुर राज्य में पधारे जहां वैर के

शृंगार-रस-माधुरी के अंत में लिखा है—

'इति श्री रावराजा बुद्धसिंघजी आज्ञा प्रवृर्तक श्री कृष्णभट्ट विरचितायां श्रृंगार रस माधुर्या षोड़स स्वादः ।'

इसी प्रकार दूसरी पुस्तक के अंत में लिखा है—

'इति श्रीमनमहाराज भोगीलाल वचनाज्ञा प्रवृर्तक कवि कोविद श्री कृष्ण कवि लालनिधि विरचते अलंकार कलानिधौ रस-ध्वनि-निरूपणं नाम पंचमी कला ।'[१]

श्रृंगारमाधुरी राजा बुद्धसिंह की आज्ञा पाकर लिखी गई। कवि के साथ यह कृति भी भरतपुर आई और प्रचार पाकर यहां के साहित्य में सम्मिलित हो गई। इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति में १६३ पत्र हैं और बहुत सुंदर लिपि में लिखि हुई पूर्ण पुस्तक है। इसमें १६ स्वाद हैं—शृंगार की माधुरी १६ प्रकार के स्वादों में चखाई गई है।

१	शृंगार	छंद संख्या २३
२	विभाव लक्षण	२२
३	नायका भेद वर्णन	७६
४	दरसन लछनं श्रृंगार रस माधुर्य	३०
५	नायका चेष्टा वर्णन	४६
६	भाव लक्षण	६६
७	अष्ट नाइका वर्णन	५०
८	विप्रलंभ श्रृंगार	६३
९	मान लक्षण	२३
१०	मान मोचन	२१

[पृष्ठ ५९ का शेष]

शासक महाराजकुमार प्रतापसिंहजी ने इनको बहुत सम्मान के साथ रखा। इस बात का कवि ने भी स्थान-स्थान पर संकेत किया है, जैसे युद्धकाण्ड में—

ब्रज चक्रवर्ति कुमार गुन गन गहर सागर जानई,
श्री रामचरण सरोज अलि परतापसिंह विराजई।

इसी नाते कलानिधि को मत्स्य प्रदेश के कवियों में गिना गया है और इनकी पुस्तकों को भी इसी दृष्टि से यहां के साहित्य में स्थान दिया गया है।

[१] "श्री कृष्ण कवि लालनिधि" ये सारी बातें "कलानिधि" के साथ जुड़ कर इस कवि के व्यक्तित्वकी एकता प्रमाणित कर रही हैं।

११	सखीजन	३०
१२	करूना	२१
१३	सखीजन कर्म कथा	१८
१४	हास्य रस	४४
१५	कवित्त वृत्ति	२०
१६	अनरस लक्षण	१८

यह पुस्तक शृंगार रस से संबंधित प्रायः सभी विषयों से पूर्ण है।[1] पुस्तक के आरम्भ में बूंदी 'विंदवती' का वर्णन किया है—

सब भूपति बंस सिरैं अवतंस सदासिव अंस नरिंदवती।
महिमानत हिम्मति हिम्मतिकी हर किम्मति की हद हिंदवती।
सुख सौं सरसी सरसी सरसी सरसीरुह सौरभ वृंदवती।
गुण सौं अगरी सगरी नगरी अधिराज विराजत विंदवती॥

इस पुस्तक के अंत की पंक्तियां इस प्रकार हैं—

बाल बंदि पतिसाहि कौं, हुकम पाइ बहु भाइ।
कर्‌यौ ग्रंथ रस माधुरी, सुकवि कलानिधि राइ॥
संवत सत्रह सै वरष, उनहत्तरि के साल।
सांवन सुदि पून्यौं सुदिन, रच्यौ ग्रंथ कवि लाल॥
छत्र महल बूंदी तषत, कोरि सूर ससि नूर।
बुद्ध बली पतिसाहि कैं, कीनौं ग्रन्थ हजूर॥

पुस्तक के कुछ प्रसंग देखिए—

नववधू—

अैसी अवनी के मांहि देषी सुनी कहूं नाहि
काहू पूरे पुन्यन तैं पाई भले सौंन मैं।
सौंने की सी छरी लाल हीरौं कैसी लरी
अंग अंग रंग भरी अति आनद के हौंन मैं॥
गौंने आई भोरी गुन गोरी विज्जु डोरी
किसोरी बरजोरी बतराति रही भौंन मैं।
एहो नद नंद मुष मंद मुसिकानि भए
कोरी चंद चांदनी सी फैली भौंन भौंन मैं॥

---

[1] यह हस्तलिखित प्रति बहुत सुन्दर है। आरम्भ से अंत तक एक ही प्रकार की स्पष्ट और सुन्दर लिपि है। प्रत्येक पृष्ठ पर चारों ओर काले, लाल और पीले रंग का तिरंगा हाशिया है।

सिंगार रस लक्षण–

रति थाई सिंगार रस, भेद वषानहु दोइ ।
इन संभोग वषानियें, विप्रलंभ इक होइ ।।

अन्य दो–

अपने ही मन में रहे, लषें सषी जन ताहि ।
यों प्रछन्न प्रकास करि, भेद दोहि निर वाहि ।।

मुग्धा कौं सयन–

कोरि मतन कोरिक जतन लहि नवला पिय सेज ।
चंचल चित चौंकत रहे, गहै न नेक मजेज ।।

अथवा–

करि सौंह सखी जहं ल्वाई गई
तिहि सेजहि आयौ पिया रस भीनों ।
चौंकि परी चपला सी तिहैं
चऊ ओर लखै चित चैन न लीनौं ।।
अति चाचरि कैं चुरियान उहूं
कर यौं गह्यौ नीवी कौं लाल नवीनौ ।
लै अति झूठ मनौ रवि कौं
अरिवंदनि आइ अलिगन कीनौ ।।

मुग्धासुरत–

काची काची कलिन सौं, अलि न करौ लग लाग ।
फूली फूली मालतिन, जौं लौं रहौ पराग ।।

मुग्धा को मान–

करै सषी की सीष सौं, मुग्धा मानहि हानि ।
अति अजान मानौं नहीं, मानति पुनि भयमान ।।

सुरतांत वर्णन–

दीनौ जंघ थंभनि कौं सरस दुकूल कुच
कुम्भनि कौं दीनौं हार आनद विधान है
कानन कौं कुंडल अधर कौ तमोर दीनौ,
करन कौं कंकन जुगल भासमान है ।।
सुरत समर अंत रीझि रीझि चंदमुखी
जंग जीति जोधनि को कीनौं सनमान है ।
पाछें परि रह्यौ कुटिलाई भर्‌यौ कैशपास
ताकौं पुनि उचित यौं ही बंधन विधान है ।।

एक उत्प्रेक्षा भी : प्रच्छन्न संभोग शृंगार संबंधित—

चंचल चितौंही चीर अंचल मैं राजें कुच
ऊपर अपार हार छवि छहरात है।
मानौ चारु भारती के धार है अन्हात संभु
तिनही के सीस सुरसरी सरसाति है।।

. पिया कौ विहित भाव—

कपट की बानी जिय जानी पहिचानी जानी
जानति हमारौ मन मेलि भरमायौ है।
× × ×
पीरी परि आई झांई कपोलनि कहै देति
कहि अज कैसें काम कीरति दुराइ है।

इस पुस्तक में—

१. प्रचलित छंद-कवित्त, सवैया, दोहा आदि हैं।
२. ग्रंथ रचना में उस समय की प्रचलित रीतिकालीन परिपाटी का ही अनुगमन किया गया है।
३. शृंगार रस के अनेक नग्न और उत्तेजक वर्णन हैं जो शृंगार काल की उस कमी को लिए हुए हैं जिनके कारण काव्य का ह्रास हुआ।
४. अनेक स्थानों में उस समय के प्रसिद्ध कवियों द्वारा ग्रहीत प्रणाली का प्रयोग किया गया।

अलंकार कलानिधि— कवि की दूसरी पुस्तक है। दुर्भाग्य से यह पुस्तक अपूर्ण प्राप्त हुई है।[1] पुस्तक इस प्रकार आरंभ होती है—

'अब रसन के भेद कहते हैं'—किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि जहां पांचवीं कला के साथ पुस्तक मिली वहां पत्र संख्या १ मिली है जिसका अभिप्राय यह है कि इसी नाम की किसी बृहद्तर पुस्तक से कुछ अधिक आवश्यक और उपयोगी प्रकरणों की प्रतिलिपि की गई है। किन्तु पांचों कलाओं का एक साथ मिलना एक और भी कठिनाई है।

---

[1] जिस जिल्द में अलंकार कलानिधि की हस्तलिखित पुस्तक मिली उसके पहले नाममंजरी नाम की पुस्तक का कुछ अंश है जो अमरकोष के सदृश पर्यायवाची शब्दों का संग्रह है। उदाहरण अन्यत्र उपलब्ध हैं। अलंकार कलानिधि की प्रथम चार 'कला' नहीं मिलीं। पुस्तक पांचवीं कला से शुरू होती है और नवीं कला तक चलती है। दसवीं कला प्रारम्भ होने के साथ ही पुस्तक का अगला भाग छूट गया है और इस कला के केवल नाम मात्र का संकेत मिलता है।

जो कलाएँ मिलीं वे इस प्रकार हैं—

पंचमी कला — रस ध्वनि निरूपणं ।
षष्टम कला — ध्वनि भेद निरूपणं ।
सप्तम कला — गुणीभूत व्यंग्य निरूपणं ।
अष्टम कला — शब्दार्थ चित्र काव्योद्देशोनाम ।
नवमी कला — गुण निरूपणं ।

नवम कला को प्राचीन मत के अनुसार गुण निरूपण कहा है । इन प्रकरणों के अंतर्गत प्राप्त सामग्री को पढ़ कर यह स्पष्ट विदित होता है—

१. यह अंश, काव्यगुणों से पूर्ण, कविता की आत्मा से संबंधित है ।

२. रस और ध्वनि का प्रसंग साथ-साथ लिया गया है ।

३. संस्कृत के रीति ग्रन्थों की परंपरा के अनुसार ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य तथा चित्र काव्य आदि प्रसंग लिए गए हैं । इसी प्रकार गुण का निरूपण भी ।

इस संबंध में एक बहुत ही गौरवपूर्ण बात यह है कि प्रतापसिंह के इन दोनों कविराजों ने काव्य की आत्मा का विश्लेषण और विवेचन करने की ओर बहुत ध्यान दिया । नायक-नायिका भेद तथा शृंगारी कविता से ही अपने को सीमित नहीं रखा । यही कारण है कि इन कवियों का नाम बिना किसी संकोच के हम आचार्य कोटि में रख सकते हैं । इस पुस्तक में कवि ने अपने उपनाम 'लाल' का भी प्रयोग किया है—

कवि लाल कहत गोविंद सुनहु, भोगिय लाल भुवाल भुव ।
तुव सप्त दीप तत आजु सुनि, एकिति कित्त प्रताप हुव ।।

नवम कला के अंत में कवि अपना नाम 'श्री कृष्ण भद्रदेव' कहता है और पंचम कला के अंत में 'श्री कृष्ण कवि लाल निधि' कहता है । इसका अभिप्राय यह है कि कवि अपने नाम तथा उपनामों के प्रयोग से स्वयं ही बहुत कुछ भ्रम उत्पन्न करता है । इन बहुत से नाम और उपनामों को ध्यान से देखने के पश्चात ही इन सब नामों की एकता के संबंध में ध्यान गया ।

गुणीभूत व्यंग्य का निरूपण देखिए—

प्रगट अपर को अंग अरु, वाच्यहि पोषक होइ ।
कष्टगम्य संदिग्ध अरु, व्यंग्य वाक्य सम कोइ ।।
काकु गम्य···वाच्य अरु, आठ होंहि ए भेद ।
उदाहरण सब बरनिये, सुनत जात मन खेद ।।

कविता की दृष्टि से 'लज्जा लक्षन' भी—

गौने की जामिनि सौंने की बेलि सी, सौंहनी भाँति सुहाग सौं सानी।
सौंहनी सौं करु षीनी विसास दे, 'भोगियलाल' पिया ढिग आनी॥
बांह गहै बड़ी लाज मैं अंग, सकौरि के भौंह मरौरति तानी।
नैन चुराइ दुराइ कें आंनन, इंद्रबधू ज्यौं बधू सकुचानी॥

शृंगारमाधुरी तथा अलंकारकलानिधि दोनों रीतिग्रंथ हैं। इन पुस्तकों का जो भाग मिल सका उससे इन पुस्तकों में रीति-विषय-प्रतिपादन की उत्कृष्ट प्रणाली का आभास मिलता है। इसमें संदेह नहीं कि दूसरी पुस्तक के अप्राप्त प्रकरणों में अलंकार का भी सुन्दर वर्णन होगा, क्योंकि बिना इस प्रसंग के इस पुस्तक के नाम की सार्थकता प्रतिपादित नहीं होती। जो अंश प्राप्त हुआ है उसके आधार पर ही हम कह सकते हैं कि कवि ने काव्य के उपयोगी सभी अंगों का विश्लेषण किया है।

अलवर के राजाओं में 'बख्तावरसिंह'[1] न केवल उदार आश्रयदाता थे वरन् स्वयं कवि थे और कवियों का बहुत सम्मान करते थे। इनके दरबार के एक कवि भोगीलाल ने **'वषतविलास'** नाम का एक लक्षण-ग्रंथ संवत् १८५६ में लिख कर समाप्त किया। इस पुस्तक में नौ विलास हैं—

१.	प्रथम विलास	राजवंस कविवंस वर्णन[2] मंगलारंभ आदि	छंद सं०	४०
२.	द्वितीय विलास	स्थायी भाव	,,	३५
३.	तृतीय विलास	विभाव	,,	३४
४.	चतुर्थ विलास	अनुभाव	,,	२३
५.	पंचम विलास	सात्विक	,,	२२
६.	षष्ठ विलास	संचारी भाव	,,	९८
७.	सप्तम विलास	नवरस सुरूप चतुर्वृत्ति	,,	१४२
८.	अष्टम विलास	नायक वर्णन	,,	३४
९.	नवम विलास	नायिका वर्णन	,,	१०५

---

[1] महाराव सवाई बख्तावरसिंहजी संवत् १८४७ से १८७१ वि० तक अलवर के राजा रहे। ये बड़े बुद्धिमान और राजनीतिज्ञ थे। दिल्ली के बादशाह शाहआलम तथा जैपुर के नरेश इन्हें बहुत मानते थे। ये बड़े गुण-ग्राहक थे और दूर-दूर के विद्वान इनके दरबार में आते थे।

[2] मंगलाचरण से अनेक बातों का पता लगता है, जैसे –

१ आश्रयदाता का नाम—

सुर नर बानी पंथ पढि वरनों ग्रन्थ विसाल। पढ़ि प्रसन्न ह्वै है नृपति वषतावर भूपाल॥

उपर्युक्त विश्लेषण से प्रगट होता है कि—

१. यह पुस्तक रस संबंधी है और रसराज शृंगार की दृष्टि से नायक-नायिका भेद भी जोड़ दिया गया है।

२. पुस्तक की रूपरेखा बहुत वैज्ञानिक और संयत है–

अ. पहले मंगलाचरण, फिर

आ. रस के चारों अंगों—स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव का निरूपण।

इ. पुनः नवों रस का स्वरूप, और फिर

ई. नायक-नायिका वर्णन।

३. प्रत्येक विलास में पाई गई छंदसंख्या परम उपयुक्त है। जिस प्रकरण को जितना स्थान मिलना चाहिये उतना ही दिया गया है। सात्विक और अनुभाव का इतना विस्तार नहीं होता अतः इनको २२ और २३ छंदों में ही समझा दिया गया। नायिका-वर्णन का विस्तार अधिक होता है इसलिये इस प्रसंग को बताने के लिये १५० छंदों का प्रयोग किया गया है। इससे कम 'नवरस सुरूप और चतुर्वृति' नामक विलास को १४२ छंद दिए गए हैं।

---

२ ग्रन्थ निर्माण काल—

संवत रस ६ सर ५ नाग ८ ससि १, कार्तिक शुदि भृगु वार।
सुतिथि पंचमी ५ द्योस सुभ पूरन ग्रन्थ विचार॥

संवत् १८५६ में इस ग्रंथ का निर्माण हुआ। शब्दों के साथ-साथ ऊपर लिखे गए अंक भी पुस्तक में इसी प्रकार दिए हुए हैं।

३ राजवंश वर्णन–

राजा के वंश का वर्णन 'सूर्य' से आरम्भ किया है–'प्रथम भये सूरज तनय मनुजाधिप मनु नाम'...और इसी प्रकार 'नरूका वीर' तक वर्णन चलता है। अलवर के राजाओं का वर्णन करते हुए बख्तावरसिंहजी का वर्णन इस प्रकार किया है—

भये प्रगट तिनतें नृपति, वषतावर रमनीय।
जैसे छीर समुद्र तें, इंदुकला कमनीय॥

४ राजगढ़ वर्णन–

बगर बगर संपति सगर, लसत मनोहर हर्म्य।
जगर मगर ज्योतिनु अगर, नगर राजगढ़ रम्य॥

संभवतः इस ग्रन्थ का निर्माण राजगढ़ में ही हुआ।

४. प्रत्येक दृष्टि से यह पुस्तक बहुत संयत और स्पष्ट है। देव के वंशज होने के नाते इनके परिवार की काव्य-परम्परा उत्कृष्ट कोटि की थी और इसी प्रकार का काव्य 'वषत विलास' में मिलता है। रस का प्रकरण भी बहुत सुन्दर बन पड़ा है। नायिका के विभिन्न रूप भी देखने योग्य हैं।

उदाहण के लिए प्रौढ़ा नायका देखिए—

सोहै सुरंग उरोज उतंगनि, अंगनि अंगनि भूषन सौं लसि।
आए लला पगे कामकलानि, हुई छतिया के छलानि कहू कसि॥
भोग कही न परै जौ लही तिय, जौवन भार सौं आलस सौं गसि।
रोकत हाथ बनौं नहीं नाथ कौ, फेरि दृगंचल हेरि रही हंसि॥

और भी–

बांह गहै करै नाह सौं नाहिं चलै नहीं चाह भरी चलि जावैं।
कंचुकी तें पकरे कुचके उचकी परै पै उर त्यों उचकावै॥
हाहा करै मुष चूमत बाल झुकै झिझकै चित में ललचावै।
छैल तें ऐन छिनौ छुटि जावै न बैननि ही नटि नैन नचावै॥

---

५ कवि का नाम–

कवि पंडित द्विज वरनि कों, नृप दीने बहु दान।
तिन में भोगीलाल को, सरस कियौ सनमान॥
निरषि भूप कों धर्मरत, सकल रसनि में ज्ञान।
वखत विलास रच्यौ सरस, भोगीलाल सुजान।

६ कवि के पूर्वज–

कास्यप गोत्र द्विवेदि कुल, कान्यकुब्ज कमनीय।
देवदत्त कवि जगत में, भये देव रमणीय॥

ये देव कौनसे हैं ? कवि ने इनके संबंध मे लिखा है–

जिनसौं बोली भगवती, ह्वै प्रसन्न प्रत्यक्ष।
हैहौ कविवर पूज्य तुम, अवनि अधीस समक्ष॥

इससे विदित होता है कि ये देव कविशिरोमणि महाकवि 'देव' ही थे। किन्तु एक बात विचारणीय है। देव को विद्वान लोग प्रायः सनाढ्य ब्राह्मण मानते हैं, शुक्ल और दास दोनों ने इसी का समर्थन किया है। डॉक्टर नगेन्द्र देव को कान्यकुब्ज मानते हैं और हम इन्हींके पक्ष का समर्थन करते हैं क्योंकि—

अ. भोगीलाल ने इन 'देव' कवि को अत्यन्त उच्च कोटि का कवि लिखा है जो महाकवि देव के संबंध में लिखा जाना उचित ही है।

आ. देव का जन्म समय १७३० वि० के लगभग माना जाता है। भोगीलाल ने यह पुस्तक संवत् १८५६ में लिखी। इस तरह देव और भोगीलाल के बीच में लगभग १००-१२५ साल का समय आता है। इस समय का स्पष्टीकरण कवि भोगीलाल ने

वीभत्स में भयानक का दर्शन कीजिए—

अस्त्र-बली वषतेस बहादुर, सस्त्रन सौं रन सत्रु संहारे।
लोथिन प्रेत लथे रत रेत में, लोहू के षेत में जात पनारे।।
आई विसाल वरंगना बाल ये, चामचमात विताल निहारे।
देषि भजी विकरारे मरे, चहूं डारै गयंद भयंकर भारे।

रस के विभिन्न अंगों का वर्णन करते हुए, कवि भोगीलाल ने नायिका भेद वर्णन विस्तृत रूप में किया है। कविता की दृष्टि से भी इस कवि का स्तर बहुत ऊंचा है। शृंगारिक रचनाओं में ये कुछ अधिक शृंगारिक हो गए हैं। व्याख्या की उत्तमता के विचार से तो नहीं किन्तु कवि ने जिस वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया है उसके विचार से हम इन्हें आचार्यत्व की श्रेणी में ले सकते हैं।

सिखनख—की ओर भी कवियों का ध्यान गया। हिन्दी में 'सिखनख' या 'नखसिख' बहुत मिलते हैं। हमें भी अपनी खोज में इस प्रकार के दो विशिष्ट हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त हुए—१. टीका के रूप में तथा, २. स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में। प्रसिद्ध कवि बलभद्र के सिखनख पर मनीराम ने सुन्दर टीका लिखी, और रसानंद ने एक सुन्दर स्वतंत्र ग्रंथ लिखा। बलभद्र का सिखनख हिन्दी में बहुत प्रसिद्ध माना जाता है और साथ ही कठिन भी। इस कठिनाई का ध्यान रखते हुए मनीराम ने बहुत सचेत होकर इस ग्रंथ-रत्न की 'सर्वप्रथम टीका' हिन्दी साहित्य को प्रदान की। अपनी टीका के संबंध में उनका विचार था—

'सिखनख जौ बलभद्र कौ, कठिन पदन की रीति।
सुगम होहि इहि साष ते, ग्रंथन की सुप्रतीति।।'

अतएव मनीराम द्विज ने इस कठिन ग्रंथ को सुगम करने के लिए इसकी टीका लिखी।[१] इस ग्रंथ को बहुत प्रौढ़ और परिमार्जित माना जाता है अतः

बीच की पीढ़ियों द्वारा इस प्रकार किया है—

१. देव २. नवरंग ३. पुरुषोत्तम ४. सोभाराम ५. भोगीलाल

देव और भोगीलाल के बीच में तीन पीढ़ियां और हैं, अतएव १००–१२५ साल का समय ठीक ही है।

ɜ देव का जन्म जिस प्रान्त में हुआ माना जाता है उसमें कान्यकुब्ज ही अधिक रहते हैं, सनाढ्य नहीं। अतः देव काश्यप गोत्रीय द्विवेदी कान्यकुब्ज थे।

[१] बलभद्र मिश्र का जन्मकाल संवत् १६०० वि० माना जाता है। इन्हें कुछ लोग केशवदास का बड़ा भाई मानते हैं, और साथ ही उनका समकालीन। इसमें संदेह नहीं कि बलभद्र मिश्र के बनाये सिखनख का बहुत प्रचार था किन्तु साथ ही यह एक कठिन ग्रंथ भी था। साहित्य के इतिहास में इनके इस ग्रंथ के कई टीकाकारों के नाम मिलते हैं। सबसे

इस पर की गई टीका इस बात का प्रमाण है कि मत्स्य में काव्यग्रंथों को समझने और समझाने का प्रयास हुआ था। मनीराम द्विज ने जो वर्णन दिया है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि राजधानी में ही नहीं वरन् राजपरिवार से संबंधित अन्य ठिकानों में भी काव्यचर्चा चलती रहती थी और कवियों का सम्मान होता था। थानागाजी, तिजारा आदि ठिकानों में सम्मान होता था, और वहा के ठिकानेदार भी काव्यप्रेमी थे। जावली के राव भी इसी प्रकार विद्याव्यसनी रहे।

यह टीका बहुत करीने से लिखी गई है। टीकाकार ने अपनी टीका का क्रम इस प्रकार बताया है—

प्रथम मूलपद अर्थ पुनि, तृतीय अर्थ दृढ कीन।
सबदाडंबर वांचियौ, काम करे परवीन॥
अर्थ सुदृढ़ विस्तार है, क्यों पचिये ता ठौर।
नर्ने करनौं होइ तब, लपियौ कवि सिरमौर॥

एक उदाहरण लीजिए—

केस वर्ननं, प्रथम पंक्ति

१. मूल– 'मरकत के सूत किधौं पन्नग के पूत किधौं,
भंवर अभूत तम-राज के से तारे हैं।'

२. अर्थ– 'मरकत मनि स्याम हैं, पन्नग सर्प, अभूत जैसे न भये होंहि, तमराज अधिक अंध्यारो।'

३. अर्थ दृढ़– सोई सब्दाडंबर जांनियौ अनिल व्योम तृण वाल मरकतमणि-कवि प्रिया।
'कृष्णे नीलासित स्यामः', 'उरगः पन्नगो भोगी' 'ध्वांते गाढ़ेऽन्धेतमसं'···अमरे०

पहला टीकाकार गोपाल कवि माना जाता रहा है। इन कवि की टीका का समय मिश्र-बन्धु, शुक्ल, चतुरसेन आदि इतिहासकारों ने १८९१ लिखा है किन्तु हमारी खोज में पाई गई मनीराम वाली टीका गोपाल कवि की टीका से भी ५० वर्ष पुरानी है। कवि ने इस टीका का समय इस प्रकार दिया है—

अष्टादस व्यालीस हैं, संवत् मगसिर मास।
कृष्ण पक्ष पाचे सुतिथि, सौमवार परगास॥

यह प्रति जो हमें मिली उसका लेखन भी गोपाल कवि की टीका से पहले ही हो चुका था। इसके लिपिकार थे 'भेरू सेपावत' और लिपिबद्ध करने का समय है संवत् १८७७ वि०—

श्रावण सुदि एकादसी, भानुवार मन[धु]मांस।
मुनि मुनि वसु ससि सुबुधि सुनि, यह संवत परगास॥
७ ७ ८ १

द्वितीय पंक्ति

१. **मूल**– 'मषतूल गुनग्राम सोभित रस स्यांम,
　　काम मृग कांनन कुहूं के कुमार हैं ।'

२. **अर्थ**– 'मष तूल स्यांम पाट, गुन सो डोरा, ग्राम सौ समूह, सरस सौ अधिक, कांम
　　ही भयौ मृग ताकौ कांनन सो वन, कुहू सो मावस्या को भेद ।'

३. **अर्थ दृढ़**– यहां भी कोष दिखाया गया है ।

इसी प्रकार तीसरी और चौथी पंक्तियों की टीका की गई है ।

तृतीय

कोप की किरनि कि जलद नलि के तंत
उपमा अनंत चारु चमर सिंगार हैं ।

चतुर्थ

कारे सटकारे भीजे सौंधे सरस वास,
ऐसे बलिभद्र नवबाला तेरे बार हैं ।।

इससे अधिक सुन्दर टीका का उदाहरण और क्या मिल सकता है ? **मनीराम की यह टीका** हिन्दी साहित्य में किया गया एक उत्तम प्रयास है और इस टीका का मूल्य तब और भी बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि यह टीका सबसे पुरानी है । सम्पूर्ण टीका में एक ही पद्धति का अनुगमन किया गया है, और 'अर्थ' तथा 'अर्थ दृढ़' के द्वारा कवि की विद्वत्ता तथा काव्य-मर्मज्ञता प्रमाणित होती है ।

एक अन्य पुस्तक '**विनयप्रकास**' हमारी खोज में उपलब्ध हुई । यह पुस्तक नायक–नायिका वर्णन से संबंधित है ।[1] इस पुस्तक के लेखक हैं कविश्रेष्ठ हरिनाथ[2] जो महाराव राजा श्री सवाई विनयसिंहजी[3] के आश्रित थे । इनकी

सिखनख टीका सहित यह, है सिंगार को मूल ।
भैरूं सेषावत लिख्यौ, चतुर रहै मन फूल ।।

इस पुस्तक का नाम प्रायः 'नखसिख' लिखा गया है परन्तु इसका नाम 'सिखनख' है, और पुस्तक में वर्णन भी 'सिख' से आरम्भ कर 'नख' तक किया गया है

[1] कवि ने स्वयं लिखा है—

रच्यौ ग्रंथ इह प्रीति करि, 'विनै नरेस प्रकास' ।
वरनौ नायक नायका, कवि सुप सदन विलास ।।

[2] कवि का नाम (अनुप्रासयुक्त छंद में')

गिरिधर गोविंदनाथ गदाधर गोकुल ग्यानी ।
गोकुलेस गंभीर गरुर-गामी गुन ध्यानी ।।
गोपीवल्लभ ग्वाल बाल गन मन मदसूदन ।
माधौ मधु-रिपु मकर मुरलिधर कंस-निपूदन ।।

कविता के देखने पर विदित होता है कि काव्य-गति, शब्द-चयन, छंद-निर्माण, भावुकता, अलंकार-योजना आदि की दृष्टि से उनकी रचना उत्तम कोटि की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ बहुत बड़ा था और इसमें अनेक 'प्रकास' थे। इस पहले ही प्रकास में ३८७ छंद हैं और 'हावभाव प्रसंग' के अंतर्गत कविता की छटा दर्शनीय है। इस प्रकास के अंत में कवि ने लिखा है—

'इति श्री महाराज श्री श्री श्री··· · विनयसिंहजी प्रकासे कवि सुष सदन विलासे कवि हरनाथ कृते नाइकाद हावभाव वर्नन नाम प्रथम प्रकास'।

इसके पश्चात् 'अथ रसादिक भाव लक्षन । दोहा ।।' और बस यहीं यह सुन्दर हस्तलिखित प्रति समाप्त हो जाती है। इस प्रकार के सुन्दर और विस्तृत शास्त्रीय ग्रन्थों को अधूरी अवस्था में पाकर बड़ा दुःख होता है किन्तु संतोष इसी बात पर किया जाता है कि जो कुछ मिलता है वह तो किसी प्रकार सुरक्षित रहा। इस प्रथम प्रकाश के ही आधार पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

नायिका वर्णन—

गुनभरी गरब गुमानभरी मानभरी,
सकल सयांन भरी रूप रस रेली है।
भाग-भरी सरस सुहाग अनुराग-भरी,
प्रेम-भरी परम प्रवीन अलबेली है।।
जाहि देपि सुर नर मोहत मधुपवृंद,
कवि 'हरिनाथ' साथ दीपति सहेली है।
मैन मन मैली नैन उरझेली जैसी,
कंचन की बेली ग्रैसी नाइका नवेली है।।

करुनाकर करुना अयन, करहु कृपा वारिज वदन।
हरिनाथ ध्यान दृढ़ आनि तुअ, केसी कंदन नद नंदन।।

३ महाराव राजा श्री विनयसिंहजी का राज्यकाल संवत् १८७१ से १९१४ वि० तक रहा। अलवर की राजकीय पुस्तकशाला की स्थापना इन्हीं के द्वारा कराई गई, जिसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग इस निबंध में किया गया है। पुस्तकशाला नाम की संस्था तो समाप्त हो गई किन्तु उसमें संगृहीत हस्तलिखित प्रतियां कुछ अलवर के म्यूजियम में हैं और कुछ वर्तमान अलवर नरेश के निजी पुस्तकालय में। इनके द्वारा ही 'विनय विलास' नाम का महल बनवाया गया जिसमें आज कल 'राजऋषि कॉलेज' लगता है। ये बड़े विद्याव्यसनी तथा संग्रही थे, और अलवर में इनकी कला-प्रियता के बहुत से नमूने देखे जा सकते हैं।

नायक के २४० भेद बताये हैं—

पति उपपति वैसुक कहो, नायक तीनि विचारि ।
अनुकूल दछिन धृष्ट सठ, चारि चारि अनुहारि ॥ ३×४ = १२

सखा जैन वृष तुरंग गुन, सब मैं व्यापत आन । १२×५ = ६०
सांठ होत या रीति सौं, भाषत सुकवि पछान ॥

अभिमानी त्यागी छली, भव्व भान सब होत । ६०×४ = २४०
द्वै सै चालिस जोरि कै, बरनत सुकवि उदोत ॥

नायिका के ११५२० भेद बताये हैं—

सुकियादिक सब नाइका, हाव भाव सविलास ।
कवि हरिनाथ विचारि कै, वरनी विनय प्रकास ॥
भाव विभावानुभाव अरु, संचारी सुषसाज ।
थाई सात्विक आदि है, जानि लेहु महाराज ॥ ३८४
चौरासी अरु तीन सै, तिगुनी कर रस देस । ३८४×३ = ११५२
ग्यारह सै बावन भई, सुनियें विनय नरेस ॥

उत्तिम मघ्यम अधम मिति, दिव्यादिक पहिचान ।
करौ दसगुनी तासुकी, कविकुल कहत बषान ॥ ११५२×१० = ११५२०

ग्यारहै सहस रु पांचसौ, बीस भई यै रीत ।
सुनिए विनय नरेस यह, भाषत सुकवि प्रतीत ॥

प्रौढ़ा विप्रलब्धा का वर्णन देखिए—

फूले फूले फूलन के गहने गुहाई घने ,
फूलन की माल सुषजाल हाल पहिरी ।
रतन - जटित टीको नीको मन भामती को ,
जीको हीको लीको नीको लागै छवि गहिरी ॥

'कवि हरनाथ' आई रति के महल बीच
देषि के संकेत सुनो दूनो दुष दहि री ।
भौंचकी बकीसी जकी लकी-सी छकीसी अति
अकपकी भई बावरी सी बहिरी ॥

रूपगर्विता का भाषण सुनिए—

मेरे नैन हरि मीन मृग वनवास कीन्हों ,
केहरी को कोल कुठि गयो लषि कटि तट ।
देषि गत गवन मराल गजराज दोऊ ,
अति अकुलानि कुलिलानि कंज पद दट ॥

कोइल कलापी कूक कोकिल कुमति भई
वानी सुखदानी 'हरिनाथ' सो मधुर रट ।
आजि हौं गई ही अली जमुना भरन घट
गुंज्झि आए मोर वंसीवट के निकट तट ।।

प्रेमगर्विता—

भूपन न धारौ प्रेम नेमउ न पारौ तऊ
स्यामरे सलौने जू के नैनन बसी रहौ ।

सामान्या कलहंतरिता—

छायो नंदलाल कर लीन्हें गुंज माल भटू
बदन विसाल सुष जाल हाल पेषौ मैं ।
जोरि जोरि दीठि रस रासि प्रेम पगि पगि
लगि लगि बाल चतुराई नेम लेषौ मैं ।।

कवि हरिनाथ मनुहारि कै मनाइ हारी
मानों ना मनाए तै हठीली हठ पेषौं मैं ।
परे मन सोचन सकोचन करते अब,
गए जब लाल तब कहै चहै देषौं मैं ।।

संगी-दसा का कवित्त—

बैठी रंगमहल लुनाई भरी लाडली सौ
सीसा कै महल सेज सुमन गुलाब की ।
पानदान पीकदान अतर गुलाबदान
लीन्हे मन भूषन जराउ जेब छाव की ।।
कवि हरिनाथ साथ रंभा सी रुचिर सषी
चंदमुषी चतुर चलाई चित चाव की ।
आव की न दाव की पादकी परषि देषौ
भाव मै न आवै छवि आव महताब की ।।

ये कवि महोदय छविनाथजी द्वारा दीक्षित किये गए थे—

दीक्षित कवि छविनाथ के, कवि हरनाथ विचारि ।
ग्रंथ रचौ कवि सुष सदन, भाषा रस निरधारि ।।

यह एक बड़ा सुखद प्रसंग है कि इनके एक 'प्रकास' के पाने पर भी पुस्तक का निर्माण-काल, १८८८ वि०,[1] मिल गया है। साथ ही विनयसिंहजी का राज्य-

---

[1] संवत् वसु वसु वसु ससी चैत्र पक्ष बुधवार ।
वरनो विनय प्रकास में समुझो मती उदार ।।
यह किंचित आश्चर्य का विषय है कि एक प्रकास के अंत में ही संवत् दे दिया गया है। हस्तलिखित प्रतिमें १८८९ संवत् दिया गया है। संभवतः यह इस प्रति को लिखने का समय है।

काल सं० १८७१-१९१४ था अतएव पुस्तक के निर्माण-काल में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता। इसमें संदेह नहीं कि इन महानुभाव की भाषा बहुत मजी हुई है और कविता में बड़ा सरस प्रवाह है। अनेक प्रकरणों पर जो परिभाषा तथा उदाहरण दिये हैं वे परम्परागत हैं, कोई विशेष प्रतिभासंपन्न प्रणाली दृष्टि-गत नहीं होती।

अन्यत्र वर्णन के अनुसार यह स्पष्ट है कि महाराजा बलवंतसिंह[1] के समय में काव्य-संबंधी बहुत कार्य हुआ। रीति-काव्य की ओर भी इनके समय के कवियों ने ध्यान दिया और कुछ मौलिक रचनाएँ हमारी खोज में उपलब्ध हुई हैं—

१. अलंकार मंजरी	—	कवि राम कृत	सं. १८९७
२. छंद सार	—	कवि राम कृत	
३. श्रृंगार तिलक	—	'वृजचंद'	सं. १८९५
४. व्रजेन्द्र विनोद	—	मोतीराम	सं. १८८५
५. रस कल्लोल	—	जुगल कवि	
६. सिखनख	—	रसानन्द	सं. १८९३
७. व्रजेन्द्र विलास	—	रसानन्द	सं. १८९५

१. अलंकार मंजरी— इसमें २८ पत्र हैं और श्री सवाई बलवंतसिंहजी के लिए लिखी गई है।[2] अलंकार मंजरी के अंतर्गत अलंकारों की संख्या काफी है। एक-दो उदाहरण देखिए—

१. अप्रस्तुति प्रसंसा (अप्रस्तुत प्रशंसा)—

जहं वरणें कवि और कूं, बात और पै डारि।
तहां कहत हैं सुकवि नर, अप्रस्तुति लंकार॥
यथा— ना वरसे घरसै वृथा रे, घंन क्यों चहु ओर।
तरसै जग हरस्यौ फिरै, तू सठ निपट कठोर॥

अन्यच्च कवित्त—

भूल्यौ फिरै चतुर नरेसन को भ्रम पाय,
आज नृप ताइ के बिलासी बासी प्रौन हैं।

---

[1] बलवंतसिंहजी का राज्य-काल १८८२-१९०९ वि० माना जाता है। इनके पिता बलदेवसिंहजी तो स्वयं कवि थे और अनेक कवि उनके दरबार में आश्रय पाते थे। बलदेवसिंहजी का राज्य-काल केवल तीन वर्ष रहा था।

[2] 'इति श्री महाराजाधिराज श्री सवाई बलवंतसिंह हेतवे राम कवि विरचिते अलंकार मंजरी समाप्तं मिती माघ वदी १२ संवत् १८९७ वि०'।

दान कूं विचारि कै निहारि या समै कौ रूप ,
भूप न रहे हैं लषि लीजै राज सों न हैं ।।
भनत रमेस बिन त्यागे या दरिद्र देस ,
होत न नरेस संग छांड बिन भौन हैं ।
एरे जर जौहरी जवाहर दिषावै कहा ,
परष करैया लघु गाम इहां कौन है ।।

यह रमेश नाम के किसी अन्य कवि का उदाहरण है ।

२. मीलित—

भेद लष्यौ नहिं जाय सुकवि जहां साद्रस्य तें ।
मिलत न जान्यौं जाय अलंकार लंकार विद ।।
यथा— लाल कंचुकी बाल कैं हिय में गई मिलाय ।
अंग लाली में लाल जू लाली लषी न जाय ।।

पुस्तक के संबंध में कहा गया है—

शशि कुल मंडल मंडलीक बलवंतसिंघ[1] हित ।
अलंकारमंजरी[2] करी कवि राम[3] जथा मति ।।

इस पुस्तक के पढ़ने का फल—

जो गुनि तें यह पढ़ै बढ़ै, तिहि की मति जानों।
अलंकार विद होय, होय जिन संस पठानों ।।
मानों प्रवान यह में सदा, मुदा होय चित दीजिए ।
कीनों कवित्त चहै मित्र जों, तें अब बिलम न कीजिए ।।

२. छंदसार— यह पुस्तक भी इन्हीं राम कवि द्वारा महाराज बलवंतसिंहजी के लिए लिखी गई है । इसका निर्माणकाल भी संभवतः अलंकार मंजरी के आस-पास रहा होगा । पुस्तक के अंत में पुस्तक, आश्रयदाता और कवि के नाम दिए गए हैं—

'इति श्री छंदसारे श्री मन्महाराज श्री सवाई ब्रजेन्द्र बलवंतसिंह हेतवें राम कवि विरचिते मात्रा प्रस्तारादि वर्णनों नाम षष्ठमो सर्गः ।

छंदसार समाप्तोयं ।'

---

[1] 'यदुकुल चंद्रवंशी' भरतपुर के राजाओं के लिए प्रयुक्त होता है । बलवंतसिंह 'चंद्रकुल मंडल मंडलीक' कहे गए हैं । वैसे ये जाट राजा थे ।

[2] पुस्तक का नाम ।

[3] रचयिता का नाम ।

इस पुस्तक में ६ सर्ग हैं—

प्रथम — नृपतिवंसवर्णन,
द्वितीय — संज्ञानिबंधनोनामद्वितीय सर्गः,
तृतीय — वर्णवृत्तिनिरूपण,
चतुर्थ — मात्रावृत्तिनिरूपण,
पंचम — वर्णप्रस्तारादिनिरूपण,
षष्टम — मात्राप्रस्तारादिनिरूपण।

इस प्रकार के सर्गों में विभाजन को देख कर बहुत संतोष होता है कि पुस्तक में बड़े ढंग से सारी संबंधित बातें एकत्रित कर ली गई हैं। पहला सर्ग तो नृपति के वंश से संबंधित है, किन्तु अन्य पांच सर्गों में 'छंद' का विश्लेषण किया है। लक्षण उदाहरण बहुत करीने से दिए हैं। दो उदाहरण देखें—

१. मालिनी– नगण दुइ बनावौ, फेरि मो लै मिलाओ।
यगण यग मला को, पाद योंही धराओ॥
पद पद यम देकें, च्यारि हू चर्ण होई।
कवि जन इमि जानौ, मालिनी छंद सोई॥

२. दोहा– पूर्व उत्तर तेरह कला, पर ग्यारह करि ठांनि।
तेरह ग्यारह राषि कै, दोहा छंद बषानि॥

इन दो उदाहरणों से दो-तीन बातें विदित होती हैं—

अ. लक्षण और उदाहरण एक ही छंद द्वारा दे दिया गया है; मालिनी देखिए। दो नगण फिर मगण पुनः यगण-यगण अर्थात् 'न न म य य'

आ. परन्तु छंद के अर्थ में कुछ विशेष सार्थकता या चमत्कार नहीं है केवल कामचलाऊ प्रतीत होता है।

इ. लक्षण कुछ अधूरे हैं। दोहे का लक्षण पूरा नहीं है। अंत में क्या होना या न होना चाहिए इसका कोई वर्णन नहीं है। केवल मात्राओं की संख्या ही बताई गई है।

इतिहास की दृष्टि से पहला सर्ग भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कवि ने अनेक पीढ़ियों का वर्णन लिख दिया है, जैसे कि यह किसी 'जागा' की वही हो।

पहले कृष्ण, गणेश, सरस्वती, शिव और कवियों की स्तुति की है—

तिन पुरुषन के वंस में, प्रगटे श्री महाराज।
तिन को कुल वरनत अवै, रामलाल कविराज।[1]

---

[1] कवि का पूरा नाम 'रामलाल' था।

नृप बृजेस के देस कौ, बासी है द्विजराम।
.... ॥
ताकर पुर हरिपुर सदृश, अति…मतिवंत।[1]
तहां राज राजत सदा, बंठ्यो नृप बलवंत ॥

कवि ने बताया है कि सिनसिनी गांव में सिसिनवार वीर जाट रहते थे। इनके आदि पुरुष मकन्न थे और फिर वंश-परम्परा इस प्रकार चली—

मकन्न, पृथ्वी, पृथ्वीराज, सुदराज, मह्र, षांन, व्रजराज, भावसिंह, बदनेस, सुजान, जवाहर, रणजीत, बलदेव, बलवंत[2]।

यह सम्पूर्ण पुस्तक ७८ पत्रों की है जिसमें से २४ पत्र प्रथम सर्ग में लिए गए हैं। इस सर्ग में राजा की वंशावली, उसके नगर का वर्णन, किला, फौज, परिवार, साथी, दरबार आदि का वर्णन है। इस पुस्तक से उस समय की अनेक बातों की जानकारी होती है। दो-एक वर्णन देखें। व्रजेस के शहर का वर्णन—

अब व्रजेस के सहर की, सौभा वरनी न जाय।
मानों तन रितुराज धरि, बसत भरतपुर आय ॥

किले का वर्णन—

पुर के चारहुं ओर कौ, राजत कोट उतंग।
ताहि विलोकत अरिन कौं, होत मान मन भंग ॥

नाम भी बहुत बताए हैं। राजा के सेनापति का नाम गोवर्द्धन बताया गया है।[3] साथ ही तलवार, घोड़े, हाथी आदि का वर्णन है।

पुस्तक के शेष ५४ पृष्ठों में छंदों की व्याख्या, उनके लक्षण तथा उदाहरणों सहित, की गई है।

३ शृंगारतिलक– इसके रचयिता व्रजचंद हैं। इस पुस्तक का आधार कालिदास का शृंगारतिलक है। कवि स्वयं कहता है—

पंडित कविन मत्त देषि कवि कलिदास,
ढुंढि ढुंढि लाय सब ग्रंथन कौ सार है।
तरुनी प्रवीनन के भेद बहु भांति जानि,
फेरि प्रगटायो यह सूक्षम अपार है ॥

---

[1] कवि ब्राह्मण था और बलवंतसिंह के राज्य का ही निवासी था। संभवतः कवि भरतपुर में ही रहता था जिसे वह विष्णुलोक के सदृश बता रहा है।

[2] इसके पश्चात् इस प्रकार—
बलवंत–जसवंतसिंह–रामसिंह–कृष्णसिंह–व्रजेंद्रसिंह (वर्तमान भरतपुराधीश)।

[3] 'श्री व्रजपति कौ चमूपति गोवंद्धन अति वीर।'

श्रीमन व्रजेंद्र महाराज वलवंतसिंघ ,
जिनकी कृपा कौ लहि रसविस्तार है।
पंकज वरन सम राधिका चरन ध्याय।
कीनौ व्रजचंद ग्रन्थ तिलकसिंगार है ॥

यह पुस्तक बलवंतसिंहजी के लिए बनाई है।[1] पुस्तक-निर्माण का समय संवत् १८९५ है।[2] यह कालिदास के शृंगारतिलक का 'भाषा रूप' है, जैसा कवि का कहना है—

'रच्यौ सुमति अनुसार यह, भाषातिलक सिंगार।
ज्यौ कहूं भूल्यौ होय तौ, लीजौ सुकवि सुधारि ॥'

पुस्तक के अंत में लिखा है—

'इति श्री मन्नमहाराज व्रजेंद्र बलवंतसिंह हेतवे व्रजचंद विरचिते शृंगारतिलक सम्पूर्णम्। संवत् १८९५ में मिती माघ कृष्णा १३ रविवासरे लिप्य कृतं मित्र रामबकस भरतपुर मध्ये राज्ये श्री वलवंतसिंहजी'। यह तिथि पुस्तक को लिपिबद्ध करने की है।

उनकी कविता का एक उदाहरण—

नील अरिविंदन के नैन जुग रोषें चारु ,
कोकनद ही कौ भले आंनन सु लीनौ है।
कुंद की कलीन रचि दंत की बनाइ पंक्त ,
पल्लव नवीनन कौ अधर नवीनौ है ॥
भनि व्रजचंद त्यौही चिबुक गुलाब कीनी ,
चंपक के दलन कौ अंग अंग कीनौ है।
सुंदर सु तैरौ चित विधिना निलजी ने ही,
पाहन तें कठिन सु कैसै रचि दीनौ है ॥

४. **व्रजेंद्रविनोद**— मोतीराम द्वारा लिखित।[3] यह पुस्तक प्रधानतः नायिका

---

[1] साजि भरथपुर नगर में, श्री बलवंत उदार।
तिनके हित व्रजचंद ने, कीनौ ग्रंथ तयार ॥

[2] ठारै से पच्यांनमें, आश्विन मास प्रवीन।
शुक्ल पक्ष दसमी विजय, भयौ सु ग्रंथ नवीन ॥

[3] यह पुस्तक भी बलवंतसिंह जी के लिए लिखी गई—
'इति श्री मन्नमहाराज व्रजेंद्र बलवंतसिहजी बहादुरस्य विनोदार्थे मोतीराम सुकवि विरचिते व्रजेंद्रविनोदे नायकभेदनिरूपने षष्टोल्लासः।'
यद्यपि कवि ने एक स्थान पर इसे 'कृष्णार्पण' भी किया है—
'बरन्यौ जुगल किसोर हित, वृंदा विपिन बिहार।
रीझिदान दीजै अभय, अपनी भक्ति अपार ॥'

भद पर है, जैसा इसके ६ उल्लासों से प्रगट है—

१. स्र ंगार रस निरूपणं,
२. स्वभाव नायका वर्नंनं,
३. परकीया भेद निरूपनं,
४. नायका वर्नंनं,
५. वियोग स्र ंगार दिसा वर्नंनं, तथा
६. नायक भेद निरूपनं।

अध्याय-विभाजन में 'नायक भेद' का केवल एक उल्लास दिया गया है। वैसे भी रीतिकाव्य के अंतर्गत जो गौरव और महत्त्व 'नायका' को प्रदान किया गया है वह बेचारे 'नायक' को कहाँ ? यह पुस्तक महाराज बलवंतसिंह के समय में रीति-काव्य पर लिखी सबसे प्रथम पुस्तक प्रतीत होती है, जैसा इसमें दिए गए ग्रन्थ-निर्माण-काल से प्रकट होता है—

ठारै सै रु पिच्यासिया, संवत यो पहिचानि।
फाग सुदी पांचै रवी, कीनौ ग्रंथ वषांनि।।
(१८८५ वि०)

सामान्या का लक्षण और उदाहरण देखें—

लक्षण

जो तिय परपुरषन भजै, निहचै धन के काज।
सो सामान्या नायका, वरनत है कविराज।।

उदाहरण

सुषद सरोज सुमननि सौ सवारी सेज,
अतर गुलाबनि सौ राषी तर करि कैं।
चौमुषे चिराक चारु चहूँ ओर जोरि दीनैं,
घोरि दीनैं घनैं अगमद मोद भरि कै।
भूषन बसन रुचि पचि के सुधारे अंग,
परे तन कपूर पांन दांन दीने धरिकै।
लाल हिय लागति हुलासिन सौ वालहाल,
विमल विसाल लीनी मोतीमाल हरि कै।।

मुदिता का लक्षण और उदाहरण —

लक्षण

वंछै पर पुरुषनि जुतिय, देषै सुनै निदांन।
सकल सुकवि जन कहत हैं, मुदिता ताहि बखान।।

उदाहरण

रंच सुनि खबर उरोज उमगन लागे,
कंचुकी के कठिन कसन दरकत हैं।
सुषद सुठार भरे अमर प्रभा कै मार,
हियें पर मौतिनु के हार ररकत है।
मोतीराम उदित सरदचंद आनंन तें,
चंहु ओर रूप के प्रकास सरकत हैं।
फिरति पुशाल आज लाल मिलवें को आली,
वाल के विसाल भुज जाल फरकत हैं।।　　इति मुदिता।

एक और उदाहरण—

चिरियां चहूंधा चारु चरचा करन लागी,
जागे अरुनोदय की किरण अमंद है।
सोक तजि तजि कोकप्रिय नियरी सी होत,
लोक में प्रकास भयौ फूले अरविंद हैं।।
मोती परभात भये आये अरसात गात,
भले दरसात लाल जावके के विंद है।
भूली छरछदें अवलोकि नंदनदै नैन,
नीरहि झरति परी और कछु फंद हैं।।

इस पुस्तक को पढ़ने के उपरान्त नीचे लिखी धारणाएं होती हैं—

१. इनके ग्रन्थ की अनेक विशेषताओं में प्रकृति-वर्णन भी एक है। एक उदाहरण देखिए—

गहगहे गहर गुलाब के समाज फूले,
पाय रितुराज सुषसाज निपटे रहें।
कलित भई हैं वन सघन सुषद वेलि,
महमहे सौरभ समूह उपटे रहैं।
मोतीराम मलयज मिलित अमंद गंध,
मंद मंद मारुत के झूका झपटे रहे।
मंजुल मृदुल मालतीनि मधुमत महा,
मोद मन मुदित मलिंद लिपटे रहैं।।

२. यद्यपि इस पुस्तक में तो राज्यवंश का वर्णन नहीं मिलता, किन्तु यह दोहा अवश्य ही मिलता है—

श्री ब्रजेंद्र की वंस सव, वरन्यौ तजि उरपेद।
अव वरनौ शृंगार रस, सकल नायका भेद।।

इस दोहे के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संभवतः इस कवि ने

किसी अन्य स्थान पर राज्यवंश का वर्णन भी किया होगा। ५६ पत्र में लिखी इस हस्तलिखित पुस्तक में तो यह वर्णन नहीं है। हो सकता है कि इससे कुछ ही दिनों पूर्व लिखी किसी अन्य पुस्तक में यह वर्णन हो। बहुत खोज करने पर भी वह पुस्तक नहीं मिल सकी।

३. इस पुस्तक का नाम 'व्रजेंद्रविनोद' है और कवि ने इसे 'बलवंतसिंह बहादुरस्य विनोदार्थे' लिखा है। फिर भी कवि की आन्तरिक वृत्ति का आभास 'वरन्यौ जुगल किसोर हित' से लग जाता है।

४. यह पुस्तक प्रधानतः 'नायका' संबंधो है और नायिका का कोई भी निरूपण शृंगार रस के बिना सार्थक नहीं हो सकता, इस बात को ध्यान में रखते हुए कवि ने सबसे पहले शृंगाररस का निरूपण किया और इसके पश्चात् नायिका की व्याख्या को गई तथा उसके भेद-प्रभेदों का वर्णन किया गया। विषय को पूर्ण बनाने की दृष्टि से अन्तिम उल्लास में 'नायक-भेद' भी दे दिया गया है।

५. पुस्तक में प्राप्त कविता उच्च कोटि की है। अनुप्रास आदि शब्दालंकारों के प्रति उनकी रुचि होना तो उस समय की प्रवृत्ति के अनुसार था, किन्तु इस पुस्तक में अर्थालंकारों का प्रयोग भी बहुत सुन्दर रूप में हुआ है, और प्रकृति-वर्णन कवि की व्यक्तिगत उत्कृष्टता है।

५. **रस कल्लोल**— जुगल कवि कृत। दुर्भाग्य से यह पुस्तक अधूरी ही मिली है। इस मिलने वाले अंश में २१ पत्र मात्र हैं और संख्या १५ का छंद भी न जाने क्यों छोड़ दिया गया है। ५३ छंदों में वर्णित इस 'रस कल्लोल' के केवल प्रथम तरंग का ही दर्शन हो सका। इस तरंग में 'स्थायी भाव' का वर्णन है। दूसरी तरंग के लिए कवि ने विषय की दृष्टि से 'विभाव' वर्णन की बात लिखी है—

कीनो प्रथम तरंग में, थाई भाव विचार।
पुनि विभाव वरनन करौं, दुतिय तरंग निहारि॥

किन्तु यह तरंग हमारे देखने में न आ सकी, न जाने किस अनंत उदधि में विलीन हो गई है। इन दो तरंगों की बात जान कर यह आभास होता है कि कवि ने इस पुस्तक में 'रस' का सुन्दर निरूपण भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी, आदि के अंतर्गत किया होगा।[1] यह पुस्तक उस समय लिखी गई जब बलवंतसिंह केवल राजकुमार थे और राज्य के अधिपति उनके पिता बलदेवसिंहजी थे। इस

---

[1] हमें पता लगा था कि इस पुस्तक की पूरी प्रति भरतपुर के किसी पन्ना नामक चपरासी के पास है, किन्तु बहुत प्रयास करने पर भी वह प्रति प्राप्त नहीं हो सकी।

आधार पर इस पुस्तक का आरम्भ संवत् १८८२ से पहले मानना चाहिये।[1] इसमें नवों रसों का वर्णन था। इसका प्रमाण पुस्तक की भूमिका तथा उसके नामसे मिलता है।[2]

इस पुस्तक की समाप्ति होने तक राज्य का अधिकार बलवन्तसिंहजी के हाथ में आ गया। तरंग के समाप्त होते-होते कवि को लिखना पड़ा—

' त श्री मन्महाराजाधिराज राजेंद्र शिरोमणि यदुकुलावतंस श्री बलवंतसिंह हेतवे लक्ष्मीनारायण सुकवि सुत जुगल विरचतायां साहित्यसार रसतरंगिन्यानि रस कल्लोल नाम ग्रंथे स्थाई भाव निरूपण नाम प्रथम तरंगः ।

इसके अतिरिक्त निम्न लिखित कवित्त भी देखें—

× × × ×

कोई एक संत सीलवंत देषि आरत कौं,
देहि सब रोम रोम ह्वै करि प्रसन्न चेंन।
याहू तें अनंत जग जाचक अजाची किये,
जुगल भनत भली नृप बलवंत दैंन॥

गणेश, सरस्वती आदि की स्तुति करने के उपरान्त कवि ने सर्वप्रथम स्थायी लया। भाव का वर्णन दर्शनीय है—

रस अनुकूल विचार जो, भाव नाम जिहि होई।
कहत अन्यथा भाव तें, जग विकार कवि लोई॥
सो विकार दौ भांति कौ, अंतर अरु सारीर।
अंतर हू द्वै विधि कह्यौ, स्थाई व्यभिचारीर॥
रह्यौ भेद सारीर इक, ताकौ भेव वषानि।
सबै प्रगट दीसत रहैं, सात्विक भावहि जानि॥
सौ यह स्थाई भाव, आठ विधि कौ कह्यौ।
कविजन लेउ विचारि, भरत मत मैं कह्यौ॥[3]

---

[1] व्रजचंद श्री बलदेवसिंह जु सुजस जग जाकौ छयौ।
बलवंत बुद्धि बिलंद ताके पुत्र है गुणनिधि भयौ।
तिहि हेत रस कल्लोल नवरस कौ निरूपण लै सच्यौ।
लक्ष्मीनारायण सुकवि के सुत जुगल लघुमति तै रच्यौ॥

[2] रस कल्लोल के अतिरिक्त जुगल कवि को लिखा एक ग्रंथ हमें और मिला जिसका नाम है 'करुण पच्चीसा'। विवरण अन्यत्र देखें।

[3] कवि ने प्रमुख आचार्य भरत के मत का प्रतिपादन किया है---

अ. कवि का कहना है—'भरत मत मैं कह्यौ'

आ. इन्होंने रसों की संख्या ८ ही मानी है जो भरत मत के अनुसार है, वैसे सामान्यतः ९ रस माने जाते हैं।

भरत के अनुसार ये आठों स्थायी इस प्रकार हैं—

अथ अष्ट स्थाई निरूपणम्—

रति हांसी अरु शोक क्रोध उत्साह है ।
१ २ ३ ४ ५
भय निंदा विस्मय जु काव्य के थाह है ॥
६ ७ ८

शान्तरस का स्थायी 'निर्वेद' नहीं दिया गया है ।

हास्य के स्थायी 'हास' का वर्णन देखें—

हास-लक्षण

कौतूहल करि वचन औ, वेस होइ विपरीति ।
मन विकार परमित जहां, सोई हास प्रतीति ॥

उदाहरण

आवत ही पुर के ढिग बालक, छाए चहूं दिसि देषि सुरेस को ।
देखि कें भूप के मौंन कह्यो, मिलि दासिनि आयो है वावन भेस कौ ॥
सो सुनि वानी कुतूहल तें, बलिराज तिया कहै देहु री रासकौं ।
ह्वे मुसिक्यावन वावन सो जग, पालक रक्षक भूप व्रजेसकौ ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने 'रस प्रदीपका'[1] नामक पुस्तक का अध्ययन किया था और इससे प्रभावित भी हुए थे—

करुणा रस की लक्ष्य यह, यातें कहीं सुनाइ ।
रसप्रदीपका में कह्यौ, सो अब देंहु दिषाइ ॥

सवैया— कोमल बोल विलाप कौ कीनें है, जीवित नाथ तू जीवै कहीं पर ।
ता रति नें उठि कें ढिगं आइ, महा विलपाइ लै हा यह औसर ।
सोक समुद्र में बूढ़ि गई लई, दीन दसा कही नाथ हत्यौ हर ।
कोप की ज्वाल में भस्म भयौ, पुरसाकृत काम विलोक्यौ मही पर ॥

सरी तरंग के केवल १५ ही छंद मिले ।

---

[1] रसप्रदीपका नाम का कोई ग्रंथ नहीं मिलता। 'रसदीपिका' नामक एक ग्रन्थ मिलता है। संभव है कवि द्वारा जो ग्रंथ रसप्रदीपका देखा गया था वह अब लुप्त है ।

६. **सिखनख**— रसानन्द[1] द्वारा लिखित।

ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार होता है—

"श्री राधा कृष्णो जयति—

दोहा

रस आनद मय रूप की, नैंनन साधि—समाधि।
जग बाधा निस्तार हित, राधा चरन अराधि।।

छप्पै

आदि शक्ति सब विश्व जननि इच्छ्या वपु धारत।
महिमां अगम पुकारि निगम कीरति विस्तारत।।
गिरा उमा रति रमा लिये रुष सन्मुष विनवत।
सीस धारि रज अज गिरीस पद पंकज विनवत।।
तिहि सुधा प्रेम छकि विवस ह्वै रस आनद जस गाईयै।
रस बोध करनि बाधा—हरनि राधासरन मनाईयै।।

अथ शृंगार रसाधार सिष नष निरूप्यते—

नष सिष लौं पिय मन रमी, परिपूरन शृंगार।
सिष नष राधा कुवरि की, वरनौं मति अनुसार।।

---

[1] रसानन्द जाट थे। 'रस-आनन्द' अथवा 'रसानन्द' इनका उपनाम प्रतीत होता है। घनानंद, और आनंद घन की आनन्द स्वरूप माला में ये तीसरी कड़ी हैं। इनकी कविता उच्च कोटि की है। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें भट्ट लिखा है परन्तु कवि के निवासस्थान भरतपुर में की गई खोज के आधार पर ये 'जाट' सिद्ध हुए हैं। ये अलीगढ़ जिले की इंगलास तहसील के बेसवा गांव से भरतपुर आये थे। इनके निम्नलिखित ग्रंथ मुझे मिले हैं—

१. गंगाभूतल आगमन कथा। २. सिखनख। ३. ब्रजेन्द्रविलास। ४. रसानन्दघन। ५. संग्रामरत्नाकर। ६. हितकत्पद्रुम (ब्रिटिश म्यूजिम लंदन में प्राप्त हुआ। इस कृति पर मेरा स्वतंत्र लेख 'हितकल्पद्रुम' अनुशीलन में देखें।)

इनके लिखे और कई ग्रन्थ बताये जाते हैं, जैसे—

१. बारहमासी, २. संग्रामकलाधर, ३. भोजप्रकास, ४. रसानन्दविलास, (भक्ति ग्रंथ) ५. षोडसशृंगारवर्णन।

ऐसे प्रतिभाशाली कवि का हिंदी साहित्य के इतिहास में नाम तक न होना बड़े आश्चर्य का विषय है। प्राप्त ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि रसानन्द एक उच्च कोटि के कवि, आचार्य, भक्त तथा नीतिज्ञ थे।

सबसे पहले केशों का निरूपण है—

"जलद जाल अलिमाल मणि, मरकत औ तम तार।
नील चमर मषतूल सम, विथुरे सुथरे बार॥

कवित्त

छवि की मसाल पै छुट्यो है तम जाल कैधों,
सोम की छटा पै घन घटा तोमसाजही।
कैधौं रस आनदसरूप के अनूप तंत,
कैधौं त्रिजै चमर बिलौकें सौति लाजही॥
सौधें सने चिलकै चुनें वा सटकारे कारे,
मित्त चित्त चिकनावें हित के समाज ही।
अटल अली के फंद बंधन कौ जी के जैसे,
चम्पा वरनी के नीके चिकुर विराजही॥

दोहा

बारन-गवनी रावरे, बारन ठई अनित्त।
छुटें छुटावें साहसहि, बांधे बांधे चित्त॥"

काव्य की दृष्टि से भी भाषा की स्वच्छता, कल्पना की उड़ान, वर्णन की स्निग्धता और स्वाभाविकता तथा छंद को पूर्णता और शब्दचयन की प्रतिभा भावों को अत्यन्त प्रभावोत्पादक रूप में स्पष्ट कर रहे हैं।[1] इस पुस्तक में निम्नांकित प्रकरण हैं[2]—

केस, पाटी, बेनी, मांग, भाल, बेंदी, गुलाल की आड़, भ्रकुटी, पलक, नैत्र, चितवनि, तारिका, कज्जल, नासिका, नथ, अधर, दंसनन, रसना, बानी, हास, कपोल, कपोल की गाड़, कपोल को तिल, श्रवन, ठोडी, चिबुकचिन्ह, मुख, सर्वमुख, ग्रीवा, भुज, कर, कुच, कंचुकी, उदर रोमराजि सहित, त्रवली, नाभि, कटि, नितंब, जंघा, चरन, जावकएडी, अंगुरी नषत, नूपुर, पाइल, गति, भूषन, गुराई, जरकसी सारी और दामन।

---

[1] सिखनख का वर्णन बड़ा विस्तृत है और अंग प्रति अंग को लेकर सुंदर छंदों की रचना की गई है। कवि का निरीक्षण बहुत ही सूक्ष्म और सरस है। शरीर के किसी भी आकर्षक अंग को कवि भूला नहीं है।

[2] इस कवि के अन्य ग्रंथों का विवरण, जो यथास्थान मिलेगा, इस बात को प्रमाणित करने में सहायक होगा कि इस एक ही कवि में कवि और आचार्य संबंधी अनेक बातें पूर्णता के साथ विद्यमान हैं।

१५५ छंदों में अंग से संबंधित ४८ प्रसंगों का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् ५० छंदों में 'षोडस शृंगार' का वर्णन भी मिलता है। सिखनख का सम्पूर्ण वर्णन १६१ छंदों में समाप्त हुआ है। इस पुस्तक का समय कवि ने स्वयं ही इस प्रकार दिया है—

३ ९ ८ १
राम निद्धि वसु चंद जुत, कहि संवत सुखदानि।
व्रष कृष्णा तेरसि सुदिन, पूरन ग्रंथ प्रमानि ॥[1]

कवि केवल काव्यकार ही नहीं था वरन् उत्कृष्ट कोटि का लिपिकार भी था। 'सिखनख' नाम का यह ग्रन्थ स्वयं 'रसआनंद' द्वारा ही लिपिबद्ध किया गया था—

'सिद्ध श्री जदुवंसावतंस श्री मन्नमहाराजधिराज श्री व्रजेंद्रबलवंतसिंघ विनोदार्थे रस आनंद विरचते सिखनख संपूर्ण। शुभमस्तु ॥

मिती ज्येष्ठ कृष्णा १३ संवत् १८९३ हस्ताक्षर रस आनन्द के भर्थपुर मध्ये ॥'

कवि की कविता का एक उदाहरण देखने से इनकी भाषा और शैली का आभास मिलता है—

राजै आज गादी पै वृजेंद्र बलवंतसिंघ,
शादी यौ अनंत निस वासर बहाल होहु।
नजरि नयाज पेशकश लै नरेसन तें,
दूजें देस देसन तें आमद रसालु होहु ॥
भनि रस आनंद प्रताप व्यंकटेश[2] के तें,
लेस पूरे पुन्यन को उदै ततकाल होहु।
जगमग माल होहु विक्रम विसाल होहु,
मित्र पुशहाल होहु बैरी पाइमाल होहु ॥

७. **व्रजेंद्र विलास**— रचयिता रस आनंद। ग्रंथ की समाप्ति १८९५

ठारै सै पच्च्यानवै, शुक्रवार उनमानि।
अक्षय त्रितिया माधवी, ग्रंथ समाप्ति बखानि ॥

यह एक उत्तम ग्रन्थ है और इसमें ३६४ छंद हैं। इस पुस्तक की पत्रसंख्या ११९ है। अंत में एक कवित्त द्वारा प्रार्थना की गई है। दुर्भाग्य से इस हस्त-लिखित प्रति की अवस्था कुछ अच्छी नहीं है। वैसे पुस्तक पूरी है।

---

[1] रामो दाशरथी रामो भृगुवंशो समुद्भव। (३ राम)

[2] 'वेंकटेश' वाले लक्ष्मणजी राजाओं के इष्टदेव थे।

सर्वप्रथम कवि ने नंदनन्दन ब्रजचंद की प्रार्थना की है, फिर गणपति की, और इसके पश्चात् बलवन्तसिंहजी के राज्य का वर्णन किया है—

गुर गणपति गिरिजा सुमिरि, बंदि चरन गिरिराज।
श्री ब्रजेंद्र बलवंत को, बरनो राज समाज॥

राजसमाज का वर्णन देखने योग्य है।[1] राजा की कीर्ति, गज, सांडिया, आतंक, सभा, आदि के वर्णनोपरान्त कवि अपने ग्रंथ का प्रथम विलास समाप्त करता है।[2]

सबसे पहले पिंगल का प्रकरण लिया है क्योंकि 'छंदसार' के अनुसार इनका भी यही कहना है—

पिंगल मत समझे बिना, छंद रचन को ग्यांन।
होत न याते प्रथम ही, पिंगल करत वषांन॥

इस पुस्तक में ७ विलास हैं।[3]

१. विलास — प्रयोजन
२. विलास — पिंगल कर्मनिरूपण
३. विलास — मात्रा
४. विलास — वर्णवृत्त छंदनिरूपण
५. विलास — व्यंगि शब्दार्थनिरूपण
६. विलास — काव्यदोषनिरूपण
७. विलास — काव्य गुण अनुप्रास चित्र

ऐसा विदित होता है कि इस पुस्तक में एक विलास और होगा क्योंकि अनुप्रास चित्र आदि के पश्चात् उस समय की पद्धति के अनुसार अलंकार प्रकरण होना स्वाभाविक ही है। यह प्रकरण काफी बड़ा होना चाहिए, किन्तु अपनी

---

[1] चारि हू बरन निजनिज सुधर्म। निरबिघ्न आचरत क्रिया कर्म॥
जहं बहु अवास सुख के निवास। तिन ऊपर कंचन कलस भास॥
फहराति धुजा लगि आसमान। जनु विजय भुजा नभ भासमान॥
जह चौक चारु चौरे फराक। तहं कटत नचत हय बर चलाक॥

[2] राजा के लिये लिखा है—चौदह विद्या में निपुन, चौंसठि कला प्रवीन।
पै निस द्यौस रहै सदा, कविता के रस लीन॥

[3] दूसरे और तीसरे विलास के २५ से ३२ तक के पत्र पुस्तक में नहीं हैं, इनके स्थान पर सादे कागज लगा दिये गए हैं।

खोज में मैं उसे पाने में असमर्थ रहा। पुस्तक के कुछ उदाहरण—

प्रथम कवित लछ्छिन कहौं, बहुरि प्रयोजन मित्र।
तातैं पाछै बरनि हौ, कारन भेद विचित्र॥

अथ काव्य लक्षिनं

सगुन पदारथ दोष विहीन, ईषद भूषन कवि क्रम लीन।
पुनि पिंगल मतते अविरुद्ध, सौ कविता पहिचानव शुद्ध॥

काव्य कौ प्रयोजन—

जस विनोद वित राजश्री, अति मंगल की दांनि।
सो कविता पहिचानिये, चतुराई की खानि॥
(इनैं आदि दै और हू जानिये)[1]

काव्य कौ कारण—

शव्दार्थ जिनते विधि नीकी, कवित होति भावती जीकी।
ताकौ प्रघट गूढ जु अरथ्थ, जानौ चित्त कारन समरथ्थ॥
(सो वह चित्त कौ कारण त्रिविध होता है)[1]

इस पुस्तक के एक दोहे से ऐसा विदित होता है कि इन्होंने नायक-नायिका भेद पर भी कोई पुस्तक लिखी थी जिसका नाम 'व्रजेंद्रप्रकास' था।[2]

हमारे अनुसंधान में जो महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित पुस्तकें रीतिकाल से संबंधित मिलीं, उनका साधारण विवरण ऊपर दिया जा चुका है। इन पुस्तकों में कुछ तो पूर्ण हैं और कुछ अपूर्ण, किन्तु रीति संबंधी सभी प्रसंगों का निरूपण सम्यक् रूप में मिलता है। इन पुस्तकों के प्रधान विषय ये हैं—

१. रस, २. ध्वनि, तथा अन्य काव्य-सम्प्रदायों संबंधी प्रसंग, ३. अलंकार, ४. छंद, ५. नायक-नायिका भेद, ६. सिखनख, ७. राग-रागनियों का वर्णन ८. षोडस शृंगार, आदि।

वहुत सी हस्तलिखित पुस्तकों की कई-कई प्रतियां उपलब्ध हुईं जैसे 'रस पीयूषनिधि', 'सिखनख'। इनमें से 'सिखनख' की तो टीका मात्र पर ही हमारा अधिकार है क्योंकि टीका ही मत्स्य के मनीराम द्विज द्वारा की गई है। 'सिखनख' इसके मूल लेखक बलभद्र मिश्र तो ओरछा के रहने वाले थे। दूसरे ग्रन्थ की जो प्रतियां प्राप्त हुईं उनमें से कई तो अपूर्ण हैं किन्तु जो ३-४ प्रतियां पूर्ण

---

[1] यत्र तत्र गद्य—टिप्पणियां भी दी हुई हैं, किन्तु बहुत सूक्ष्म।
[2] 'लछ्छिन तिय अरु पुरुष के' हाव भाव सविलास।
प्रथम वृजेंद्र प्रकास में, ते सब किये प्रकास॥'

मिलीं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि मूल ग्रन्थ और उसकी प्रतिलिपियों में बहुत थोड़ा अंतर रहा होगा। इसमें संदेह नहीं कि जो रीतिकालीन परंपरा हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में प्रचलित हो रही थी उसी से मत्स्य प्रदेश भी प्रभावित हुआ और अनेक नवीन रीति-ग्रंथों का निर्माण होता रहा। साथ ही काव्य-विवेचन-संबंधी प्रामाणिक ग्रंथों को लिपिबद्ध किये जाने का कार्य भी चलता रहा। इस विषय में राजाओं की काफी रुचि थी और उनके दरबारों में रीतिकारों का आदर होता था।

उस समय वैसे तो अनेक छंद तथा अलंकार प्रचलित थे पर अधिक प्रयोग में आने वाले छंदों की संख्या सीमित थी। निरूपण ग्रन्थों में छंद और अलंकारों की संख्या बहुत बढ़ चुकी थी, परन्तु प्रचलन में नहीं। कविवर सोमनाथ ने अलंकार और छंद के अनेक भेदों का वर्णन किया है, और इसी प्रकार बहुत से अन्य कवियों ने भी। हिन्दी के प्रसिद्ध रीतिकारों की तरह यहाँ के कवि भी प्रचलित तथा अप्रचलित सभी अलंकारों एवं छंदों का सोदाहरण निरूपण करते थे। व्याख्या-प्रणाली इतनी उत्कृष्ट प्रतीत नहीं होती, किन्तु हिन्दी-प्रदेश में जो प्रणाली चल रही थी उससे यह किसी प्रकार कम भी नहीं। भोगीलाल और रसानंद ने हृदयग्राही प्रणाली का अनुगमन किया, और राम तथा ब्रजचंद आदि कवि सरल प्रणाली के पक्षपाती थे।

मत्स्य में जो साहित्य-शास्त्री और सिद्धान्त-निरूपणकर्ता हुए उनकी कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं—

१. रीति के अंतर्गत उपर्युक्त सभी विषयों का निरूपण किया गया, यद्यपि शृंगार के बाहुल्य से इस रस को 'राजत्व' प्रदान किया गया किन्तु काव्य के अन्य अंगों की भी उपेक्षा नहीं हुई, जैसे शृंगारेत्तर रस, ध्वनि, गुण, दोष आदि।

२. आचार्य मम्मट से प्रभावित कवि नायक-नायिका-भेद की ओर अधिक नहीं झुके। उन्होंने उत्तम, मध्यम तथा अधम काव्य का वर्णन उसी प्रकार किया जैसे काव्य-प्रकाश में है। हिन्दी के अन्य रीतिग्रन्थ नायक-नायिका-भेद तथा शृंगार के अन्य उपादानों से अधिक प्रभावित हैं किन्तु मत्स्य प्रदेश में निर्मित रीति-ग्रन्थों में सिद्धान्त का सम्यक् प्रतिपादन विशेष रूप से किया गया है।

३. काव्य-निरूपण में प्रायः सरल शैली का अनुगमन किया गया है,

यह प्रवृत्ति दो रूपों में लक्षित होती है—

अ. लक्षण देने में,

आ. उदाहरण देते समय ।

काव्य के विभिन्न अंगों को समझाते समय सरलता का ध्यान रखा गया है, उदाहरण भी स्पष्ट और सरल दिये गये हैं । मत्स्य में कठिन कविता नहीं मिलती । इसका अभिप्राय यह नहीं कि सरल कविता करने वाले इन कवियों की काव्यकला निम्नकोटि की है । इस अध्याय में स्थान-स्थान पर दिए गये उदाहरण इस बात के पुष्ट प्रमाण हैं कि काव्य-गुणों की दृष्टि से कविता का सामान्य स्तर उच्च ही रहा । सम्भव है राजाओं के लिए लिखे जाने से इन ग्रंथों में सरलता पर विशेष ध्यान दिया गया हो ।

४. प्रसंगों को समझाते समय मत्स्य के आचार्यों द्वारा गद्य का प्रयोग भी यथास्थान किया गया है । उस समय को देखते हुए लक्षण-ग्रंथों में प्राप्त इस गद्य को हमें सरल और सुगम ही मानना पड़ेगा । गद्य का प्रयोग करते समय आचार्यों का ध्यान बोलचाल की सामान्य भाषा की ओर ही रहा । कविता में तो विशिष्ट पदरचना की ओर कुछ ध्यान अवश्य रहता था किन्तु गद्य साधारण होता था । सम्भव है उन लोगों का अनुमान हो कि विशिष्ट पदरचना के लिए केवल पद्य ही उपयुक्त साधन है, गद्य तो बोलचाल की भाषा है । गद्य के प्रयोग से विषय को समझने में बहुत आसानी हो गई है ।

५. यहां के कवियों द्वारा काव्य के विभिन्न अंगों की व्याख्या करते समय ब्रजभाषा गद्य का ही प्रयोग हुआ । अलवर में जो भाषा प्रयुक्त हुई वह भी ब्रज ही है । इसका प्रधान कारण उस समय ब्रजभाषा का महत्त्व तथा कवियों का ब्रजप्रदेश से आना था । जैसे संस्कृत देववाणी होने के कारण सर्वत्र ग्रहण की गई, हो सकता है, उसी प्रकार साहित्य की भाषा के रूप में ब्रजभाषा को ही स्वीकार किया गया, फिर चाहे वह गद्य में प्रयुक्त की गई अथवा पद्य में ।

इसमें संदेह नहीं कि रीतिकाल में मत्स्यप्रदेश के कवियों का अपना एक गौरवपूर्ण स्थान है । सोमनाथ के सम्बन्ध में तो हिन्दीजगत को अब संदेह ही नहीं रहा क्योंकि उनका रसपीयूषनिधि नामक ग्रंथ अब हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि बन गया है । यहां और भी अनेक कवि ऐसे हुए जो अपना व्यक्तिगत उच्च स्थान रखते हैं । कलानिधि, रसानन्द, भोगीलाल और हरिनाथ ऐसे नाम नहीं जिन्हें हिन्दी के रीतिकाल का वर्णन करते समय भुलाया जा सके । कला-

निधि और रसानन्द तो विशिष्ट काव्य-शास्त्री कहे जाने के अधिकारी हैं और हिन्दी के उच्च रीतिकारों की श्रेणी में इन्हें रखा जा सकता है।

इस प्रदेश में अनेक कवि आते जाते रहते थे क्योंकि उन्हें मत्स्य के राजाओं के दरबार में आश्रय और सम्मान मिलता था। कुछ कवि तो यहीं बस गये और कुछ समय-समय पर आते रहे। भरतपुर के प्रसिद्ध कवि कलानिधि, जो बूंदी के बुधसिंह और उसके पश्चात् भोगीलाल के पास रह चुके थे भरतपुर में आकर बस गए। इसी प्रकार बख्तावरसिंह के दरबार में रहने वाले भोगीलाल भी राजा का यश सुन कर ही उनके पास आए थे। समय-समय पर आने वाले कवियों में देव, कृष्णदास और नवीन के नाम प्रमुख हैं। यहां के काव्य पर भी इन प्रसिद्ध कवियों का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। कहा जाता है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध महाकवि देव भरतपुर तथा अलवर राज्यों में पधारे थे।[1] इनके सम्बन्ध में कई किंवदंतियां प्रचलित हैं। नवीन भी इधर आये। इनका नेहनिदान एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है और मत्स्य में बहुत प्रचलित था क्योंकि इसकी कई प्रतियां हमें मिलीं, जिनमें से एक को लिपिबद्ध करने वाले स्वयं रसानन्द थे। इस पुस्तक के अन्त में लिखा है—

आसाढ़ वद २ संवत् १८९६। हस्ताक्षर रस आनंद के भरतपुर मध्य।
श्री राधायै नमः।

---

[1] भरतपुर के प्रसिद्ध साहित्यसेवी स्व० गोकुलचन्द्र दीक्षित के पास देव के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ थे। उन्हीं ने भरतपुर का इतिहास 'व्रजेन्द्र वंशभास्कर' लिखा तथा देव के ग्रन्थ 'शृंगारविलासिनी' का संपादन किया। बहुत दिनों तक यह कहा जाता था कि देव का 'सुजान विनोद' महाराजा सुजानसिंह के लिये लिखा गया था क्योंकि सुजानसिंहजी के समय में ही देव कवि डीग पधारे थे। राजा ने उनसे कविता सुनाने को भी कहा था और साथ ही राजा की इच्छा थी कि वे देवजी का कुछ आर्थिक सत्कार भी करें। न जाने क्यों देव ने कुछ नहीं सुनाया और कहा 'सरस्वती आज्ञा नहीं देती है।' जब बार-बार कहा गया तो देव ने कुछ वैराग्य संबधी छंद सुनाये जो 'देवशतक' में सम्मिलित बताये जाते हैं। जब आपस में नोंक-झोंक बहुत बढ़ गई तो देव ने निम्न दोहा कहा था—

पीताम्बर फाट्यौ भलो, साजो भलो न टाट।
राजा भये तो का भयौ, रह्यौ जाट को जाट॥

कहा जाता है कि देव अलवर भी पधारे थे किन्तु इस प्रसंग में समय मेल नहीं खाता। देव का काल १८ वीं शताब्दी का पूर्व काल है और अलवर के प्रथम राजा प्रतापसिंह का समय सं. १८१३ से १८४८ वि० है। हो सकता है जब ये लोग अलवर से दूर कुसुमरा में रहते थे तब देवजी वहां पधारे हों। इनके वंशज भोगीलाल तो अलवर के राज्यकवि थे ही।

श्री जी श्री ।

देव, नवीन[1] आदि के अतिरिक्त और भी कवि आते रहे होंगे ।

इस प्रकार मत्स्य प्रदेश में रीति-काव्य-धारा पुष्कल रूप में प्रवाहित होती रही और अन्य स्थानों के अनेक कवि और विद्वान भी इसमें अपने स्रोत मिलाते रहे ।

[1] इनकी एक अन्य पुस्तक 'प्रबोध रस सुधासार', संवत् १८८१ की लिखी हुई, और मिली है ।

अध्याय ३

शृंगार-काव्य

शृंगार काव्य के अंतर्गत कई प्रकार की कविता आ सकती है, जैसे—

१. लक्षण ग्रन्थों में दिए गए उदाहरण,

२. कृष्ण की लीलाओं में संयोग तथा विप्रलंभ शृंगार,

३. राजाओं के विलास का वर्णन,

४. ऋतु-वर्णन में नायिका आदि का वर्णन,

५. 'नखसिख' या 'सिखनख' में शृंगारी कविता,

६. विवाह आदि प्रसंगों में,

७. राधामंगल, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल आदि अवसरों पर इस प्रकार के वर्णन,

८. शृंगार रस के विश्लेषण हेतु लिखी कविता में कामुक चेष्टाओं के वर्णन,

९. होरी, आदि।

'नखसिख' संबंधी कविता हमने रीतिकाव्य के अंतर्गत ले ली थी क्योंकि उसका प्रतिपादन एक प्रचलित प्रणाली के अनुसार होता था और जो पद्धति बंध गई थी उसमें कोई हेर-फेर नहीं होता था, अन्यथा यह प्रसंग और इससे संबंधित कविता भी शृंगार के अन्दर आती है। रीतिकाव्य और शृंगार में अंतर करना हिन्दी वालों के लिये थोड़ा कठिन है, क्योंकि जो साहित्य मिलता है उसके आधार पर विभाजन-रेखा खींचना संभव नहीं हो पाता। सिद्धान्त रूप में कवि जिस समय तक लक्षण देता है अथवा किसी बात को समझाता है वह रीतिकार है — आचार्य है, किन्तु जब उदाहरण देते समय सहृदयता का अनुगमन करता है तो शृंगारी कवि बन जाता है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य का तृतीयकाल 'शृंगारकाल' अथवा 'रीतिकाल' कहलाता है। हमने ये दोनों बातें अलग कर दी हैं क्योंकि मत्स्य-साहित्य का अध्ययन करते समय हमें यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई दी कि इस प्रान्त के कवियों में आचार्यत्त्व के गुण अधिक हैं और शृंगारी रचना की ओर उनका इतना ध्यान नहीं।

मत्स्य-प्रान्त में राधाकृष्ण की भक्ति का बहुत प्रचार था अतएव यहां राधा और कृष्ण से संबंधित बहुत सा शृंगारी साहित्य एकत्रित हो गया। दान-लीला

श्रीकृष्ण लीला, उद्धव पचीसी, रास पंचाध्यायी आदि प्रकरण मत्स्य में शृंगार के प्रतिष्ठापक बने। यह साहित्य संयोग तथा विप्रलंभ दोनों प्रकार का था। शृंगार का विश्लेषण करने पर हमें इस निष्कर्ष पर आना पड़ता है कि संपूर्ण नायक-नायिका-भेद भी शृंगार काव्य के अंतर्गत आ जाने चाहिये क्योंकि उनमें शृंगार के अतिरिक्त और है भी क्या ? किन्तु हमने इसको भी नखसिख के अनुसार रीति के अंतर्गत ही लिया है, कारण वही है कि इस प्रसंग में भी कवियों ने कुछ बंधी हुई प्रचलित प्रणालियों का अनुगमन मात्र किया है और उसे लक्षण तथा उदाहरण के रूप में लिखा गया है।

राजस्थान के साहित्य में राजाओं का व्यक्तिगत विलास भी इस काव्य के अंतर्गत आ सकता है। यद्यपि हमारी खोज में इस प्रकार का साहित्य बहुत कम मिल सका फिर भी हमारा अनुमान है कि उस समय की परिस्थिति को देखते हुए ऐसा साहित्य भी प्रचुर मात्रा में होना चाहिये। हो सकता है यह साहित्य राजाओं के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित होने के कारण प्रचार न पा सका हो। राजाओं द्वारा अनेक त्यौहार मनाये जाते थे, जैसे होली। दरबार में मुसाहिबों के साथ होली खेलने के उपरान्त महलों में भी होली होती थी और कोई कारण नहीं कि कवि की विदग्ध आंखें वहां न पहुँची हों, किन्तु इस प्रकार का साहित्य बहुत ही कम मिल पाया है।

हमारी खोज में कवित्त सवैया आदि प्रचलित शृंगारी छन्दों के अतिरिक्त कुछ पद भी ऐसे मिले हैं जिनका संबंध शृंगार से है। इन प्रसंगों में लक्ष्मण तथा उर्मिला के शृंगार से संबंधित पद बहुत मूल्यवान हैं। इस संबंध में दृष्टव्य है कि—

१. लक्ष्मणजी भरतपुर राज्य के इष्टदेव रहे हैं।

२. राधा-कृष्ण संबंधी शृंगारिक पद तो मिलते हैं किन्तु सीता और राम संबंधी पद बहुत कम हैं। उर्मिला-लक्ष्मण संबंधी पद तो हिन्दी में एक मूल्यवान तथा विचित्र प्रसंग होगा किन्तु मत्स्य प्रदेश के कवियों ने लक्ष्मण जैसे त्यागी को भी नायक बना डाला है। इस संबंध में एक विचारणीय बात यह है कि श्री मैथिलीशरणजी के द्वारा इस प्रसंग को लेने पर हिन्दी-संसार में उसे मौलिक उद्‌भावना बताया गया था किन्तु मत्स्य प्रदेश में डेढ़ सो वर्ष पूर्व इस प्रकार की सरस कविता हो चुकी थी। यह तो नहीं कहा जा सकता कि श्री गुप्तजी को स्फूर्ति प्रदान करने में यह साहित्य कुछ उपयोगी सिद्ध हुआ होगा, लेकिन यह बात माननी पड़ेगी कि हमारी खोज के आधार पर उनका यह शृंगारी प्रसंग एक दम नया नहीं।

३. यह रचना पदों में है, और पदों के ऊपर रागों के नाम आदि दिए हुए हैं।

यह तो एक मानी हुई बात है कि उस समय के दूषित और कामुक वातावरण के कारण देशी राजाओं की मनोवृत्ति शृंगारी रचनाओं की ओर थी। मत्स्य प्रदेश का साहित्य इस धारणा का अपवाद सा मालूम होता है। खोज में मिली हुई पुस्तकों के आधार पर कहा जा सकता है कि मत्स्य के राजा इस सामयिक प्रवृत्ति से इतने प्रेरित नहीं थे। मत्स्य में जहां रीति के ग्रन्थ हैं वहां नीति के भी हैं, भक्ति संबंधी साहित्य है तो राजनीति भी है, धर्म-प्रकरण हैं तो युद्ध-कला विशारदता भी है, रामायण और महाभारत के अनुवाद हैं तो भागवत के भाषा-पारायण भी हैं, मंगलों की रचना हुई तो साथ ही अन्य प्राचीन कहानियां भी कही गई हैं। इस प्रकार मत्स्य के विविध विषय-विभूषित साहित्य में कामुक विलास का वह रूप देखने में नहीं आता जिसने हिन्दी के उस काल का साहित्य गर्हित बना दिया। यहां के राजाओं का मन भी इस ओर कैसे लग पाता जब कि—

१. यहां के राजा अपनी ही झंझटों में फंसे रहते थे, उनके लिये न विलास का अवसर था और न उसकी उपयुक्तता ही,

२. विशेषत: जाट राजा युद्ध के लिये उत्सुक रहते थे, उन्हें दरबारों में चुपचाप बैठकर शृंगारी कविता सुनने की न फुरसत थी और न शौक,

३. गोसांईजी, गोवर्द्धनजी आदि के प्रभाव से राधाकृष्ण की ओर पूज्यभाव अधिक था, उनके विलासमय रूप की ओर झुकाव नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि यहां के साहित्य में एक ओर तो नायक-नायिका का अधिक प्रचार न होने पाया दूसरी ओर कवित्त सवैया आदि छंदों में शृंगारी कविता भी कम लिखी गई। वैसे खाली मौकों पर दरबारी कवि कुछ शृंगारी रचना अवश्य सुनाते रहे होंगे क्योंकि वातावरण से सब कोई प्रभावित होते हैं फिर सर्वत्रगामी कवि ही कैसे पीछे रहता, चाहे वह जाटों के दरबार में हो अथवा युद्ध-शिवरों में।

व्रज में रास-लीलाएं बहुत समय से होती आ रही हैं, और इन लीलाओं के आधार पर शृंगार संबंधी कविता भी हुई—राधा-कृष्ण अथवा गोपी-कृष्ण के नाम से शृंगारी कविता में बहुत वृद्धि हुई। अलवर नरेश बख्तावरसिंह की लिखी "कृष्ण-लीला" में राधा और कृष्ण दोनों का अलग-अलग नखसिख तथा उनका मिलन और क्रीड़ा आदि प्रसंग दिए गए हैं। राधा-कृष्ण का यह नायक

और नायिका-स्वरूप मत्स्य के साहित्य में बहुत कम पाया जाता है। लीलाएं अधिक मिलीं जैसे कृष्ण की होरी अथवा फाग लीला, रसोई लीला, दान-लीला, माखन चोरी लीला, लीलहारी लीला, वैद्य लीला, चीरहरण लीला। राजदरबारों में भी ऐसी पुस्तकों की पहुँच थी।

रस की दृष्टि से इस संपूर्ण काल को शृंगार काल कहा जाता है क्योंकि इस युग में शृंगार रस की कविताएं ही प्रधानरूप में लिखी गईं। मत्स्य का शृंगार साहित्य अश्लील नहीं हो पाया क्योंकि यहां के राजाओं की रुचि विलासी नहीं थी। शुक्लजी के शब्दों में जब अन्य "राजाओं के लिये कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था" तब यहां मत्स्य में राजाओं के सामने अनेक समस्याएं रहती थीं जिनमें सबसे बड़ी समस्या थी घर के दस्यु का दमन, राज्य की स्थिति को सुदृढ़ बनाना तथा शत्रु के आक्रमण से बचने की क्षमता रखना। भरतपुर तथा अलवर के राजाओं ने अंग्रेज, मराठे और मुसलमानों से युद्ध ठाने थे। अपने राज्य की वृद्धि का भी उन्हें बराबर ध्यान रहता था। जवाहरसिंहजी के राज्यकाल में तो भरतपुर की सीमा बहुत बढ़ गई थी और यह सब राजा के व्यक्तिगत उत्साह और संगठन के द्वारा हुआ था। ज़वाहरसिंहजो से बलदेवसिंहजी के समय तक वातावरण इसी प्रकार का रहा था।[1]

इस प्रान्त में पाई गई कुछ पुस्तकों का विवरण दिया जाता है जिनके आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए कुछ विशेष बातें कही जा सकेंगी।

करौली के राजकुमार रतनपाल भैया का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में आता है। "प्रेम रतनागर" नाम की पुस्तक बहुत प्रसिद्ध रही है इसके रचयिता देवीदास हैं, रतनपालजी उनके आश्रयदाता थे।[2]
प्रस्तावना के रूप में कवि ने लिखा है—

सदा करौरी देषीये, इन्द्रपुरी कौ रूप।
श्री भैया रतनेस कौं, सेवत बड़ेड़े भूप॥

---

[1] लार्ड लेक के साथ भरतपुर के युद्ध इसी समय में हुए, और अलवर में भी मेवों के आंदोलन लगभग इसी समय के आस-पास दबाये गये।

[2] इस पुस्तक का निर्माणकाल इस प्रकार है—

संवत सत्रह से बरस, बयालीस रु ध्यार।
अश्वनि सुदि तेरस कियौ, ग्रंथ विचारि विचारि॥

वैसे से तो यह ग्रंथ हमारे काल में आता भी नहीं परन्तु करौली राज्य का यह ग्रंथ एक परम्परा विशेष की ओर संकेत करता है, जिसका अनुगमन "नेह निदान" आदि ग्रन्थों में हुआ।

तहां आयौ देवी सुकवि दैंन असीस उदार,
रतनपाल भैया कीयौ तासों प्यार अपार।
एक दिना अैसै कह्यौ साहिब सहेत सनेह,
हम कौं पूरन प्रेम कौ रतनागर करि देह।

और फिर इस ग्रंथ की रचना हुई।[1]

इस पुस्तक में ५ तरंगें हैं—

१. प्रथम तरंग—कवि, रतनपाल, पुस्तक-प्रयोजन

२. द्वितीय तरंग—"प्रेम कौ निरूप"। प्रेम के अनेक स्वरूपों का वर्णन किया गया है।

३. तृतीय तरंग—अनेक उदाहरण दिये गये हैं, चकोर, मीन, हंस, आदि के प्रेम को चित्रित किया गया है।

४. चतुर्थ तरंग—अन्य उदाहरण।

५. पंचम तरंग—इस तरंग में भी बहुत से उदाहरण दिए गए हैं।

शृंगार की अपेक्षा इसे 'प्रेम काव्य' कहना अधिक संगत होगा। इसमें स्त्री और पुरुष का काम विषयक प्रेम नहीं वरन् प्रेम के सच्चे स्वरूप का वर्णन है—

प्रेम कै न जाति पांति प्रेम कै न रात दिन
प्रेम कै न जंत्र तंत्र प्रेम कौ न नेम है,
प्रेम कै न रंग रूप प्रेम कै न रंक भूप
प्रेम कै तो एक रूप लोह अरु हेम है।
प्रेम कै न सुख दुख और प्रेम कै न हान लाभ
प्रेम कै न जीव तातैं तीनू काल छेम है,
देवीदास[2] देषीयौ विचारि चारों जुग मांझ
अैसो यह पूरन प्रकास नाम प्रेम है॥

---

[1] रतनपाल भैया कवियों के बड़े प्रेमी थे। कहा गया है—

श्री भैया रतनेस जू जबहि लेइ धन हाथ,
अरि कविकुल-दारिद दोउ भजत येक ही साथ।

रतनपाल भैया करौली नरेश धर्मपाल के पुत्र थे—

"धर्मपाल सागर तें उपजो"

[2] देवीदास आगरा नगर में ताजगंज के रहने वाले थे। आश्रयदाता की खोज में करौली जा निकले, क्योंकि उन्होंने सुना था—

रजधानी जदुपतनि की नगर करौरी राजु,
तहां पंडित अरु कविन कौं राजत सकल समाजु।

फिर तो करौली के राजकुमार रतनपाल ने इनके साथ बहुत सुन्दर व्यवहार किया। प्रेम-व्याख्या के अतिरिक्त देवीदास ने राजनीति का भी सुन्दर विवेचन किया है।

प्रेम का बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है।

एक अन्य पुस्तक, मत्स्य के प्रसिद्ध कवि सोमनाथ द्वारा लिखित, "प्रेम-पचीसी" है। यह भी एक शुद्ध प्रेम काव्य है जिसमें प्रेम के संयोग तथा वियोग दोनों पक्ष चित्रित किये गए हैं। इस पुस्तक की एक बहुत भारी विशेषता यह है कि इसमें पंजावी का समावेश है। साहित्य में यह एक नूतन प्रयोग है और सामान्यत: हिन्दी काव्य में इस प्रकार की प्रवृत्ति देखने में नहीं आती। इस ग्रंथ की भाषा से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि कविवर सोमनाथजी पंजाबी भाषा से सुपरिचित थे किन्तु यह समझ में नहीं आता कि कवि को इस प्रकार के प्रयोग की आवश्यकता क्यों पड़ी। इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर पंजाबी वेश-भूषा से सुसज्जित काव्य का दर्शन होता है। व्रजभाषा के कवि सोमनाथ में यह प्रवृत्ति पाकर आश्चर्यमिश्रित आनंद होता है। इसका अन्य कोई समाधान न पाकर हम यही मानेंगे कि ये भी कवि का एक प्रयास था जिसमें उसे सफलता मिली। सोमनाथ ने रीति-ग्रंथ लिखे, प्रबन्ध काव्य रचे, फुटकर कविताएं की, भक्तों के चरित्र और देवताओं की कथाएं लिखीं, संस्कृत पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद किए और साथ ही हिन्दी में पंजाबी के समावेश का सुन्दर प्रयोग भी कर डाला। प्रेम पचीसी का आरम्भ इस प्रकार होता है—

"अथ सोमनाथ लिष्यते—

मंगल मूरति विघन हर सुन्दर त्रिभुवन पाल,
षेवट प्रेम समुद्र के जै जै श्री नंदलाल।
क्या कीनी तकसीर तुसाढ़ी[1] नहिं मुषरा दिषलावै है,
राति दिना विन तैंडी[2] चरचा मुजनूं[3] और न भावै हैं।
बेदरदी महवूब गिरंदे क्यों गिरंदगी करता है,
सौंमनाथ नेही सैं कैसा दिल अंदर दा[1] परदा है।
वे तुम सै महवूब गुविंदे नैंन असाडे उरझे हैं,
कौन सकै सुरझाई इनोंनै पै औरों सै सुरझे हैं।
बेदरधी पहिचानि दरध नूं[2] भला दिया तैं अरदा है,
सौंमनाथ नेही से......
जित्थें[3] पैर धरै तू ज्यानी[4] तित्थें[5] पलक बिछावां[6] मैं,
तैंडी कहैं कहानी जिसनूं[7] हंस हंस कंठ लगावां मैं।
तैंडा रूप गुविंदे मैंडे[8] नैनो नाल[9] विहरदा हैं,
सौंमनाथ नेही से......

---

[1] तुसाढ़ी, [2] तैंडी, [3] मुजनूं आदि पंजाबी प्रयोग।

[1] से [9] तक संकेतित शब्दों को देखिए एकदम पंजावी भाषा है किन्तु खूबी यह है कि इस भाषा को हिन्दी वाले अच्छी तरह से समझ सकते हैं और कोई कठिनाई नहीं होती।

दर्दवंद बेदरद कन्हैया जे पन कौं प्रति पालें हैं,
पाक नजरि पहिचानि गहगही गरु वे दरद उसालै हैं।
प्रेम पंथ में डगदै जानी अब क्यों हिये अहरदा है,
सौंमनाथ नेही से......

प्रेम पचीसी हिन्दी साहित्य में एकदम नई चीज है इस काल के अन्य कवियों में हमें पंजाबी भाषा का यह रूप नहीं मिलता। प्रेम की दृष्टि से भी यह प्रेम लौकिक नहीं है, यह तो कृष्ण के प्रति प्रेम है जैसा पुस्तक के चौबीसवें पद्य से स्पष्ट है।

तुझ विन श्री वृजचंद चंद्रिका चंदन तन हित चावै है,
रुचदे नहीं दुकूल रंग संग फूल सूल सरसावे है।
तैंडे लिये न लरदा जो भी नाहक लोग झगडदा है,
सौंमनाथ नेही सें......

और अंत में तो कवि इसे स्पष्ट रूप से "नंद किसोर निमित्त" कह देता है—

सूर पचीसा प्रेम को सुनि सुषपावै चित्त,
सौंमनाथ कवि ने रच्यो नंदकिसोर निमित्त।

इस बात का निराकरण नहीं हो पाता कि आरम्भ में पुस्तक का नाम प्रेम पचीसा कहकर अंत में सूर पचीसा क्यों कहा गया है। हो सकता है इसका संबंध कवि ने गोपी और कृष्ण विरह से जोड़ा हो और इस प्रसंग में भ्रमर गीत के नाते सूर का स्मरण कर लिया हो। कृष्ण का वर्णन भी स्थान-स्थान पर आता है। जैसे—

पचरंग पाग लटपटी तिसपै कलगी मनिगन वारी है,
कुंडिल श्रवन कमल से लोचन चंद्र बदन उजियारी है।
यौं वनि कैं व्रजचंद क्यौं नही मैंडे डगरनि करदा है,
सौंमनाथ नेही सें......
कसकत अबै हमेसा तेंडी वंक विलोकनि तिप्पी है,
ना जानूं ए अपैं कित्थैं जालम जादू सिप्पी है।
मैं तुज हत्थ विकाया मोहन हुन क्यों कान्ह अकरदा है,
सौंमनाथ नेही सें......
तुझनूं बिना निरष्यैं मोहन मुझनूं चैन न परदा है,

यह पुस्तक सिलेखाना लाइब्रेरी द्वारा प्रेषित राजकीय पुस्तकालय भरतपुर में मिली थी। इसी जिल्द में "प्रेम पचीसा" की एक अन्य हस्तलिखित प्रति भी है जिसमें "अंदर दा" के स्थान पर "अंदर विच" लिखा हुआ है। अन्य बातों में अंतर नहीं है। पुस्तक के देखने से निम्नलिखित बातों का पता लगता है—

१. यह कविता विशद, स्वच्छ एवं सुन्दर पद-योजना युक्त है,
२. पुस्तक के पढ़ने से कविता की अबाधगति लक्षित होती है,
३. भाषा तो हिन्दी ही है किन्तु पंजाबी मिश्रित है—विशेषत: सर्वनाम तथा कारक चिन्ह,
४. दूसरी प्रति में इसकी भाषा को "रेखता" कहा गया है जिसका अभिप्राय खडी बोली के उर्दू रूप से है,
५. इस पुस्तक के आरम्भ और अंत के दो दोहे शुद्ध ब्रजभाषा में हैं, बीच के पचीस छंद पंजाबी मिश्रित हैं।

काव्य के क्षेत्र में मत्स्य के राजा भी पीछे नहीं रहे। अलवर के बख्तावरसिंह, भरतपुर के बलदेवसिंह तथा करौली के रतनपाल अच्छे कवि थे। बख्तावरसिंहजी ने "श्रीकृष्णलीला" लिखी है जिसमें भक्ति के साथ-साथ राधाकृष्ण संबंधी शृंगार, नखसिख सहित, पाया जाता है। कविता यथेष्ट अच्छी है और उस में प्रवाह भी है, पहला ही दोहा देखें—

विघन हरन मंगल करन दुरद बदन इकदंत,
परस धरन असरन सरन बुद्धि देव वरवंत।

राजा ने रचना करते समय भक्तिभाव की ओर विशेष ध्यान रखा है जैसा निम्न दोहे से विदित होता है—

राधाकृष्ण सुदृष्टि सौं मम उर भक्ति प्रकास,
गढ़ लीला बन दान की वर्णों कृष्ण विलास।

वास्तव में यह लीला "श्रीकृष्ण दान-लीला" है केवल "श्रीकृष्ण लीला" नहीं जैसा हस्तलिखित प्रति में लिखा गया है।

पुस्तक में लेखक के नाम आदि का भी उल्लेख है और साथ ही पुस्तक लिखने के उद्देश्य का भी।[1] पुस्तक के आरम्भ में कवि अपनी नम्रता और शील का परिचय देता है—

---

[1] कवि का नाम तथा निवास—

राधाकृष्ण उपास है बषतावर निज नाम,
नरू वंस कछवाह कुल माचाड़ी शुभ ग्राम।

उपास्यदेव – राधाकृष्ण
नाम – बख्तावर
वंश – नरूवंश, कुल – कछवाह
ग्राम – माचाड़ी

काव्य रीति समुझौं नहीं है मेरी मति मंद,
मैं तो कछु जानौं नहीं तुम जानौं गोविंद।

पुस्तक से ऐसा प्रतीत होता है कि राजा ने अपने दरबारी कवि या अन्य किसी श्रेष्ठ कवि की बात मानकर इस पुस्तक की रचना की—

कवि इंदर आज्ञा दई कीजै कृष्ण विलास,
आज्ञा वषत प्रमान करि लीनी निज उर धार।[1]

राधा के 'नषसिष' के अंतर्गत कुछ छंद देखें। इन छंदों में स्वच्छ भाषा, स्वाभाविक अलंकार तथा वर्णनशैली की उत्कृष्टता देखने योग्य है।[2]

चमकत चौंप चार चित चोषी।
दमकति दामिनि दुति दुइ पोषी॥
कानन कुंडल कनक कलित है।
चारु तरोना चपल चलित है॥
जग मग जूडा जोति जुगत है।
परगट पाटी प्रेम पगति हैं॥
वैनी बिमल पीठि पर राजै।
नागिन कदली पत्र विराजै॥
लोल कपोल गोल मन मोहैं।
ठोरी चिबुक चारु दुति सोहैं॥
उरविच कुच सुच रचि रुच राजैं।
कनक कंद दुति देषत लाजैं॥

वर्णन की दृष्टि से शृंगार के सभी उपादान प्रस्तुत किये गए हैं—
सखी वर्णन—

संग की सषी सबै सबै सिंगार साजि के।
अंग ओप अद्‌भुतै अनंग रंग राजिकै॥
मंद मंद मानिनी गयंद गौन गामिनी।
केलि कर्ण कामिनी चलीं मनो सुदामिनी॥

वन, वृक्ष, पंछी आदि सभी उद्दीपन-कार्य में सहायता प्रदान कर रहे हैं—

तमाल ताल आल और साल भांति भांति हैं।
फरास बांस पास ओ पलास पांति पांति हैं॥

---

[1] संभव है "कवि इंदर" भोगीलाल ही हों क्योंकि वे राजा के पास रहते थे और उनकी कविता भी उच्च कोटि की होती थी।

[2] ये छंद "राधा कौ नषसिष शृंगार वर्णनं" के अंतर्गत हैं। इस वर्णन में भी पूज्य भावना की रक्षा निरंतर होती रही है, कहीं भी वासना का आभास नहीं मिलता। यह इस कवि की विशेषता है अन्यथा इस युग में राधाकृष्ण के नाम पर निम्नकोटि की शृंगारी कविता मिलती है।

सिंगार हार झार तू तपादरा उदार है।
सुवर्ण जूथिका जुही जुहीं सुडार डार है।

बोलें कपोत केकी कुलंग,
कोकिला कीर सारौं सुरंग।
चातक सु चाष चंडूल चार,
खगराज ब्वाल खंजन अपार।

राधा के साथ कृष्ण का नखसिख भी दिया हुआ है—

वक्स्थल दृढ़ता अति धारे। मणिक लाल भृगु लता बिहारे।।
भुज ध्वज गज सुंडन परमानैं। कोमल कर लषि कंजन जानैं।।
अंग अंग छवि वरणि न जाई। कोटिकाम दुति देखि लजाई।।

राधा के साथ उनकी सखियां, कृष्ण के साथ उनके सखा, बन का सुन्दर स्थान फिर राधा-कृष्ण का मिलन सुखदाई क्यों न होता !

गहवर वन[१] मोहन लसै तिह मग राधा आइ,
जुरी सु दृष्टिहि परसपर वषत कहत सिरनाइ।

[यहां भी लेखक का पूज्यभाव कथा के साथ है]

और फिर तो कृष्णराधा का वही चिरपरिचित प्रेममय झगड़ा—

हौ तुम कौन गोप की जाई।
बिन बूझें महवन में आई।।

दान-लीला का वर्णन वहुत सुन्दरता के साथ किया गया है और कवि ने लिखा—

दान केलि गोविंद की वरनी वषत बनाइ।
बसौ सदा राधा सहित मो उर में जदुराइ।।

इस लीला का फल भी लिखा है—

बद्रीनाथ दरस के कीने। जो फल सो यामें चित दीने।।
जो फल जगन्नाथ परसेतें। सो यह हरि लीला दरसे तें।।

कृष्ण और राधा के प्रेम-युक्त वार्तालाप का एक उदाहरण—

मोहन सुनौ कहै ब्रजनारी। हमरी बाट कहा अडवारी।।
तुम हौ दान कौन सो चाहो। सो किनि परगट हमैं लषाहो।।

"नए दान" की वातें सुनकर कृष्ण ने कहा—

नयें कहें हम कछु न लजावें। नई नई कहो बात सुनावें।।
नयो सघन बन यह निहारों। नई नई तुमसुनि चितधारो।।

---

१ 'गहवर बन' ब्रज-चौरासी-कोस में आता है।

फूल पान फल नये नयें हैं। नये सुबादर भूमि रहे हैं ॥
नई सु चपला चमकत दरसे। नई नई बूंदन घन बरसे ॥
नई सुवानी पंछी बोलें। नये नये बन करत किलोलें ॥
नई नई तुम बनि ठनि ग्राई। नई वेल तरवर पर छाई ॥
नये सुलहंगा चीर नये हैं। सव ग्राभूषण नये नये हैं ॥
नये सुफल कौं जो तुम धारो। नये नये चित नहीं विचारो ॥
कहो नये फल तुमहि चषावें। जो कछु दान नयो सो पावें ॥

ग्रब राधा द्वारा की गई 'काले रंग' की बुराई देखें—

स्याम रंग कौ को पतिग्रावे। हियै हमारे कबहु न भावें ॥
देखो स्याम सर्प हैं जेते। ग्रौगुण विषतें भरे हैं तेते ॥
कारे काग करें विधि षोटे। स्याम रंग सब ही हैं छोटे ॥

उत्तर में श्याम ग्रपने भोले भाले मुख से काले रंग की प्रशंसा करते हैं—

मुष पर स्याम दिठौना सोहै। स्याम चिवुक तिल ग्रति मन मौहे ॥
देहु दान क्यों रारि बढ़ावो। ठाढ़ी कबकी बचन बनाग्रो ॥

इसके बाद मुरली से सब को मुग्ध कर लिया और उस बन में गान, नृत्य, केलि, क्रीड़ा, रसरंग की धूम मच गई. परिणाम यह हुआ कि—

मनमोहन मोही व्रज बामा,
सरस रंग रीझी सुनि स्यामा।

ग्रौर इस प्रकार शृंगार के सुष्ठु वातावरण में दान देने ग्रौर लेने के रूप में लीला समाप्त होती है। इस पुस्तक का निर्माणकाल इस प्रकार है—

संवत युग[४] सिववदन[५] वसु[८], ससि[१] युत कातिकमास।
कृष्ण पक्ष षष्टी बुधे, पूरण दानविलास ॥

कवि ने लीला रचने का स्थान भी बताया है—

जगर मगर संपति ग्रगर सोहत नगर नगीच,
बषत रचीं लीला सु यह ग्रलवर गढ़ के बीच।
मंगल श्री गोविंद को वरन्यौ बषत प्रवीन,
टरत ग्रमंगल नितहि नित मंगल करन नवीन ॥

पुस्तक के ग्रंत में लिखा है "इति श्री कछवाह कुल नरूका रावराजा
वषतावरसिंह विरचित श्री राधाकृष्ण दानलीला वर्णनं"
"पठनार्थ दिवाणजी रामलालजी"

इस पुस्तक में निम्नांकित विशेषताएं हैं—

१. कविता का स्तर उच्च कोटि का है।

२. पुस्तक में व्रजभाषा के निखरे रूप का दर्शन होता है।

३. संपूर्ण वर्णन में शृंगार रस का प्रतिपादन बहुत ही संयत तथा पूज्य भाव से किया गया है।

४. शृंगार के सभी उपकरण नायक, नायिका, नखसिख, क्रीडा, केलि, सखा, सखी, व्यंग्य वचन आदि सुसंगत रूप में विद्यमान हैं।

५. संभव है किसी अच्छे कवि ने प्रचार की दृष्टि से यह पुस्तक राजा के नाम से चला दी हो क्योंकि इतनी सुंदर कविता का, साधारणतया, राजाओं की रचना में मिलना संभव नहीं होता फिर भी इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि यह सब बातें राजा की आज्ञा से ही हुई होंगी, क्योंकि यह तथा अन्य पुस्तकें राजकीय पुस्तकालय में ही बहुत दिनों तक रही थीं।

बख्तावरसिंहजी के पौत्र शिवदानसिंहजी[1] के शिक्षणार्थ एक पुस्तक 'शिवदान-चन्द्रिका लिखी गई, जिसके रचयिता[2] कवि मान थे[3]। पुस्तक के उद्देश्य का वर्णन करते हुए कवि ने बताया कि शिवदानसिंहजी को काव्य-ज्ञान कराना ही इस पुस्तक का उद्देश्य था। पुस्तक की भाषा सरल और निखरी हुई है—

उदित भान परताप प्रगट कूरम कुल मंडन।
कीने अरि गण लुप्त तिमिर दुर्गंन दल षंडन ।।

इस पुस्तक में बरवा छंद के माध्यम से कुछ बहुत ही सुन्दर प्रसंग हैं। नायिका की शान देखिए—

अंग अचल मुष बचना अनसिक नैन,
पुतरी की गति भीनी कीनी मैन।
अंचल चष अनियारे चंचल चाल,
कंजन भंजन खंजन गंजन बाल।

---

[1] शिवदानसिंहजी का शासन काल संवत् १९१४ से १९३१ तक रहा।

[2] इस पुस्तक की रचना कवि मान ने की थी। "इति श्री मन्महाराज कंवार श्री शिवदान-सिंहजी हित कवि मान रचित शिवदान चन्द्रिका नाम ग्रंथ समाप्त।"

[3] पुस्तक की समाप्ति का समय—

संवत नभ[0] शशि[1] निधि[9] मही[1] फागुन शुभ सुपक्ष।
दुतिया बासर भूमिसुत ग्रंथ भयो परतक्ष ।।

लिखने का आरंभ—

संमत विधु विधु[8] नभ[0] निधी[9] बहुरि गनपति[1] दंत।
चैत बुधासित अष्टमी लिषी "मान" सुनिसंत ।।

राधे मोहन दोऊ साज सुकीन,
मुकट बेनु चूनरिया केलि नवीन।[1]

बरवै छंद में मान द्वारा की गई यह रचना बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। यद्यपि बरवा छंद अवधी भाषा में प्रस्फुटित और विकसित होता है, किन्तु कवि मान ने वह चमत्कार ब्रज भाषा में कर दिखाया।

भरतपुर की खोज में कुछ रचनाएं 'चतुर' के नाम से मिलती हैं। चतुर शब्द का प्रयोग अनेक शब्दों के साथ हुआ है, जैसे चतुर मान, चतुर मोहन, चतुर नंद, चतुर पीव, चतुर सखी, चतुर सूर, चतुर छैल, चतुर रसिक आदि। कुछ लोगों का अनुमान है कि महाराज बलदेवसिंहजी स्वयं ही इस नाम से कविता किया करते थे। कहीं-कहीं 'चतुर प्रिया' शब्द भी आता है और कहा जाता है कि इस नाम से महाराज बलदेवसिंहजी की रानी अमृतकौर कविता किया करती थीं। इसमें कोई भी संदेह नहीं कि रानी अमृतकौर काव्य में अभिरुचि रखती थीं, और कई ग्रन्थ इनको समर्पित किए गए थे।

चतुर द्वारा लिखित 'तिलोचन लीला' में शृंगार संबंधी कई सुन्दर प्रसंग आते हैं।

अपने अनुसंधान में हमें इस पुस्तक की दो प्रतियां मिलीं, एक में ४८ पत्र हैं और दूसरे में ८७। दूसरी प्रति में कुछ अन्य बातें भी संगृहीत हैं। दोनों प्रतियां किसी एक ही लिपिकार की लिखी प्रतीत होती हैं। इन दोनों प्रतियों को देखने से प्रतीत होता है कि चतुर ने अनेक स्थानों से संग्रह किया और अपनी कविता भी लिखी। तिलोचन लीला में कोई विशेष शृंगारी प्रसंग तो नहीं है फिर भी शृंगार रस के छींटे अवश्य ही हैं।

चतुर ने **'पद मंगलाचरन बसंत होरी'** नाम की शृंगार रस से पूर्ण एक अन्य पुस्तक लिखी है।

यह पुस्तक भरतपुर राज्य के इष्टदेव श्री लक्ष्मणजी से सम्बन्धित

---

[1]नायका की स्वाभाविक एवं सरल आकृति से संबंधित ये बरवै बहुत उत्तम हैं।

है ।[1] पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार होता है—

'श्री गणेशाय नमः । श्री सरस्वती नमः । श्री गुरभ्यो नमः । श्री लक्ष्मणजी सहाय । अथ मंगला चरण के पद लिष्यते । राग ईमन ताल धीमो तितालो ।[2]

इस पुस्तक में इष्ट लक्ष्मणजी को ही माना गया है और उनके साथ ही तीनों भाइयों को भी महत्त्व प्रदान किया गया है । जैसे—

त्रिभुवन मोहन छवि धरे दसरथ्थ दुलारे ।
चारों चतुर के हिय ते मति हूजौ न्यारे ॥

साथ ही अनेक देवी देवताओं का वर्णन भी है । कृष्ण की होरी का एक पद देखिए—

राग विलावल ताल जलद तितालो—

नंदलाल यह ठीठ कन्हैया पिचकीन रंग मचावैं ।
बीच गैल कैं ठाढोई नाचैं बुरी बुरी गारि सुनावैं ॥
तू जु कहै चलि पनिया भरन कों उतहै जान न पावैं ।
चतुर छैल सें छलबल करिकैं विनरंग कोऊ न जावैं ॥

पुस्तक के पदों में अधिकांश पद हमें अयोध्या ही ले जाते हैं ।

राम और सीता—

राग अल्हैया आडौ चोतालौ

झूलत रंग हिडोरें दोउ मिल झूलत रंग हिडोर ।
रघुकुल नन्दन और जनक नंदनी चितवन में चित चोर ॥

---

[1] लक्ष्मणजी भरतपुर के इष्ट थे । कवि ने अन्यत्र लिखा है ।

भजी मन लक्ष्मण राजकुमार ।
सकल सुष्प दायक भक्तन कौ अभिमत के दातार ।।
तेज प्रताप पुंज एकहि जग प्रगट शेस अवतार ।
पाखंडन के द्रुम समूह कौं दावानल सु पजार ॥
चारवाक सैलन फोरन कौ इन्द्र वज्र सम त्यार ।
बोध अंधकार मेंटन कौं सूरज उदै सुदार ॥
जैनी मत मतंग मर्दिवे पंचानन बल सार ।
मायावाद भुजंग भंगहित गरुड़ कहत निर्धार ॥
विश्व शिरोमणि श्री रघुवर के जय की ध्वजा प्रकार ।
सरनागत के पाप पुंज मेंटन को गंगाधार ॥
असे प्रभु कौ सेवन सर्वत्र और व्रथा व्योहार ।
चित्त लगाय चतुर ताही तें तरि भव पारावार ॥

[2] यह स्पष्ट ही है कि 'चतुर' संगीत के मर्मज्ञ थे ।

जनकिसुता की रूप निरषि कै आनंद भरि झकझोरि।
चतुर सखी महाराज रिझावै बूका उड़ति भरि कोरि॥

अब 'लछमन छैल' देखिए[1]—

लछमन छैल फाग के माते झूलत रंग हिडोरैं प्यारी।
सरदचंद मैं कनकलता[2] मिलि मुनि जति के चित चोरीं॥
रंग के से भीने झुकि झुकि भैटें झोटन में झकझोरै प्यारी।
चतुर सखी आनंद रंग भरि कैं राजिंद पै त्रन तोरैं॥

लक्ष्मण को ऐसे रूप में देखना हिन्दी साहित्य में एक बिलक्षण बात है। साकेत में श्री मैथिलीशरण द्वारा चित्रित लक्ष्मणजी चतुर के लछमन छैल से पीछे ही पड़ जाते हैं। एक बात और है। गुप्तजी के लक्ष्मण आधुनिकता लिए हुए हैं और बातों का जमा खर्च बड़े करीने से करते हैं। उनकी पत्नी उर्मिला भी इस आधुनिकता में किसी भी प्रकार अपने पति से कम नहीं है। चतुरजी के लक्ष्मण और उर्मिला अपेक्षाकृत प्राचीनता लिए हुए हैं लेकिन केलि-क्रीडा में थोड़े आगे बढ़े हुए हैं। झूले का प्रसंग अभी-अभी देखा ही है। उन दिनों लक्ष्मणजी को एक भक्त और त्यागी राजकुमार के रूप में चित्रित किया जाता था, होरी और शृंगार से उनका क्या सरोकार, लेकिन चतुरजी ने अपनी होली के 'हुरंगे' में उनको भी ले लिया है। वे ही नहीं, इस 'हुड़दंग' से परम तपस्वी भगवान शंकर भी नहीं बचने पाये। ये देखिए शंकरजी भी होली खेल रहे हैं—

शंकर खेलत होरी। संग गिरिराज किशोरी॥
जटा जूटि सिर उपर कसिकै मुंडमाल दह तोरी।
डमरु त्रिसूल डार दोऊ करतें लै पिचकारि संजोरी॥
अबिर भरलई निज झोरी में शंकर खेलत होरी।

वैसे लक्ष्मण के प्रति उनका भक्ति और श्रद्धा से युक्त पूज्य भाव है। 'भजो मन लक्ष्मण राजकुमार'—इसका एक अच्छा उदाहरण है। बहुत से अन्य स्थानों पर भी कवि ने इसी प्रकार लिखा है—

सुष की अवधि अवधि कौं बसिबौ।
सियवर लषन भरथ रिपुहन कौं नितही दरस दरसिबौ।
सरजू तट निकुंज कुंजनि कौ विमल विलास विलसिबौ॥[3]

---

[1] छैल के रूप में लक्ष्मण का स्वरूप विशेष रूप से द्रष्टव्य है। लक्ष्मणजी की ऐसी झांकी बहुत ही कम मिलती है।

[2] सरदचंद लक्ष्मण और कनकलता उर्मिला। झूले पर दोनों के मिलकर झूलने का दृश्य और झकझोरी देखने योग्य हैं।

[3] कवि हमें एकदम अयोध्यापुरी ले जाता है, जहां सरयू प्रवाहित हो रही है। ब्रज में इस प्रकार की भावना और दृश्य-चित्रण अपना विशेष महत्व रखते हैं।

लक्ष्मण और उर्मिला संबंधी कुछ और पद—

अथ षसषाने के पद—

राग सारंग ताल धीमो तितालौ

महल सरद दोउ मिलि बैठे षस के परदा लगाये री आली ।
लक्ष्मण छैल उर्मिला रानी सरजू तीर लुभ्यायेरी आली ॥
मदनवान और फूल मोगरा पुसप गुलाव लगायेयेरी आली ।
चतुर सषी फूलन की सिज्या ओढत हैं सुख छायेरी आली ॥

लोकगीत के रूप में एक और—लक्ष्मण के प्रति

दसरथ राजकुमार सावण लूम्यौं छै जी राज ।
थे कित लूमे राजदुलारे नाहिं और ते काज ॥
धन जोवन के हो मतवारे हमैं प्रीति की लाज ।
चतुर पीव तुम हौ निरमोही हमतै नाहिन काज ॥

'पद मंगलाचरण बसंत होरी' ग्रंथ, पत्र संख्या २२८ के उपरान्त भी, अधूरा है, पता नहीं इस ग्रन्थ-रत्न में और क्या-क्या लालित्य था । राम, लक्ष्मण और अंजनिकुंवर से संबंधित एक विचित्र चित्र प्रदान करना इस पुस्तक की विशेषता है । राधा और कृष्ण सम्बन्धी पद भी इस पुस्तक में हैं किन्तु बहुत कम, और अधिक होते भी तो कोई विशेष बात नहीं थी क्योंकि राधा-कृष्ण का शृंगार तो उस समय की सर्वत्र प्रचलित पद्धति थी । लक्ष्मणजी का नाम नीचे लिखे कई कारणों से विशेष उल्लेखनीय है—

१. भरतपुर के महाराज वेंकटेश लक्ष्मणजी के शिष्य थे ।

२. भरतपुर में लक्ष्मणजी के दो मंदिर हैं: एक पुराना—श्री वेंकटेश लक्ष्मणजी का, और दूसरा—नया बाजार वाले लक्ष्मणजी का । साधारणरूप से लक्ष्मणजी के मंदिर कम ही दिखाई देते हैं ।

३. भरतपुर राज्य की पताका पर लिखा रहता है—

'श्री लक्ष्मणजी सहाय'

इस पुस्तक में खड़ी बोली के भी पद हैं—

मोहि नाहक क्यों दे गाली ।
स्यावासि स्याम मोहि गाली दे तू ताली देहै क्या यह हालि निकाली ॥
चटकैं मटकैं पटकैं अतिही हटकैं घूघटवाली ।
चतुर कान तोसो जीते तोसी लाज सकुच सब डाली ॥

शृंगार रस की एक सुन्दर झांकी कवि भोलानाथ[1] द्वारा रचित 'लीला पचीसी' नामक पुस्तक में मिलती है। इस पुस्तक में पांच प्रसंग हैं और छंदों की संख्या १०७ है। पुस्तक के अन्त में 'लीला प्रकास' नाम दिया हुआ है। दूसरे प्रसंग का एक उदाहरण—

कुंजन में द्रुम बेलि फूलि यें रहति सदा अति।
गुंजत मंजु मलिंद वृंद गति मंद सदा गति ।।
तरनि तनूजा नीर तीर कल्लोल सुहाई।
नाचत मत्त मयूर हंस वग सारस नांई ।।
वृंदावन सुखधाम प्रिया पीतम कौ छाजत।
जहां काम अभिराम वाम संग सदा विराजत ।।
समय होत रितुराज सरद की रैंनि सुहाई।
दंपति जंह विहरंत काम की फिरत दुहाई ।।
किंसुक बकुल अनार आंव द्रुम फूली वेली।
कुहू कुहू पिक पुंज मंजु गुंजत अलि केली ।।

ऐसे सुन्दर समय में जब प्रकृति अपने उद्दाम यौवन में है

गये द्वारिका आय मिले कुरपेत हेत करि।
किये मनोरथ सफल सबन के सब विधि के हरि ।।[2]

तृतीय प्रसंग में—

उपरि गयौ तब मान बालके हियतें त्यौं ही,
कही बड़े रिझवार न चहियत यह तौं त्यौं ही।
लगी घाय प्रिय हियें बेलि ज्यौं बाल बिहसिकै,
राषी गरें लगाइ हाय कहि गाढ़ें कसिकें।
लषि लषि दृगन अघात मुदित मन होत दरस अति,
इक सिंघासन लसत दोऊ दंपति अनन्य गति।

---

[1] भोलानाथ, महाराज सूरजमल के पुत्र नाहरसिंह के आश्रय में रहते थे।

सूरज लौं परत्तछ अखिल भुव मंडल लहियै।
सूरजमल्ल भुवाल अचल अचला में कहियैं ।।
नाहरसिंघ प्रसिद्ध पुत्र तिनकौ जगमाहीं।
नित कवि भोलानाथ बसत तिनकी हित छांही ।।
तिनकौ ही मत पाइ जथा मति लीला बरनी।
छूट जाय त्रयताप पढ़त औ सुनत सुकरनी ।।

[2] यह वृन्दावन की केलि-क्रीडा या 'महारास' नहीं है, प्रत्युत कुरुक्षेत्र में पुनर्मिलन के अवसर पर कृष्ण का राधा आदि से मिलना है।

चतुर्थ प्रसंग में 'रूप' देखिए

अमल कमल दल नैंन वदन ससि दसन विसद अति ।
कुंडल कलित कपोल ललिततर कुंतल हृत मति ।।
पीत बसन बनमाल गरैं मोहत मराल गति ।
अंतर नित चित वसति दृगनि ठांनी वह मूरति ।।
ठाढे बोलति कान बैठि पौढें हू कान्हहि ।
आए आंवहि कान्ह न आए क्यौंकरि ध्यानहि ।।
चहुंघा चितवत कान्ह हसत बोलत कान्हहि कहि ।
तोहि कहा अलि भयो बानि तज यह किन सुधि गहि ।।
कैसे सुधि-सिष गहौं अरी तू तो भई बौरी ।
कान्ह कान्ह फिरि कान्ह कान्ह कान्हैं मुष ढौरी ।।

अंतिम प्रसंग में

जमुना तीर तमाल माधुरी मिलत कदंवनि ।
सौरभ सुखद समीर भीर भौंरन की अंवनि ।।
सुधि कीजै किहि भांति साथ जै सुख हम लीने ।
कहौ आजु महाराज कहां वे दिन परवीने ।।
सुधि कीनें सुधि जाति सबै सुधि समझहु हितकी ।
प्रभु सौं कछु न बसाइ बिछोहौ करत न चितकी ।।

इस छोटी सी पुस्तक में

१. संयोग तथा वियोग शृंगार के उभय पक्ष का उत्तम चित्रण है ।

२. कविता सरस और उच्च कोटि की है ।

३. स्थान-स्थान पर प्रकृति-वर्णन के सुन्दर प्रसंग हैं ।

४. इस पुस्तक के लिखने की निश्चित तिथि तो नहीं मिलती, किंतु इसमें सन्देह नहीं कि इसका निर्माण महाराज सूरजमल के समय में हुआ क्योंकि इसमें उन्हीं के राज का वर्णन है और उन्हीं के पुत्र राजकुमार नाहरसिंह की आज्ञानुसार इसे लिखा गया था ।

भरतपुर में वर्तमान किले के अन्दर एक मंदिर है जो बिहारीजी का मंदिर कहा जाता है । यह मंदिर किशोरी महल के पास ही है । यहाँ के एक महन्त 'ब्रज-दूलह' नाम से कविता करते थे । इनका समय भी बलवंत काल ही है । इन्होंने स्पष्ट लिखा है—

माजी श्री अमृत कौरि भूप बलवंत जू की,
सदा राम रामानुज रक्षा करिबौ करैं ।

यह पुस्तक प्रचलित राग-रागनियों में लिखी गई है। राग ईमन देखिए—

होरी होरी कहा कहँती डोलै।
अगवारै पिछ्वार गिरारें मनमांनी तू गारी बोलै॥
छीनि लऊं तेरी डफै मुरलिया इतनी ठसक मगरूरीखोलै।
ब्रजदूलह जू छैल अनौखो हंसि हंसि कै तू बतियां छोलै॥

(कितनी तेज़ है यह नायिका !)

एक दूसरी नायिका देखिए जो कृष्ण के कारण सहमी हुई है—'लरकैया' जो है—

पिचकारी न मारौं कन्हैया मेरी चूनरि भीजै दईया।
अब ही मोल लई मनमोहन सास लड़ै घर सैया॥
नगर चवाब करें सब नारी तेरे परौं मैं पैया।
ब्रजदूलह होरी खेल न जानौ कहा करौ लरकैया॥

दो विभिन्न नायिकाओं का चित्र हमारे सामने है। इनमें से एक उद्धत, जोरदार और हाथापाई करने वाली है, और दूसरी लड़कनी, सहमी तथा होरी खेलने की रीति से अनभिज्ञ है।

इस पुस्तक में अन्य कवियों के छंद भी मिलते हैं। 'धीरज' का एक छंद देखिए—

गोकुल गुजरेटी रूप लपेटी जोवन गर्भ-गरूर भरी।
ससिवदनी मृगनैंनी सुंदर हार हमेल जराब जरी॥
रंग रंगीली अरु चटकीली मुलकत अंगिया अति सुथरी।
अलक लड़ी अलबेली धीरज चाल चलत गज मत्तवरी॥

इन महाशय ने भी राम और लक्ष्मण को होली के छैलों में दाखिल कर दिया है।

होरी षेलैं जी राम जनकपुर मैं।
राम लषन भरतानुज च्यारौं अद्‌भुत वीर लसत तन मैं।
भरि भरि रंग अवधि को राजा फेंकत है चलि चलि मुख मैं॥

और यह है उर्मिला, मांडवी और श्रुतिकीर्ति की होली।

होरी षेलत श्री राम अनुज नारी।
उर्मिला मांडवी श्रुतिकीर्ति सब ठाड़ी हैं जूथ जूथ न्यारी।
बहु भूषण शुभ चीर लसैं उर नक बेसरि मुख छवि भारी॥
महल महल मिलि नारी सुलक्षणि बोलत हैं शुभ वारि वारी।
फिरि फिरि नारि धारि तन मारैं हरषत हैं सीता प्यारी॥

इस संग्रह में कुछ हास्यमय लोकगीत भी हैं—

१. रसिया

अरे सुनिजारे बालम पीपर तरे की बतिया।
मैंने मंगाये गिरी छुहारे लायौ प्यारौ मटर भुनाय।
पीपर……
मैंने मंगाये मथुरा के पेरा प्यारौ लायौ बीरी बंधाय॥
पीपर……

२. मोती महल के बीच दरियाई कौ बंगला।
राजा की बेटी ने बाग लगायौ देषन आया उजीर
अऐ तेरी सौं देखन आया उजीर।
राजा की बेटी ने महल चिनाया……
राजा की बेटी रसोई तपाई, जैंमन……
राजा की बेटी ने सेज बिछाई, पौढ़न……
रे दरियाई का बंगला

३. अरे समलिया फेरी दे दे जाइ मैं न भई घर अपने।
घर के बलम कौ षाटी महेरी।
प्यारे तुमकूं मेवा पकवाई………[1]

वीरभद्र कृत 'फागु लीला' में होरी के अवसर पर कृष्ण की एक सरस लीला का वर्णन मिलता है[2]। कृष्ण एक गोप का रूप बना कर उसके घर जा पहुँचे और उसकी अटारी में सो गये। गोप को पहले से ही कुछ संदेह था अतएव इधर से जाते समय कह गया था कि उसकी अनुपस्थिति में घर में कोई व्यक्ति घुसने न पावे। गोप की मां ने जब कृष्ण को गोप के रूप में घर आया हुआ देखा तो उसने समझा गोप आ गया और उसे अन्दर चला जाने दिया। जब थोड़े समय बाद असली गोप आया तो मां ने दरवाजा नहीं खोला क्योंकि वह समझती थी कि उसका बेटा तो अटारी में सो रहा है यह दूसरा व्यक्ति छलिया कृष्ण ही होगा। असली गोप के बहुत कुछ कहने पर भी दरवाजा नहीं खोला गया,

---

[1] कवि ने इनका संग्रह होरी के अंतर्गत किया है। इस संग्रह में बारहमासा भी है और इस संपूर्ण संग्रह का उद्देश्य भी निम्न दोहे से स्पष्ट है—

कच्ची दैनि दक्षिणा ही आगे तें हमेस की जो,
माजी श्री अमृत कौरि पक्की कर दीनी सो।

यह संग्रह संवत १८६० के लगभग का मालूम होता हैं। इसमें मीरां और सूर के पद भी मिलते हैं, किन्तु जिन पदों का उल्लेख यहां किया गया है वे निश्चय ही भरतपुर के कवियों द्वारा रचित हैं, क्योंकि लक्ष्मण का यह रूप अन्यत्र संभव नहीं।

[2] यह प्रति महारानी अमृतकौर के पठनार्थ लिखी गई थी। पुस्तक के अंत में लिखा है—

विचारा रात भर बाहर ही पड़ा रहा। अन्त में जब सुबह हुआ तो सारा भेद खुला। वीरभद्र की फागुलीला में माता-पुत्र की लड़ाई देखिए—

पूत कहै सुनि माता बौरी।
लाग्यो भूतक परौ ठगौरी॥

किन्तु मां अपने असली बेटे को पहचानने में अब भी भूल कर रही है—

मात पूत मिलि करे लराई।
करि गयो कान्ह महा ठगिहाई॥

असली बात थी—

तैं मइया मेरो घर खोयौ।
आइक कान्ह अटारी सोयौ॥

इस प्रकार कृष्ण गोपियों तथा व्रज बालाओं को 'तका' करते थे। वीरभद्र भी उस सामान्य प्रवृत्ति से नहीं बच सके जिसके अनुसार कृष्ण का चित्रण एक कामुक व्यक्ति के रूप में किया गया है—

औरे एक तकी वृज बाला,
ता पर आसिक नंद के लाला॥
ताहू की हरि सू रति गाढ़ी,
ह्वै न सकति आंगन में ठाढ़ी।
महा बली पति कौ डर भारी,
मिल न सकत पीतम सौं प्यारी॥

किन्तु थोड़े ही दिनों बाद 'आइ बन्यौ होरी कौ औसर' और उसके पश्चात् कृष्ण का ऐसा ही एक अन्य छलियापन दिखाया गया है।

मत्स्य प्रदेश में इस प्रकार की कृष्ण सम्बन्धी लीलाएँ बहुत कम मिलती हैं, प्राय: पूज्य भाव को ओर अधिक ध्यान दिया गया है। किन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राजघरानों तक में इस प्रकार का साहित्य 'कृष्ण लीला' के नाम से प्रवेश पा जाता था और गोवर्धन के पंडे तथा पुजारियोंका इसमें हाथ रहता था। एक बात पढ़ कर बहुत कुछ समाधान हो जाता है कि कृष्ण तो उस समय केवल बालक थे और 'आसिक' जैसे शब्द किसी अन्य अर्थ में ही लिए जावेंगे। फागुलीला में ही लिखा है—

"इति श्री फागुलीला सम्पूर्ण समाप्तमती माह सुदी १३ गुरुवार संवत् १८८७। पठनार्थं श्री श्री श्री मैयाजी श्री यमृतकौरि जी योग्य"

लाड लडैतौ कुवर कन्हैया। पेलत आंगन देषति मैया ॥
बदन चंद चंचल अति नैना। अलक पडे मधुरे कलवैना ॥
नासा कौ मोती अति सोहे। कानन कल हुलरी मन मोहै ॥
लटक रही लट घूंघरवारी। चपल भौंह पर बेंदी कारी ॥

इससे प्रगट होता है कि कृष्ण तो आंगन में खेलने वाले बालक थे जिन्हें देख कर उनकी माता प्रसन्न होती थी, 'नायक' नहीं थे जो वासना से प्रेरित होकर इधर उधर फिरते हों। अस्तु

हिन्दी में अनेक रास पंचाध्यायियां प्रसिद्ध हैं। १. नंददास, २. रहीम, ३. नवलसिंह, ४. व्यास आदि की 'रास पंचाध्यायी' मिल चुकी हैं। नंददास की रास पंचाध्यायी तो हिन्दी साहित्य में एक अनुपम कृति है जिसने अपनी काव्य छटा से साहित्य प्रेमियों को प्रभावित किया और अनेक कवियों को इसी प्रकार का काव्य प्रस्तुत करने को प्रोत्साहित किया। मत्स्य प्रदेश की खोज में हमें भी एक रास पंचाध्यायी प्राप्त हुई जिसके रचयिता हैं 'वटुनाथ'। इनकी 'रास पंचाध्यायी' में प्रकृति का बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन है।[1] यह वर्णन आलम्बन के रूप में है और इसके द्वारा एक सुन्दर वातावरण उपस्थित करके कृष्ण के महारास का वर्णन किया गया है जो पुस्तक का प्रधान विषय है।

---

[1] कुछ उदाहरण देखिये

जहां बकुल कूंज वंजुल निकुंज। सरसैं सुहावनी पुंज पुंज ॥
मकरंद मोद आमोद नीक। छकि मंज गुंजरत चंचरीक ॥
जगमगै मालती लता लूमि। परमल अनूप महकंत भूमि ॥
छुटि नीर तरणिजा तीर तीर। चहुं चलै तीन विधि को समीर ॥

वन करत सुगंधित गंधवाह। चलि मंद मंद हिय भरि उछाह ॥
कूजें अलिंद के वृंद गोद। महकंत केत की बंधु मोद ॥
जहां जुही मौंगरा रैनगंध। करि है अलिंद भरि मोद गंध ॥
सरसंत सेवती थल सरोज। बरसंत केतकी काम चोज ॥
जलजीव फिरैं चहू नीर नीर। बिहरैं अनेक षग तीर तीर ॥
नहीं जिन्हैं प्रलै की नैक जांच। इक कही व्यास सुत सांच सांच ॥
सुखरूप मुक्ति की ओर जुक्ति। सब दरस परस तैं करैं मुक्ति ॥
इमि रूप महावन चंहू ओर। अरु बीस जोजने भू सुठौर ॥

कविता की दृष्टि से रास पंचाध्यायी एक सुन्दर ग्रंथ है और वटुनाथ के इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर नंददास की सी काव्य-प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है। यह ठीक है कि नंददास की उड़ान और काव्य-चमत्कार में वटुनाथ सर्वत्र इतने ऊँचे नहीं उठ सके हैं, फिर भी इनकी कविता उत्तम कोटि की है और प्रकृति-वर्णन इसकी विशेषता है। इसका निर्माणकाल कवि द्वारा संवत् १८९६ दिया हुआ है—

वसु दस षट श्री नंद हू संवत लेउ विचारि,
ताके आश्विन मास में पूरि करी गिरधारि।

इस पुस्तक में १२७ पत्र हैं, और ग्रंथ वहुत सुन्दरता के साथ लिखा गया है। इसमें अनेक राग-रागनियां भी दी गई हैं और उनके भेद बताए गए हैं। वटुनाथ के आश्रयदाता भरतपुर के महाराज वलवंतसिंहजी थे, जैसा पु तक के अन्त में दी गई इन पंक्तियों से स्पष्ट है—

'इति श्री वटुनाथेन कृता श्री रसिक मुकुटमणि नपेंद्र व्रजेंद्र श्री बल-वंतसिंह नृपति चक्र चूडामणे हिताय पंचाध्यायो संपूर्णम्। मीती आश्वनि'

आलंबन की प्रकृति फिर उद्दीपन बन जाती है—

ताही छिन उडराज उदित नभ ऊचौ आयौ,
सुषदाई कर उदय राग प्राचीदिश छायौ।
रसक गनन के ताप हरन मनु व्यौम सरोरुह,
प्रकट भयौ कमनीय महामंगल मूरति उह॥
जिमि कामी जन काम बस प्यारी मुख मंडल भलै,
कुंकम सौ बहु दिननि मैं घर लहि आतप कौं दलै॥

चन्द्रमा के उदय होते ही और मुरली का शब्द सुन कर—

काम विवर्द्धन उह पुनिगान। भई विवस व्रजतिय सुनि कान॥
सदन सदन तें सब ही निकसीं। घन घन चंद कलित जनु विकसीं॥
वेग चलति मग कुंडल कीये। जहां प्यारौ ठाडौ मन दीये॥
छेकि सबनि कौं पहले चली। ता बंसी धुनि मग में रलीं॥
चंदमुखी इंदीवरनैनी। भूपन भूषित वर गजगैनी॥
मनि मंजीर मधुर धुनि अैनी। नील बसन फूलन की बैनी॥

रूप का ऐसा आभास और फिर कृष्ण का सामीप्य। किन्तु कृष्ण तो छुप जाते हैं—

दुरति हरि कुंज द्रुत वंजुल निकर,
ह्वै गई विरह बस बिकल बामा।

सघन बन दुरौं जिन जूथपति होत जिमि,
करनिगन तपित चत बिहाला।

एक और भी रूप की प्रतिमा देखें—

कुंचित केस मुपै मकराकृत कुंडल लोल कपोल प्रकासी,
मंद हंसी अवलोकनि त्यौं अधरामृत चारु विलोकि हुलासी।
देत अभय भुजदंड रमातिय रंजन जोति उरस्थल भासी,
चंदन षौरि अमंदित वेंद सवंदन देषत होत है दासी ।।

गोपियां जिस अवस्था में थीं उसी में कृष्ण के पास पहुंच कर रासलीला में संलग्न हो गईं। प्रचलित प्रथा के अनुसार इसमें भी पांच अध्याय हैं और उनमें भगवान कृष्ण के महारास का हृदयग्राही वर्णन है।

वियोग श्रृंगार-वर्णन में गोपियों का विरह ही काव्य की सामग्री बनता रहा है। हमारी खोज में भी कई भ्रमर-गीत तथा गोपी-विरह निकले। कुछ 'खरें' भी निकले जो लम्बे-लम्बे कागजों पर स्वतंत्र रूप में लिखे हुए हैं। राम कवि[1] की लिखी **विरह पचीसी** एक खरें पर मिली।
कवि ने लिखा है 'या तैं कछु गोपी विरह कहू सुनो चित लाय'।

एक कवित्त देखें—

स्याम के सखा कूं आयौ जानि द्विज राम कहैं
धाम धाम वास इति वचन सुनाय कै।
जबते गये हैं व्रज छांडि व्रजराज पूरी,
तब तै दई है आज षबरि पठाय कै।।
माय तै छिपाय लाय लाय जमुना कै तीर,
मंगल गवाय वीर सुबुध बुलाय कै।

---

[1] राम का पूरा नाम रामलाल था। इनके द्वारा कुछ लक्षण ग्रन्थों की रचना भी हुई। अधिक वर्णन अन्यत्र देखा जा सकता है।

एक राम कवि और थे जिनका पूरा नाम रामबख्श था। डीग-निवासी वयोवृद्ध पंडित जगन्नाथजी से उनके पास संग्रहीत हस्तलिखित पुस्तकों का अवलोकन करते समय पता लगा कि रामबख्शजी भी 'द्विजराम' उपनाम से कविता करते थे। ये जसवंतसिंहजी के समय में थे और धाऊ गुलाबसिंहजी इनके आश्रयदाता थे। इनका एक आशीर्वादात्मक छंद उक्त पंडितजी ने एक स्थान पर लिखा दिखाया था—

प्रातहि सौं उठि भानु मनायकें देत हैं आसिस यों द्विजरामहि।
दंपति जासु लहै मन मोद विनोद को पाय लिखो तह नामहि।।
वाचहु नाहि फिरौ विपरीत सो जो कछु शब्द कढै अभिरामहि।
होय प्रसन्न निवास करो सोई धाऊ गुलाब जू के निज धामहि।।

कितिया न जानौ लाल वतिया लिषी है कहा,
छतिया जुडावौ यहि पतिया बचाई कैं॥

रसआनंद ने एक पुस्तक **'रसानन्दघन'** लिखो है। यह पुस्तक बड़ी नहीं है। इसमें केवल २० पत्र हैं और अधूरी-सी मालूम होती है, क्योंकि लिखित अंश के पश्चात् तीन चार पत्र सादा छोड़ कर एक दूसरी पुस्तक लिखी गई है। संभव है लिपिकार ने इन तीन चार पत्रों को पुस्तक के पूरो करने के लिए छोड़ा हो, और शायद यह पुस्तक पूरी लिखी भी जाती किन्तु एक बार का छोड़ा हुआ काम कठिनाई से ही पूरा होता है। यह भी हो सकता है कि दूसरी पुस्तक तैयार करने से पहले ३, ४ पत्र छोड़ दिए गए; किन्तु पुस्तक अपूर्ण है। रसानंदघन में उच्च कोटि की कविता मिलती है। पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार होता है—

'श्री गणेशाय नमः अथ रस आनन्दघन लिष्यते—

छप्पे— माथे मुकुट शिषंड तिलक मंडित गोरोचन।
दर्पित कोटि कंदर्प्पि दर्प मद घूर्मित लोचन॥
कुंडल मकराकार डुलत झलकलत कपोलन।
तडिदिव कटि पट पीत मत्त इमि मल्हकत डोलन॥
मुष कंज मंजु मुरली धुनित श्रवत सरस आनद श्रवन।
जै गोकुलेश मृदुवेश जै गोपमेश गोपी रवन॥'[1]

पुस्तक से संगृहीत दो कवित्त—

१. चाह भरी चंचल चितौंनि चष चंचलन,
चंचला तैं चंचल मरोर मोई हित साज।
पीत पट साजैं नग भूषण बिराजैं पग,
नूपुर समाजैं सुनि लाजैं कोटि रतराज॥
हीरा की सी षानि मुसिकानि में रदन आभा,
चीरा चारु चंद्रका चटक चित चुभी आज।
जाके भले भाग भयौ आनंद रसालु मंजु,
मूरति रसाल वाके लाल की लपै मैं आज॥

२. केलि थली कुंज फूली फली हरी भरी रही,
तापै अलि पुंजनि की गुंज उभरी रही।

[1] रसानंद को राधा का इष्ट था।

रस आनंद की संपदा जियकी जीमनि मूरि।
रोम रोम राधा रमी बंसी धुनि गुन पूरि॥
राधा रास विलासनी राधा रस निधि-पुंज।
राधा सुमन विकासिनी हित के नैंननिकुंज॥

वृंदारकवृंद परिचारक समेत हेत,
कुसल मनावै ते वे कुसल घरी रहौ ।।
घटिहाई सौतिन के कंठ दुख गांठि छुहौ,
अघ की उघटि आई दीढि पर जी रहौ।
नैन रस आनंद के भीने रहौ लाडिले के,
माग लाडिली की अनुराग में भरी रहौ ।।

कृष्ण और राधिका की यह प्रेम-भरी जोड़ी बहुत ही संयत रूप में प्रस्तुत की गई है। 'रसआनन्दघन' का यह 'प्रथम रहस्य' है। इस पुस्तक को रसानंद ने स्वयं ही संग्रह ग्रंथ बताया है—'रस आनन्दघन संग्रह'।

खोज में कुछ लोक-गीत भी पाये गये। 'ब्रज का रसिया' यथेष्ट मात्रा में प्रचलित है और ब्रज भूमि में आज भी रसियों की गूंज है। उत्सवों के अवसर पर, मेलों के समय, गोवर्द्धन की परिक्रमा करते हुए रसिक लोग अनेक प्रकार के रसिये गाते सुने जाते हैं। इनमें शृंगार की छटा देखने को मिलतो है, किन्तु इन रसियों का जो रूप हमें मिल सका वह संवत् १९५० के पीछे का है। अत: उन्हें इस प्रवंध में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। अलवर के महाराज जयसिंह तथा भरतपुर के महाराज कृष्णसिंह ने इस ओर अनेक प्रयास किए। अलवर के महाराज जयसिंहजी देव के निजी पुस्तकालय में गीतों के संग्रह की दो तीन फाइलें मुझे देखने को मिलीं। चेष्टा इस बात की गई थी कि प्रांत के सभी क्षेत्रों से गीतों का संग्रह किया जाय। स्थान-स्थान पर संग्रह कर्ता भेजे गए और प्रचलित गीतों को 'ग्रामीण गीत' के नाम से संग्रह किया गया। इस हस्तलिखित प्रति में स्थानों तथा व्यक्तियों के नाम लिखे हैं। यथा—

'गीत मौजा धीरोड़ा कौम गूजर मीणां'

मीणां लोगों के गीत बहुत प्रसिद्ध हैं और 'पचवारा की मीणीं'[1] नामक गीत

---

[1]पचवारा की मीणीं नैडा की हे मीणीं।
तोनों राजा जैसिंघ जी बुलावैये ।।
म्हानै कांई फरमावो जी जैसिंघजी महाराज।
थानै महल दिखावां हे पचवारा की मीणी ।।
म्हारै महल घणेरा जी जैसिंघ जी राज।
थांनै बाग वतांवां हे नैड़ा की मीणीं ।।
म्हांरै बाग घणेरा जी जैसिंघ जी राज।
थां नै गंहणू घड़ावांहे नैड़ा की मीणीं ।।
म्हांरे गहणूं घड़ेरों जी जैसिंघ जी राज।

तो गांवों में बहुत गाया जाता रहा है। इन गीतों में स्थानीय भाषा का प्रयोग हुआ है। मत्स्य प्रदेश के शृंगार-साहित्य की हिन्दी के अन्य शृंगारी-साहित्य से तुलना करने पर बहुत कुछ विभिन्नता दिखाई देती है। उनमें से कुछ बातों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१. मत्स्य में राधाकृष्ण के शृंगार की ओर कवियों का हृदय पूज्य-भावनायुक्त रहा। यहाँ के साहित्य में वासनामय काव्य का प्रायः अभाव है।

२. राधाकृष्ण के साथ-साथ राम और सीता तथा लक्ष्मण और उर्मिला के शृंगार संबंधी प्रसंग भी मिलते हैं। यहाँ तक कि शिवजी की होली भी लिखी गई है, परन्तु अश्लील वर्णनों की एकदम कमी है।

३. कवित्त, सवैयों के साथ-साथ इस प्रदेश में पदों का प्रयोग भी बहुतायत से हुआ है और उनके साथ राग, ताल आदि के नाम विधि-पूर्वक दिए गए हैं। इन पदों का निर्माण, संभवतः होली के अवसर पर, गायन की दृष्टि से किया गया हो।

४. अपने इष्ट या पूज्य देवों के शृंगार-वर्णन में राजा तथा उनके आश्रित कवि दोनों ने ही भाग लिया।

५. मत्स्य के शृंगारसाहित्य में संयोग तथा वियोग दोनों का चित्रण किया गया है।

६. सात्विक तथा शुद्ध शृंगार की दृष्टि से प्रेम का निरूपण भी किया गया और उसके महत्त्व को समझाने की चेष्टा की गई। रीतिकालीन शृंगारी कवियों की तरह अश्लील शृंगार की ओर यहाँ के कवियों का ध्यान नहीं गया।

हमारी खोज में जो शृंगार-काव्य मिला वह तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१. रीति-काव्यों में उदाहरण देते समय

    १. नायक-नायिका,
    २. नखसिख,
    ३. शृंगार-निरूपण, आदि के रूप में उपलब्ध साहित्य। इस प्रकार के साहित्य से हिन्दी का भंडार भरा पड़ा है।

२. राम, कृष्ण आदि की लीलाओं का भक्ति-भाव से प्रेरित होकर वर्णन करना। कुछ ऐसे प्रसंग भी आ गये हैं जहाँ शृंगार का वर्णन करना पड़ा है किन्तु इन प्रसंगों में भी शृंगार का रूप बहुत ही दबा हुआ है और पूज्य भाव को ठेस नहीं लगने पाई है। भ्रमर गीत में वर्णित वियोग-शृंगार को इसी के अंतर्गत लिया जा सकता है और साथ ही रास पंचाध्यायी का संयोग शृंगार भी।

३. 'होरी' आदि उत्सवों के अवसर पर गाने योग्य प्रसंग। भारतवर्ष में होरी एक अद्भुत त्यौहार है जब शृंगार का कुछ वर्णन और साथ ही कुछ प्रदर्शन आवश्यक सा हो जाता है। व्रज की होली[1] वैसे भी प्रसिद्ध है: मन्दिर तथा महल सभी जगह होली चलती है।

---

[1] होली देखने के इच्छुक बरसाने पधारें और वहां नंदगांव तथा बरसाने की होली का आनंद लें। उसकी याद आपको जीवन भर बनी रहेगी। व्रज की स्त्रियों का वह पराक्रम देख कर आप चकित रह जायेंगे!

अध्याय ४

भक्ति-काव्य

व्रजमंडल भगवान कृष्ण की लीलाभूमि है जहां स्थान स्थान पर भगवान कृष्ण के मन्दिर मिलेंगे। मत्स्य प्रान्त में भी कृष्ण की भक्ति का बहुत प्रचार रहा है। किन्तु इस प्रदेश में राम की भक्ति भी कुछ कम नहीं रही। अलवर का तो राजघराना ही सूर्यवंशी है, और अलवर का इतिहास लिखने वाले कुछ विद्वानों ने भगवान सूर्य से इस वंश की परम्परा सिद्ध करने की चेष्टा की है।[1] मत्स्य प्रान्त में भगवान राम के अनेक मंदिर हैं। भरतपुर नगर में लक्ष्मणजी के दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं। विहारीजी, जगन्नाथजी, हनुमानजी, देवी, भगवान शंकर आदि आदि के मंदिर भी बराबर पाये जाते हैं। गंगा की पूजा और भक्ति मत्स्य के सभी राज्यों में रही। और आज भी राजस्थान का जन समाज गंगा-स्नान के पुण्य को सर्वोपरि मानता है। भरतपुर में गिरि गोवर्धन के प्रति बहुत श्रद्धा है। भरतपुर राजघराने के तो गिरिराज महाराज इष्ट देव भी बने, और यहां नियमपूर्वक गिरि-राज महाराज की पूजा की जाती है। अनेक अवसरों पर भरतपुर के राजाओं द्वारा जीर्णोद्धार आदि का कार्य कराया गया। इस सम्बन्ध में 'गिरिवर विलास'[2] नाम की पुस्तक बहुत महत्त्वपूर्ण है। मन्दिरों में नियमित रूप से श्रावण के महीने में रास लीलाएँ हुआ करती थीं। बड़े मन्दिरों में श्रावण की तृतीया से रक्षाबंधन तक नित्य ही कृष्ण की लीला होती थी। यह प्रथा अब लुप्त सी होती जा रही है। इसी प्रकार रामलीला भी प्रति वर्ष हुआ करती थी। भरतपुर की राम-लीला दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। अनेक वर्षों तक बन्द रहने के बाद अभी कुछ ही वर्ष पूर्व उसे पुनः उसी पद्धति पर जारी किया है, किन्तु आज न उसका इतना समा-रोह देख पड़ता है और न इतनी श्रद्धा ही। समय-परिवर्तन के साथ साथ मनुष्य की धार्मिक भावनाओं में भी परिवर्तन हुआ। बुद्धिवाद ने श्रद्धा में कमी की और आज की भीषण आर्थिक तथा राजनैतिक समस्याएँ भी पुरानी संस्कार-माला को तेजी से बदल रही हैं। किसी गोवर्द्धन जाने वाले के ये शब्द कितने उत्साह से सुनाई पड़ते हैं—

> 'नांय मानें मेरी मनुआं, मैं तो गोवरधन कूं जाऊं मेरी बीर।
> सात कोस की दे परकम्मा, मानसी गंगा न्हांऊं मेरी बीर।.'

---

१ पिनाकीलाल जोशी द्वारा लिखित 'अलवर का इतिहास' (हस्तलिखित)

२ विशेष विवरण अन्यत्र देखें।

भरतपुर और अलवर के बहुत से भक्त तो गोवर्धन की यात्रा पैदल ही करते हैं, और सप्तकोशो परिक्रमा समाप्त कर के पैदल ही घर लौट आते हैं। गले में पीले सीकों की बहुत-सी कंठियां पहने, अलगोजा बजाते व्यक्ति जब वापिस आते दिखाई देते हैं तो इन 'रसियों' को देख कर ब्रज के पुराने दिन याद आ जाते हैं। गोवर्धन में मुखारविंद पर पूजन की बहुतसी सामग्री चढ़ती है। कोई भक्त दूध की धारा से सातों कोस की परिक्रमा देते हैं। कोई छप्पन भोग लगवाते हैं जिसमें काफी द्रव्य लगता है। गिरिराज की सप्तकोशी की परिक्रमा के साथ मानसी गंगा की भी परिक्रमा दी जाती है। मानसी गंगा का स्नान गंगा-स्नान के तुल्य गिना जाता है। आज भो मानसी गंगा का दीपदान बहुत प्रसिद्ध है। भरतपुर के राजा तो गिरिराज महाराज के बड़े भक्त रहे हैं और आज तक भरतपुर के महाराज उसी श्रद्धा और भक्ति के साथ पूजन तथा परिक्रमा करते हैं। अनेक भक्त गिरिराज की 'दंडोती' (सातों कोस की ढोक देते हुये परिक्रमा) करते हैं। कुछ ही दिन पहले भरतपुर महाराज ने दंडोती लगाई थी। गोवर्धन की मान्यता दूर-दूर तक है और मत्स्य तो इससे काफी प्रभावित रहा है। गोवर्धन के पंडे आज भी देश-परदेश जा कर अपने भक्तों से दक्षिणा-भेंट प्राप्त करते हैं। इन लोगों के द्वारा ब्रज की अनेक लीलाएँ गा गा कर सुनाई जाती हैं। पहले राज-घरानों तक में इन लोगों की पहुँच थी और राजा तथा रानियां इनके प्रति भक्ति-भाव रखते थे। भरतपुर की रानी अमृतकौरजी को कृष्ण लीलाओं को अनेक पुस्तकें समर्पित की गईं थीं।

गोवर्धन में हरदेवजी का एक प्राचीन मन्दिर है और भरतपुर में भी हर-देवजी का एक मन्दिर है जिसके पुजारी अपने को गुसाईं कहते हैं। मैंने यहां के पुराने पत्र आदि देखे जिनसे विदित होता है कि तत्कालीन महाराज ने इन लोगों को गोवर्धन से बड़े आदर-सत्कार के साथ बुलाया था। अनेक स्थानों पर 'हरदेवजी सहाय' लिखा मिलता है। कई कवियों ने भी ऐसा लिखा है। बल्लभकुली गुसाईं भी भरतपुर से बहुत संबंधित रहे। किन्तु जिस समय का वर्णन यहां किया जा रहा है उन दिनों लोगों को राम और कृष्ण की भक्ति में विश्वास था। रासलीला और रामलीला श्रद्धा के साथ देखे जाते थे। ('सरूपों' अभिनयकर्त्ताओं) के प्रति भक्ति-भावना देखी जाती थी।

देखते ही देखते लीलाएँ और रास कुछ विकृत हो चले। यह देखा जाने लगा कि पहले तो रास लीला होती थी जिसमें कृष्ण-राधा, उनकी दो सखियां (मुख्यत:) 'ललिता' और 'विसाखा' रहती थीं। 'सरूपों' की पूजा के उपरान्त कुछ नृत्य, रास आदि होता और इसके पश्चात् वही रास मंडली नौटंकी में परिवर्तित हो

जाती थी। आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस लड़के को कृष्ण बनाया जाता है उसे ही रानी अथवा अन्य सुन्दर स्त्री का पार्ट दिया जाता है और उसके गाने तथा भावभंगी कामोत्तेजक होने के साथ-साथ अश्लील होते हैं। अनेक प्रकार के बेढंगे प्रदर्शन उसी रंग-मंच पर किए जाते हैं जहां दस मिनट पहले कृष्ण की लीलाओं का प्रदर्शन हो रहा था। मन्दिरों में अमरसिंह, नौटकी, तिरियाचरित्र, सियाहपोश न होकर कुछ भगवद्भक्ति सम्बन्धी कथाएँ ली जाती थीं—जैसे ध्रुव लीला, प्रह्लाद, मोरध्वज, सुदामा आदि। मुझे याद है कि पहले रास और लीलाओं के कारण श्रावण के महीने में नगर में एक उल्लास सा छा जाता था और रक्षाबंधन तक तथा उसके पश्चात् भी यत्र-तत्र रास होते रहते थे। उन दिनों आधी रात के बाद नगाड़े की चोट सुन कर स्वत: पता लग जाता था कि रास हो रहा है। इन रासों का रूप बहुत बिगड़ गया और बुरी तरह अश्लील गानों की भरमार होने लगी। अब यह प्रथा ही समाप्त होती जा रही है। सिनेमा के इस युग में 'फ्री' होने पर भी रास कोई नहीं देखता। ब्रज के कुछ स्थानों—जैसे मथुरा, वृन्दावन में अब भी रास-प्रणाली चल रही है। किन्तु मत्स्य प्रदेश में यह प्रवृत्ति बहुत कम हो चली है।

मत्स्य प्रदेश में गोवर्धन की भक्ति आज भी बहुत व्यापक है। गुरुपूर्णिमा के दिन 'मुड़ियापूनों' के नाम से गोवर्धन में एक बहुत बड़ा मेला लगता है। वैसे परिक्रमा तो पूरे साल तक बराबर लगती ही रहती है। बीच में कुछ समय के लिए भरतपुर के राजचिन्ह के नीचे 'श्री गोकुलेन्दुर्जयति' हो गया था। सेवर[1] में श्री ब्रजेन्द्रबिहारीजी का एक मन्दिर है। महाराजा जसवंतसिंह ब्रजेन्द्र-बिहारीजी के दर्शन नित्य प्रति करते थे। कामां में चन्द्रमाजी का मंदिर और घाटा नामक स्थान में गुसाईंयों के स्थान आज तक हैं। राम की भक्ति भी बहुत रही। भूतपूर्व अलवर नरेश ने अपने विजय मंदिर में भगवान राम और सीता की अति आकर्षक मूर्तियों को प्रतिष्ठित कराया। 'अट्टा' नाम से राम का एक मन्दिर शहर में भी है जिसकी बहुत प्रतिष्ठा है। भरतपुर के किले में बिहारीजी का मन्दिर बैरागियों का बताया जाता है। कहा जाता है एक साधु की जटायें उसी स्थान पर झाड़ियों में उलझ गई थीं और भगवान ने प्रगट होकर स्वयं ही जटाओं को छुड़ाया।[2] इसी स्थान पर बिहारीजी की प्रतिष्ठा की गई। इसके

---

१ भरतपुर से चार मील पर एक कस्बा है जहां किसी समय भरतपुर-महाराज सेना सहित रहते थे।

२ जटा छुड़ाते हुए भगवान और साधु की मूर्ति मन्दिर में विराजमान है।

साथ ही मत्स्य प्रदेश में कुछ पहुँचे हुए साधु और फकीर भी हुए जिनमें से एक लालदास का परिचय अन्यत्र कराया जा चुका है। चरनदासियों का प्रसंग इसी अध्याय में आगे आवेगा। राजाओं की वृत्ति साधु महात्माओं की सेवा करने की होती थी।

मत्स्य प्रदेश में हमें भक्ति के कई रूप मिलते हैं—

१. **राम भक्ति**— अनेक कवियों ने राम की उपासना संबंधी विविध छंद और पद आदि लिखे हैं तथा उनके जीवन से सम्बन्धित कुछ घटनाओं को भी चित्रित किया है।

   १. राम-करुण नाटक—लक्ष्मण-मूर्छा के अवसर पर।
   २. हनुमान नाटक—सीता की खोज के प्रसंग में।
   ३. अहिरावण बध कथा—राम-लक्ष्मण-हरण।
   ४. जानकी मंगल—सीता और राम का विवाह।
   ५. रामायण—बलदेव की 'विचित्र रामायण'।

२. **कृष्ण भक्ति**— कृष्ण की अनेक लीलाओं के सरस वर्णन प्राप्त होते हैं। दान-लीला, फागुलीला, नागलीला, माखनचोरी लीला, राधा-मंगल आदि अनेक सुन्दर प्रसंग हैं। इनके अतिरिक्त भ्रमर-गीत परम्परा का काव्य भी प्राप्त होता है, जिसमें निर्गुण-सगुण का व्यापार उसी खूबी के साथ निभाया गया है जैसा उस प्रकार के अन्य साहित्य में। सगुण-भक्ति से सम्बन्धित कुछ और भी साहित्य है।

   १. शिव सम्बन्धी—पार्वती मंगल, शिव-स्तुति, महादेवजी कौ व्याहुलौ।
   २. गंगा सम्बन्धी—गंगाभूतलआगमन, गंगा की प्रार्थना आदि।
   ३. देवी सम्बन्धी—दुर्गा सप्तशती का अनुवाद, कालिकाष्टक, फुटकर प्रार्थना के छंद।
   ४. गोवर्द्धन सम्बन्धी—गिरवर विलास, गोवर्द्धन महात्म्य आदि।
   ५. भक्तों सम्बन्धी—ध्रुव-विनोद।
   ६. भागवत प्रसंग—दशम स्कंध की कथाएँ जो भागवत से अनूदित हैं।

७. अन्य धार्मिक ग्रन्थ—रामायण, महाभारत आदि के अनुवाद।

३. **निर्गुण ज्ञानाश्रयी**—हिन्दी में संत-साहित्य अपना पृथक् ही स्थान रखता है। इस साहित्य में सतगुरु, सबद, बानी, अनहद नाद, नाड़ियां, योग आदि के प्रकरण होते हैं। साथ ही हिन्दू-मुस्लिम के भेदभाव को हटाने की भी चेष्टा होती है। मत्स्य में निर्मित चरनदासी साहित्य कुछ इसी प्रकार का है। किन्तु इन सब का प्रतिपादन करने पर भी चरनदासजी अवतारवाद में विश्वास रखते हैं और इसी का प्रतिपादन उनकी शिष्याओं दयाबाई तथा सहजोबाई आदि ने किया। हां 'रामजन' नाम के एक संत की पुस्तक में संत मत का पूरा अनुगमन किया गया है। नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि ये महात्मा अस्पृश्य रहे हों; आज के प्रचलित 'हरिजन' से 'रामजन' का काफी साम्य बैठता है।

४. **निर्गुण प्रेम-मार्गी**—एक पुस्तक 'प्रेमरसाल' कही जाती है, जिसके रचयिता गुलाममुहम्मद[१] हैं। दुर्भाग्यवश यह पुस्तक प्राप्त नहीं हो सकी। किन्तु गुलाममुहम्मद महाराज रणजीतसिंहजी के समकालीन थे और कई लोगों से इनकी मौखिक चर्चा सुनी गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मत्स्य में भक्ति सम्बन्धी विविध धाराओं पर रचनाएँ की गईं, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि आधिक्य सगुण भक्ति का ही रहा। और उसमें भी कृष्ण सम्बन्धी रचनाएँ अधिक प्राप्त होती हैं। इसका कारण कृष्ण की लीला भूमि मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, महावन, गोकुल, दाऊजी आदि स्थानों का इस प्रदेश के निकट होना है।

राज्य की ओर से धार्मिक कार्यों की ओर काफी ध्यान दिया जाता था। प्रत्येक राज्य में निश्चित रूप से कुछ धनराशि धर्मार्थ सुरक्षित रखी जाती थी

[१] गुलाममुहम्मद महाराज रणजीतसिंह के समकालीन थे, जिनका राज्य काल सं० १८३४ से ६२ विक्रमी है। इस पुस्तक की वही शैली थी जो प्रेममार्गी सूफियों की रही। इनके पिता का नाम अब्दाल खां था। पुस्तक में प्रस्तावना के रूप में भरतपुर नगर तथा दुर्ग का सुन्दर वर्णन लिखा कहा जाता है। वास्तव में यह ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण होना चाहिये क्योंकि इसको पा कर मत्स्य में भक्ति की चारों धाराओं का सुन्दर सम्मिलन हो जाता है।

और इस विभाग को धर्मार्थ विभाग, सदावर्त, पुन्य विभाग, अथवा अन्य ऐसे ही नामों से अभिहित किया जाता था। इस विभाग द्वारा जहां असहायों को सहायता होती थी वहां मन्दिरों के लिए भी निश्चित रूप में सहायता दी जाती थी। अनेक स्थानों पर बराबर पाठ होता रहता था। नियमित पाठ करने वाले ये 'वर्णी वाले' राज्य और राजा की मंगल कामना के हेतु पाठ करते रहते थे। प्रत्येक राज्य के पंडे, दानाध्यक्ष आदि होते हैं। तीर्थ-स्थानों में दरबार की ओर से कुछ द्रव्य सहायतार्थ भेजा जाता है। पूजन आदि का कार्य नियमित रूप से अब भी होता है। प्रत्येक उत्सव के समय पुरोहित द्वारा सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न कराया जाता है। स्वस्ति-वाचन के बिना कोई कार्य पूरा नहीं समझा जाता। यदि किसी कारण से राजा अनुपस्थित हो तो पूजन-कार्य दानाध्यक्ष द्वारा करा दिया जाता है। महन्त, पुजारी आदि के प्रति राजाओं की श्रद्धा बराबर रहती है। आज सारी बातें बदल रही हैं। न राज्य रहे न राजा, और न धार्मिक कार्यों में इतना उत्साह। उस समय की अवस्था को देखते हुए ये स्वाभाविक ही था कि सगुण भक्ति संबंधी काव्य की रचना हो। मत्स्य प्रदेश में भी इसी परम्परा का अनुगमन हुआ।[1]

सर्व प्रथम हम राम काव्य को लेते हैं। रीतिकारों में उदयराम[2] का नाम आ चुका है। भगवान राम के चरित्र से सम्बन्धित इनके बनाये तीन नाटक हमें मिले हैं जिनमें से दो को तो स्पष्ट रूप से 'नाटक' लिखा है और तीसरे को 'कथा'।

हनुमान नाटक की कुछ पंक्तियां—

पवन पुत्र कु बोलि बोलि मुद्रिका गहाई।
जनकसुता के हाथ जाइ दीजो यह भाई॥
सीता की सुधि लैन कूं चले महा बलवान।
पाइ रजाइस राम की हरषत है हनुमान॥
रजा यह राम की॥

---

[1] मत्स्य के कवियों में महन्त, पुजारी, पंडे, चौबे, दानाध्यक्ष, राजपुरोहित आदि सम्मिलित हैं।

[2] इनके बनाये हुए २४ ग्रन्थ बताये जाते हैं, जैसे—सुजान संवत, गिरवर विलास, हनुमान नाटक, रामकरुण नाटक, अहिरावण वध कथा, कृष्ण प्रतीत परीक्षा, राधा प्रतीत, संकेत समागम, यक्षपचीसी, बारहमासी। ये कविवर महाराज रणजीतसिंह के समय में थे, जिनका राज्य-काल सं० १८३४ से १८६२ विक्रमी रहा।

महावीर बलमान तीर सागर की आयो।
किलकिलाय गल गजि तर्ज गिरि गगन उड़ायो ।।
पायक श्री रघुवीर को बलधायक बल अंग।
लवा लंक झपटन चले बली बाज बजरंग ।।
रजा यह राम की ।।

सीता विरह विसाल हाल हनुमान सुनायो।
है आये द्रग लाल सुनत जनपाल रिसायो ।।
कुटंब सहित दसकंठ कौं अब संघारौं जाय।
लैहु जानकी जाय अब बोले राम रिसाय ।।
रजा यह राम की ।।

धनि धनि तू हनुमान कठिन कारज करि आयो।
महावीर बलवान कियो सबको मन भायो ।।
यह नाटिक हनुमान कों कहै सुनै नर कोय।
ग्यान ध्यान वहु ऊकति उदै उर प्रेम बुद्धि बहु होय ।।
रजा यह राम की ।।

रामकरुण नाटक से कुछ पंक्तियां—

यहां राम अकुलाय रैंन रहि गई कछु थोरी।
ज्यों जल निघटे मीन दीन विधु बिना चकोरी ।।
कटे पंष पंपेस वामनि विनु फनि अकुलाई।
हेरि हेरि हनुमान मग राम रहे अकुलाय ।।
राम करुणा करें ।।

सुनहुं सषा सुग्रीव समुझि संदेह न यामें।
वानर देहु पठाय बीनि बन चंदन लामें।
रचौं चिता अब आय सब तापर बैठों जाय।
लै लछिमन कौं गोद में दीजौ अगिन जराय ।।
राम करुणा करें ।।

उदय भयो इत भोर सहित सरवरी सिरांनी।
झलकी किरणि कलिंद जगे जब सारंगपानी।
नित्य क्रिया कर कुमंर दोऊ आये आसन पास।
कटि निषंग कर सर धनुष बैठें कुंवर हुलास ।।
राम करुणा करें ।।

इसी प्रकार 'अहिरावण वध कथा' है। इसे 'कथा' कहा गया है, नाटक नहीं। उपर्युक्त दोनों अवतरणों को देखने पर यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि कवि ने इन दोनों को 'नाटक' किन कारणों से कहा है, यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि कवि इन्हें

नाटक ही कहना चाहता है—"यह नाटिक हनुमान कौ", पुस्तक का नाम भी नाटक ही लिखा है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि शैली विशेष के कारण कवि अपनी इन दोनों कृतियों को नाटक कहता है तो 'अहिरावण वध' कथा को नाटक क्यों नहीं कहता, उसे 'कथा' क्यों कहता है। अहिरावण कथा के कुछ अंश ये हैं—

अहिरावण को बोल कहै रावण सुनि भाई।
राम लक्ष्मण वीर तिन्हें तू हर ले जाई।।
अहिरावण यह सुनत ही मगन भयो तिहि काल।
माया करि हर लैगयौ तिनकौ निसि पाताल।।
कुमर ये कौन के।।

लीये षडग छिनाय किते षल मारि भगाये।
केते कर सौ पकरि मुंड ते मुंड भिराये।।
अहिरावण सिर तोर के डार्यो कुंड मझार।
भुजा उपाढ़ी सो पड़ी रावण के दरबार।।
कुमर ये कौन के।।

जामवंत सुग्रीव विभीषण सबही भाषै।
धन धन पवनकुमार प्राण तैं सबकें राषै।।
कीस भालु कपि कटक के भयो न भावत भोर।
रामचन्द्र चाहत उदै कपि कुल कुमद चकोर।
कुमर ये कौन के।।

इन तीनों पुस्तकों को देखने से कुछ सामान्य निष्कर्ष निकलते हैं—

१ कवि हनुमानजी का भक्त था क्योंकि उसने अपनी तीनों पुस्तकों में वे ही प्रसंग लिये हैं जिनमें हनुमानजी की वीरता और बुद्धि का वर्णन है। तीनों पुस्तकों में कवि का उद्देश्य हनुमानजी का महत्त्व दिखाना है।

२ इस कविता पर नंददास के भ्रमर-गीत की स्पष्ट छाप है। 'सखा सुन श्याम के', 'सुनो व्रजनागरी' के आधार पर तीनों रचनाओं की सृष्टि की गई है। छन्द-योजना एकदम उसी प्रकार की है। इसका एक मात्र कारण नंददास के भ्रमर-गीत का अधिक प्रचार हो सकता है।

३ कवि ने दो पुस्तकों को नाटक और तीसरी को कथा कहा है। वैसे इन तीनों में कोई अन्तर तो है नहीं, फिर भी इसका समाधान यही हो सकता है कि संस्कृत काव्य में जो प्रसंग नाटक के नाम से प्रचलित थे जैसे 'हनुमान नाटक' उन्हें नाटक कहा गया है और अन्य को कथा। तीनों ही प्रसंगों में कथा संबंधी सम्पूर्ण योजना मिलती है।

बलदेव[1] नाम के एक खण्डेलवाल वैश्य ने 'विचित्र रामायण' नाम का एक सुन्दर प्रबंध काव्य लिखा है। यह हस्तलिखित पुस्तक हर प्रकार से सुन्दर है। इस रामायण में कथा-विभाजन कांडों में नहीं किया गया है, जैसा प्रायः देखने में आता है। कांडों के स्थान में अंकों में कथा-विभाजन किया है अंकों का विवरण इस प्रकार है—

अंक १	जानकी परिणय	पृष्ठ संख्या ३
२	सिय रामचन्द्र विलास	२२
३	वन गमन	२५
४	सिय हरन	४२
५	वैदेही वियोग	४६
६	हनुमान विजय	६६
७	सेतु बंधन	८५
८	अंगद दूत	६३
६	मंत्री नय वचन	११३
१०	दशमुख माया कपट	१२६
११	कुंभकर्ण विनाश	१३५
१२	मेघनाद संहार	१५३
१३	सौमित्र शक्ति विभेद	१६०
१४	राम संगर विजय	१७६ से २१६

विषय-सूची के देखने से पता लगता है कि कवि ने उन्हीं प्रसंगों को लिया है जो कथात्मक हैं। बाल-कांड और उत्तर-कांड के उन प्रसंगों को उसने उपयुक्त नहीं समझा जिनमें कथा की गति रोक कर अनेक अन्य प्रसंगों को देने का प्रयास किया गया है। पुस्तक का प्रारंभ राम-सीता-विवाह से होता है और समाप्ति राम की विजय के साथ। विभाजन उसका अपना व्यक्तिगत है जिसमें १४ अंक है। इन्होंने भी इस कथा को नाटक कहा है जिससे अंकों में विभाजन और भी सार्थक प्रतीत होता है।

---

१ ये खंडेलवाल वैश्य थे और अपनी इस पुस्तक की रचना का समय संवत १६०३ इस प्रकार दिया है—

त्रय नभ नव ससि समय में माघ पंचमी खेत।
पूरण कीनो राम जस गुरु दिन हर्ष समेत ॥

संवत् १६०३ बसंत पंचमी गुरुवार।

पुन तातें यह 'नाटक' महान ,
तिहु' लोकन कौ पावन प्रमान ।

विचित्र रामायण एक बहुत सुन्दर काव्य-ग्रन्थ है जिसमें कवि की मौलिकता स्थान स्थान पर लक्षित होती है। पुस्तक में अनेक छंदों का प्रयोग और विशिष्ट शब्द-चयन कभी कभी रामचन्द्रिका का ध्यान दिला देते हैं, किन्तु अर्थ-ग्रहण में कहीं भी कठिनाई नह —सर्वत्र ही सरल और स्वच्छ कविता के दर्शन होते हैं। संक्षेप में यह ग्रंथ प्रत्येक प्रकार से एक सुंदर काव्य है। इसमें १४ अंक हैं, मंगलाचरण है और कथा भी सम्पूर्ण रूप में है। इसका नायक धीरोदात्त है, प्रतिनायक भी है। गृहीत प्रसंग सुन्दर हैं, साथ ही संयोग और वियोग के प्रकरण सुन्दरता के साथ चित्रित किये गये हैं। कथा में कहीं भी शैथिल्य दृष्टिगोचर नहीं होता। साथ ही यह हस्तलिखित प्रति भी अति उत्तम है। चारों ओर काफी हाशिया छोड़ कर सुस्पष्ट और मोटे अक्षरों में समस्त ग्रन्थ लिखा गया है। स्याही चमकदार है तथा आरम्भ से अंत तक हस्तलेख बहुत ही सुन्दर और चित्ताकर्षक है। पुस्तक दर्शनीय है और उस समय की उत्कृष्ट हस्त लेखन कला का सम्यक् प्रतिनिधित्व करती है।

प्रचलित परंपरा के अनुसार गणेश[१] और सरस्वती[२] की वंदना के पश्चात् गुरु-वंदना[३] तथा स्थान विशेष (भरतपुर) का भी वर्णन है। और इसके उपरांत रामायण लिखने की परम्परा का उल्लेख है कि किस प्रकार सबसे पहले हनुमानजी ने रामायण की कथा लिखी, 'ताके अनंतर वालमीक विसाल मुनि', 'ताके अनंतर भोज भूपति' 'पुनि मिश्र दामोदरहि[४] ने क्रम सहित विरच्यौ आनि कै'। यह द्रष्टव्य है कि तुलसी, केशव आदि राम-गाथा-कारों के नाम नहीं लिखे गये हैं।

इस पुस्तक के लिखने के लिए स्वयं राजा ने आज्ञा दी थी—

तिन की अनुसासन लहि उदार ,
कुल विदित वैस्य खंडेलवार ।

---

[१] श्री गणेशाय नमः विनय करत हौं प्रथम ही गणपति कौ सिर नाय।
जिनके सुमरण ध्यान तें उर अज्ञान विलाय ॥

[२] सरस्वती की स्तुति एक भाव पूर्ण कवित्त द्वारा की गई है।

[३] गुरु पद पदम परागवर मम मन मधुपहि राषि।
राम चरित भाषा करौ, निज मति उर अभिलाषि ॥

[४] संभवतः कवि महाशय मिश्र दामोदर से प्रभावित हुए थे।

बलदेव नाम कवि नैं विचित्र,
यह रामचरित भाषा पवित्र ।।

अपने काव्य के संबंध में लिखते हैं :

जो सब्द अर्थ चित्रित अनूप ।
ध्वनि विंगह कौ नामधि स्वरूप ।।
जुत भूषन अरु दूषन विहीन ।
कवि या विधि कीजो काव्य कीन ।।

विचित्र रामायण के कुछ प्रसंगों को उद्धृत किया जा रहा है—

(i) संयोग श्रृंगार संबंधी कुछ छंद :

उदय विलोकि मयंक कौ रघुपति परम उदार ।
वरनन करति सपीन प्रति उपमा विविध प्रकार ।।

भानु कौ वियोग पाय प्राची रंग कुंकम के,
रुची है सुधाकर की किरनिन छायकें ।
उदधि ऊमंग सौं उतंग होत कंजकुल,
मौन साधि साधि रहे छविहि छिपायकें ।।

विकसे कमोदिनि के कुल अति चाय भरे,
हरषें चकोरिन के मंडल सुभाय के ।
नभ अवकास होत तम कौ विनास होत,
त्रास होत कोकिन के कुल पर आयकें ।।

(ii) शयन का समय हो गया :

सुरति समय पहिचानि, गवन करामन सपिन को,
कह सारिका प्रमानि, कनक पिंजरा तैं वचन ।

(iii) चन्द्रमा पर एक उक्ति :

रजनी कौं नृपति है सवतै अधिक समि,
तिमिर वधू को कालरूप के समान है ।
कामिनि संजोग को है साथी सो सकल भांति,
गगन सरोवर कों कमल प्रमान है ।।

मानसरवर कैसौ राजहंस राजै अरु,
कलित कमोदिनि की निद्रा कौं कृपान है ।
सुरति के पूजन में प्रथम सुकुंभ सो है,
कामवान कारन कराल परसान है ।।

इसी अंतिम पंक्ति को इस दोहे में इस प्रकार कहा है :

सुरति सु पूजन के विषे प्रथम कुंभ हिममान,
काम बान तीछन करन है कराल परसान ।

(iv) और अन्त में :

वचन सारिका के सरस विग सहित ए जान,
निज निज मंदिर प्रति गईं सषी सकल गुनषान।

(v राम सिया की जोड़ी का एक दर्शन :

वाम अंग राम के विराजत विदेह सुता,
लाजत मदन कोटि सोभा दरसाये तैं।
मानो घन दामिनी अनूप वपु धारे दुहू,
राजैं परजंक पे सुहाग सरसाये तैं।

भीजे निसिवासर रसीले रंग रीझे मिलि,
दंपति परस्पर सुगंध वरसायैं तैं।
संपति सुरेसहू की फीकी सी लगत सेस,
बरनैं बने न कोटि मुषहू के गाये तैं।

(vi) और अब वियोग में भी राम को देखिए :

इमि कोप सहित रघुपति उदार।
गहि वान बहुरि उर किय विचार॥
ए मृगी नैंन सिय दृग समान।
यह दया लागि त्यागैं न वान॥

हुव उदय चंद्र मंडल प्रचंड।
जिमि प्रलय काल को मारतंड॥
लषि ताहि राम बोले बिहाल।
यह उदय भानु मंडल कराल॥

सौमित्र विलोकहु ताहि तात,
निजि किरणन तैं मम दहत गात।
कहुं सीतल तर छाया निहारि,
तिहि सेवन कीजै निकट वारि॥

(vii) इस ग्रन्थ में और भी अनेक प्रसंगों का उत्तम वर्णन मिलता है।

अहो वालि के नंद आनंदकारी।
दसग्रीव तें संधि जो में उचारी॥
करी तैं वलब्बीर के नाहि अब्बैं।
कहो भेद मोसों महावाहु सब्बै॥

तबै बालिको पुत्र हू यौं अतुल्ल्यौ।
करज्जोरि के राम सो बैन बुल्ल्यौ।
दसग्रीव सों सर्वथा संधि नाहीं।
धरो जुद्ध की चाहना चित्त मांही॥

यह ग्रन्थ वास्तव में विचित्र है। इसमें भावनाओं का मानवीकरण किया गया है। काव्य की दृष्टि से भावों का यथातथ्य चित्रण इसकी विशेषता कही जा सकती है और यही कारण है जिससे कथा के आध्यात्मिक प्रसंग जो सामान्यत: बाल और उत्तर कांड में आते हैं हटा दिये गये हैं। हो सकता है कवि को तुलसी के बाल और उत्तर कांडों के ये प्रसंग उपयुक्त प्रतीत नहीं हुए हों और इसीलिए अपने पूर्व के राम-कथाकारों में तुलसी के नाम का उल्लेख भी नहीं किया हो। कई स्थानों पर जब कवि कल्पना और अलंकारप्रियता की ओर अग्रसर होता दिखाई देता है तो कविवर केशवदासजी का स्मरण हो आता है। छंदों की विविधता में भी कुछ ऐसा ही आभास होने लगता है। शुद्ध काव्य की दृष्टि से यह पुस्तक एक उच्च स्थान की अधिकारिणी है और कवि की प्रतिभा की द्योतक है। साथ ही इसमें प्रबन्ध काव्य का निर्वाह भी बड़ी चतुराई के साथ किया गया है।

कुछ फुटकर कविताओ में ऐसे प्रसंग भी कवियों द्वारा लिये गये हैं जैसे व्रजेस का 'रामोत्सव' अथवा रामनारायण का 'जानकीमंगल'। डीग में मैंने रामनारायण के लिखे तीनों मंगलों को देखा—पार्वतीमंगल, जानकीमंगल तथा राधामंगल। काव्य अच्छा है, उदाहरण अन्यत्र दिए हैं।

राम-भक्ति संबंधी काव्यों के अतिरिक्त कृष्ण-भक्ति के काव्य भी मिलते हैं। कृष्ण की भक्ति संबंधी कविता के कई रूप प्राप्त होते हैं—

१. लीलाएँ। २. भ्रमरगीत। ३. राधामंगल।
४. कृष्ण के जीवन की सम्पूर्ण कथा।

पहले कुछ लीलाएँ देखें—

१. **नागलीला**—बख्तावरसिंह की दानलीला के उदाहरण शृंगार काव्य के अन्तर्गत दिये जा चुके हैं। दानलीला का एक अन्य संबंधित प्रसंग देखिये—

अथ दानलीला लिख्यते—

अजब महबूब गोकुल में किया घर नंद का रोशन।
धरें सिर मुकुट सुवरन का जराऊ ऊजरा कुंदन॥
रवा शुद ओढ पीतांबर सुवह दमसूय विंदावन।
अजायब नौ जवां सुन्दर खिलायै जुल्फवर आनन॥
सकेले गोप के लड़के लई सब धेन आगू धर।
अनूपम बांस की मुरली बजावत है मधुरतानन्॥

अगर जो नाहि तुम असी नचावत नैन हो काहे ।
करत मुसक्यान की बतियां चलत महकाय की चालन् ।।

दानलीला के इस एक ही उदाहरण में कई बातें दिखाई पड़ती हैं—

१. विदेशी शब्दों का प्रयोग—महबूब, रोसन (रोशन) रवाशुद, अजायब (अजीब का बहुवचन) जुल्फ ।

२. कुछ बहुवचन—मधुरतान : एक वचन; मधुरतान : बहुवचन । विदेशो और तत्सम शब्दों का योग—जुल्फ (विदेशी) वर (तत्सम)

३. कविता साधारण कोटि की प्रचलित भाषा में लिखी गई है ।

४. मुहावरेदार भाषा में काव्य-योजना ।

५. विचित्र प्रयोग—'मुसक्यान की बतिया'; 'चलत चालन' ।

६. संभवत: यह काव्य बख्तावरसिंहजी की अपनी रचना है क्योंकि इसमें कवि-प्रतिभा कम है, व्यावहारिकता अधिक ।

२. नागलीला—

नाथ के बाहर कूं लाये ।
सकल वृज देखन कूं धाये ।
अमर घन नभ मांही छाये ।

फन फन नाचत कृष्णजी बंसी लीनी हाथ ।
जो फन ऊंचौ उठत नाग को तापर मारत लात ।।

बजावत गंधर्व दै ताली ।
बसत इक जमना में काली ।

आज भी कृष्ण की नागलीला बहुत प्रचलित है। मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन आदि ब्रज के प्रसिद्ध स्थानों में जाने पर पंडे, चौबे आदि इस प्रकार की ही लीलाएँ सुना कर भक्तों को मुग्ध करते हैं। मैं अपने प्रवास काल में जब ब्रह्म-देश के रंगून नामक नगर में था तो ब्रज के ३-४ पंडे वहाँ भी पहुँचे थे और मार-वाड़ियों के घर जा जा कर इसी प्रकार की दानलीला, नागलीला, मानलीला, चीरहरणलीला आदि सुना कर भक्ति-भावना का संचार करते थे और अपने लिए पुष्कल दक्षिणा भी एकत्र कर सके थे। इन लीलाओं का गायन अब कम होता जा रहा है क्योंकि पहले तो कृष्ण-भक्ति में ही कमी है और गाने के स्थान में तो केवल सिनेमा के चलते हुए गाने ही सुने जाते हैं। किन्तु आज से २०-२५ वर्ष पहले इन लीलाओं का यथेष्ट प्रचार था—रास, गायन दोनों रूपों में ।

३. अलीबख्श द्वारा लिखी कृष्ण की अनेक लीलाएँ[1]—

१. मुरली—

श्याम की मुरलिया मैं हर लाई अरी हेरी दैया श्याम की
अरी हांरी माई श्याम की ।
मैं याकूं नाहक हर लाई ना थी मोरे काम की......
हाय ना थी मोरे काम की ।
या ब्रज बीच बसुरिया बैरनि तैं राधे बदनाम की
हाय तैं राधे बदनाम की ।
श्याम की मुरलिया................................
कलपत कृष्ण मुरलिया कारन मैं नै दया न नाम की
मैं पापिन नित पाप कमाये चोर भई ही राम की
अलीबख्स निस दिन भज भैया लै माला हरनाम की
श्याम..................

२. माखन चोर—

दधि चोरत पकरचो गयो सुरी देखौ माखन चोर ।
अब आयौ है दाव मैं सु तेरी डारूं गाल मरोर ।।
तेरौ डालूं गाल मरोर चोर तैं नित मेरौ माखन खायौ ।
तू रोजीना भगजाय थो सुसरे आज दाव मैं आयो ।
चलि तेरी मैया पास लै चलूं भलो भुखमर्यौ जायो ।।

३. स्वाभाविक वर्णन की छटा देखें—

लालारे मोकूं दही विलोवन दे अरे तू माखन मिसरी लै ।
दधि की मथनिया सनी परी है बासन धोवन दै ।
माखन मिलगयो सब भागन में दधि और विलोवन दै ।।
लाला रे मोकूं.......
दधि की रेनी जब रस आवै रई डबोवन दै ।
चैन लैन तू दे नहिं दिन में रैनि न सोवन दै ।।
लाला रे मोकूं......
अलीबक्श को दिल धड़कत है मत याहि रोवन दै ।
लाला रे मोकूं......

[1] महाराजा अलवर के निजी पुस्तकालय में प्राप्त बड़े आकार के पन्नों वाली इस पुस्तक में सुन्दर स्पष्ट अक्षरों में कृष्ण की अनेक लीलाएँ लिखी गई हैं।

४. मुरली और माला—

बजन लगी रे देखो बैरनि बसुरिया।
कूक सुनत उठी हूक पसुरिया॥

तोरी मुरली देदे मोहि कि कान्हा मैं समझाऊं तोहि।
तू तेरी मुरली देदे मोकूं मैं अपनी माला दऊं तोकूं।
बदलन के मिस आंऊगी ज्यौ भरम करै ना कोय॥
तोरी मुरली......

और मुरली लेने पर—

बस मुरली ते मतलब मेरो कहा काम अब कान्हा तेरौ।
मेरो गूंठो हू ना जाय कि देखौ बाट रह्यौ है जोय॥
तोरी मुरली......

५. माता से शिकायत ('खडी बोली के रूप सहित')—

मैं तो ना जाऊं री मोरी माई मोरी राधे ने बंसी चुराई।
हम जमुना पर धेनु चरावत वह जल भरने आई॥
मुरली मोरी लैगई हरि के विरषभानु की जाई॥ मैं...

दो दमरी की माला देगई छल कीनौ छलहाई।
श्याम सरवसोने की मुरली सुघर सुनार बनाई॥

भवैं कमान तानि श्रवनन लगि मीठी सैन चलाई।
तकि कर तीर दियो मोरे तनकैं लीनो मार कन्हाई।
मैं तो ना जाऊं.......

इस प्रकार इस कवि ने अपने भाव-विदग्ध हृदय से कृष्ण लीला के अन्तर्गत अनेक प्रसंगों को लिया है।[1]

४. **बृज विलास**—वीरभद्र[2] कृत मोटे अक्षरों में लिखे इस ग्रन्थ के केवल १६ पत्र ही उपलब्ध हो सके—

अति सुन्दर ब्रजराज कुमारा। तात मात के प्राण अधारा॥
आनद मगन सकल परिवारा। ब्रजवासिन की प्रीति अपारा॥
लीला ललित विनोद रसाला। गावै सुने भाग तिंहि भाला॥

---

[1] इस कवि की कविताओं का जो हस्तलिखित संग्रह श्री महाराजदेव अलवर के पुस्तकालय में है उस बारे में श्री महाराजदेव ने स्वयं ही कहा था, और 'प्रिंस अलीबख्श अॅव मंडावर' कहते हुए इस मुसलमान कवि की कृष्ण भक्ति का परिचय कराया था। उनके पुस्तकालय में इस प्रकार के अनेक हस्तलिखित ग्रंथ मिले जो सम्भवत: समर्पण के पश्चात् वहीं पुस्तकालय में बन्द हो गये और आज तक प्रकाश में नहीं आ सके।

[2] यह पुस्तक भी माजी अमृतकौर जी के पठनार्थ लिखी गई थी।

यह पुस्तक व्रजवासीदास की 'व्रजविलास' शैली पर 'चौपाई' छंद में है। बालक कृष्ण की एक झांकी—

छिनक चढ़े माता की कनियां। कबहुंक रज में लोटत सनियां॥
कबहुंक बागौ बन्यौ चिकनिया। कबहुंक सूथन कबहुंक तनियां॥

कृष्ण की एक शृंगारमय लीला देखिये—

घर में पैंठत चोर विलोक्यौ। द्वारौ आय बगरे कौ रोक्यौ॥
अरबराइ हरि बाहर आये। जोवन बल ग्वालिन गह पाये॥
लै उर बीच प्रेम सों भेटी। काम तपन की वेदनि मेटी॥
तिहीं ठौर हरि कीन्हीं चोरी। देषि ठगी सी व्रज की गोरी॥
भेटि भुलावल रह्यौ न तन को। परसत छीन लियौ मन धन कौ॥
कुचकुंकम उर लियौ लगाई। अधर सुधारस पियौ अघाई॥

एक दिन कृष्ण को पकड़ने के लिए एक युक्ति सोची गई। एक गोपी से उसके पति ने कहा कि तू कृष्ण को अपने पास बुला लेना, फिर—

ऐंचि किवार दीजियौ तारौ। भागि जाय नहिं मेरौ सारौ॥
पकरि जाइ नीकै करि मारूं। दूध दही कौ स्वाद निकारूं॥

और कृष्ण वहां पहुँच भी गये। किन्तु गोप की मां ने अपनी हड़बड़ाहट में उस कमरे का ताला लगा दिया जिसमें गोपी का पति कृष्ण को पकड़ने के लिए छिप रहा था। परिणाम यह हुआ कि गोप रात भर बन्द पड़ा रहा, दरवाजा खोला ही नहीं गया—

यह लीला अति मधुर सुधासी।
कहत सुनत छूटै जम फांसी॥

यह व्रजविलास वीरभद्र (जिसकी फागलीला का वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है) नाम के कवि का बनाया हुआ है और कवि कहता है कि—

कहत सुनत सुख ऊपजै, बाल हंसै मन मांहि।

इस पुस्तक को सम्पूर्ण करने की तिथि कवि ने स्वयं ही 'असाढ़ सुदी ९ संवत् १९११' बताई है। इसमें सन्देह नहीं कि इस पुस्तक का आकार बहुत छोटा है परन्तु इसमें व्रजभाषा का वह स्वाभाविक रूप मिलता है जो भरतपुर में जन-साधारण के द्वारा बोला जाता है। अलंकारमुक्त इस कविता में मुहावरों और आडम्बररहित भाषा का लालित्य देखने को मिलता है। इसमें कृष्ण को

---

[1] ऐसे प्रसंग शृंगार के अंतर्गत भी लिये जा सकते हैं। वास्तव में कृष्ण लीलाओं में भक्ति और शृंगार का अलग करना बहुत कठिन है।

उन्हीं लीलाओं का वर्णन है जिनमें गोपों का मजाक बना कर उन्हें परेशानी में डाल दिया गया है। इस प्रकार के दो तीन और भी उदाहरण इस पुस्तक में मिलते हैं। कृष्ण एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि बिचारा गोप बहुत कुछ सोचने पर भी कुछ नहीं कर पाता। उल्टा खुद ही ताले में बन्द होकर रात भर परेशान होता है और उधर चोर कृष्ण उसी की गोपी के साथ एक कमरे में आराम से अपना समय बिताते हैं !

भ्रमर-गीत संबंधी पुस्तकें भी कुछ मिलती हैं।

बिरह विलास— रसनायक[1] कृत—इनकी कविता बहुत उच्चकोटि की है। पुस्तक में एक दोहे के बाद एक सवैया या कवित्त दिया हुआ है जिसमें दोहे का स्पष्टीकरण अथवा उसकी व्याख्या है। इस पुस्तक में पचास पत्र हैं और भ्रमरगीत प्रकरण में तो वियोग तथा करुणा का एक विशद और अनुकरणीय सामंजस्य है।

मधुकर हमें न सोच कछु जो उन करी निदान।
सोच यहै अचरज बडो बिरद बिसारचौ कान्ह ॥

अब कवित्त में इसका स्पष्टीकरण देखिए—

सोच न हमें है गुन औगुन किये कौ कछू,
सोच न हमें है दधि माषन उजारे कौ।
सोच न हमें है रसनायक अमोही भये,
सोच न हमें है कछू मथुरा सिधारे कौ॥
सोच न हमें है कीनी कुबिजा भले ही प्यारी,
सोच न हमें है जोग ज्ञान दिठ धारे कौ।
गोपीनाथ बाजि गोपी रोवत ही छोडीं ताको,
सोच है हमारे ऊधो बिरद बिसारे कौ॥

एक अन्य उदाहरण—

ब्रजनारी भोरी तऊ परै न अलि इहि पेच।
कहा ठगत ठगिया अरे जोग ठगोरी बेच॥

---

[1] रसनायक ने अपने को "काम्यवनस्थ" लिखा है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यह कविश्रेष्ठ कामां के रहने वाले थे जिसे कामवन भी कहते हैं। और इसी दृष्टि से इन कवि महोदय को मत्स्य प्रदेशीय माना गया है। 'कामां' वर्तमान भरतपुर जिले की एक तहसील है।

कवित्त में स्पष्टीकरण—

षेप भरि लाये लादे डोलत पुराननि हीं,
जिनस अथाही तामें दाम को लगाय है।
ज्ञान ही कों गोंभ तुम आन के उतारी यहाँ,
अबला बसत तिन्हें कैसे छवि पाय है।।
निगुन करेंगी कहा गुननि रही हैं भरि,
प्यारे रसनायक के प्रेमहि पुराय हैं।
भोरी लषि गोपीन को ठगत कहा है जाउ,
जोग की ठगोरी ऊधौ व्रज न विकाय है।।[1]

गोपियों की अवस्था देखिए—

एक बेर आयें व्रजे सुंदर स्याम सुजान।
सुरत समें न रुसाई हों मोहि तिहारी आन।।

कवित्त

एक बेर आय व्रज विरही जिवाय लीजै,
पाछै मन मानेंह सोव कीजै सचुपाय हों।
मान न करोंगी रसनायक धरोंगी धीर,
गुन ही गनोंगी पै न ओगुन मनाय हों।।
पीवत अधर देत दैहू न कठिन जुग,
कुच ही धरो न अंग हरुवै छुवाय हों।
सोहैं है हजार मोहि नंद के कुमार अब,
सुरत समय न हा हा रावरे रिसायहों।।

उस समय की फूलों से गुथी वेणी का अब क्या हाल है—

सुमन सनेही स्याम ने बैनी गुहे बनाय।
ते छूटत मधुकर मनों फूलझरी लगिजाय।।

कवित्त

कवरी कलीनि जे पे उन ही गुहीही तेब,
सूल सी सलत हिये दारुन अरतु हैं।
चुनि चुनि कुसुम जे सेजही बिछाये तेब,
सेल लों लगत हाय भारिही धरतु हैं।।
रंग नये राते रसनायक अधिक ताते,
छूटि छूटि पोधन तैं छिति ही भरतु हैं।
माधो बिन ये ही बन बगरि अनल ऊधो,
फूल न गिरत फूलझरी सी झरतु हैं।।

---

[1] सूरः 'जोग ठगोरी ऊधो व्रज न बिकाई है।"

यहां विरह-विलास का पूर्वार्द्ध समाप्त हो जाता है और उत्तरार्द्ध आरम्भ होता है जिसमें ऊधो को लौट कर संदेश देने के लिए कहा जाता है।

ऊधव जाहु जरूर ही, कहियौ इतौ संदेस।
भले धरी[1] दासी ब जिय लावत कहा अंदेस॥

कवित्त

केतिक संदेसे कहि कहि के भिजाये तौहु,
आवत न काहे एती विनती सुनाइयौ।
कुविजा धरे की कछू लाज जो करो तो हाहा,
सोहै है हमारी इन गौहै उठि धाइयौ।
कित यौ विपिस्यिान रसनायक परे हैं प्यारे,
प्रान ह्वौ हमारे नैंकौ धीरज धराइयौ।
जाहु जू जरूर ऊधौ हमरी तरफ ही में,
नीक समझाय कान्हें बाह दैके ल्याइयौ।

अब ऊधव संदेश सुनाता है—

एक रंगे रंग रावरे वेही रंग लषात।
प्रेम प्रीति लाला करत निसदिन उन्हें बिहात॥

कवित्त

को इक गुवाल जाय मिलवै बछर लैलै,
कोऊ देदे हेरी धेनु हेरत विहातु है।
कोऊ मिलि मंडली ह्वी बांटि बांटि छाके खात,
कोऊ दूध गोरस ह्वो ढोर भागे जात है।
कोऊ कहै कान्ह रसनायक बुलावै हरि,
कोऊ कहै बोलि भैया काहे इतरातु है।
तुम बिन बिचारे वे बिरही विकल नाथ,
अैसे दिन राति ब्रजवासिन विहातु है।

और कृष्ण भी इसी में अपना स्वर मिलाते हैं—

सुन ऊधो ब्रज जनन की मो सुधि विसरत नांहि।
सदा रहत जिय जानिहों निसदिन उनही मांहि॥

कवित्त

कुंजन की छांह चारु जमुना कौ तीर वह,
ग्वालन की भीर संग गोधन को चारिवो।
बाबा नंद जू कौ प्यार मैया कौ जिमावन त्यों।
बांसुरी छिनाय वह राधे कौ निहारिवौ॥

---

[1] "धरेजा" विवाह की यह प्रणाली है जब किसी स्त्री को बिना विधिवत् वैवाहिक संस्कार के योंही घर में डाल लिया जाता है।

रस रह केलि रसनायक करभांई जेव ,
प्रेम चतुराई वह गोपिन चितारिवौ ।
देह नियराई सब भांतिन सुहाई सोब ,
मोहि क्यों बनत ऊधो ब्रज को बिसारिवो ।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ बातें—

१. इस पुस्तक के दो अंश हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध । पूर्वार्द्ध में ऊधव ब्रज में ही रहते हुए गोपियों की बातें सुनते हैं और उत्तरार्द्ध में गोपियों का संदेश लेकर कृष्ण के पास जाते हैं ।

२. विरह-विलास में सगुण-निर्गुण के वाद-विवाद का प्रपंच नहीं है और न कवि द्वारा सगुण का प्रतिपादन करने की चेष्टा की गई है । यह तो वियोग से भरी काव्य-प्रतिभा है जो भक्तों का मन मोह लेती है ।

३. सम्पूर्ण पुस्तक में दोहा-कवित्त अथवा दोहा-सवैया का क्रम चलता है । दोहे में एक बात कही जाती है और इसी बात की व्याख्या या स्पष्टीकरण कवित्त अथवा सवैये द्वारा होता है ।

४. कविता उच्चकोटि की है और भाव की दृष्टि से गोपियों की मानसिक अवस्था का हृदयग्राही चित्रण करती है ।

रसरासि पचीसी—यह पुस्तक भी भ्रमरगीत से सम्बन्धित है । पुस्तक की समाप्ति पर इसका नाम 'उद्धव पचीसी' लिखा गया है । इसके रचयिता रस-रासि हैं और सम्वत् १६२५ में ब्रजेन्द्र महाराज के पठनार्थ इस पुस्तक की प्रति-लिपि की गई थी । 'रसरासि' कवि का उपनाम प्रतीत होता है । मूलरूप में यह पुस्तक अलवर-नरेश के लिए लिखी गई थी । इस पुस्तक में ८॥ पत्र हैं और २५ कवित्त हैं । कविता उत्तम कोटि की है । सर्व प्रथम कृष्ण उद्धव को जाने के लिए कहते हैं—

परम पवित्र तुम मित्र हो हमारे ऊधो ,
अंतरविथा की कथा मेरी सुन लीजिये ।
ब्रज की वे बाला जपैं मेरी जयमाला बढी ,
विरह की ज्वाला तामैं तन मन छीजिये ।
मेरो विसवास मेरी आस रसरासि मेरे ,
मिलवे की प्यास जानि समाधान कीजिए ।
प्रीति सों प्रतीत सों लिषी है रसरीतिन सों ,
पत्रिका हमारी प्राण प्यारिन कों दीजिए ।

पत्र में लिखा था निर्गुण का उपदेश—

मोहि तुम दीनों तनमनधन प्रान जैसे ,
तैसेई समाधि साधि ध्यान धर ध्याओगी ।

अलख अरूप घट घट को निवासी मोहि ,
जानि अविनासी जोग जुगति जगाओगी ।।
प्रानायाम आसन असन ध्यान धारनां तैं ,
ब्रह्म को प्रकास रसरासि दरसाओगी ।
ऐसे चित्त लाओगी तो सुख में रमाओगी ,
समुक्ति पद पावोगी हमारे पास आओगी ।।

और गोपियाँ ऊधो पर बरस पड़ीं—

कौन लिखी पाती कौन पै पठाए तुम ,
कौन हो कहां ते आये काके मिजवान हो ।।
काकी पहिचानि रसरासि वा निरंजन सों ,
कौन सीषे ज्ञान कहा भूले अवसान हो ।।
कौन साधे मौन धरि बैठे मौन कौन काके ,
नैन श्रोत मए भए अजहूं अजान हो ।।
अब हम जानी तुम हो दिवान कूबरी के ,
पच्छ करि आये हो पै मच्छर समान हो ।।

और बताओ तो ऊधो—

ऊधो कहो को है जदुनाथ द्वारिका कौ नाथ ,
कौन वसुदेव कौन पूत सुखदाई है ।
कौन है निरंजन अलख अविनासी कौन ,
ब्रह्म हूं कहावे कौन जाकी जोति छाई है ।
इनसौं हमारी कहो काकी पहिचानि जानि ,
यातैं रसरासि बातैं मन में न भाई है ।
प्रीतम हमारो मोर मुकुट लकुट वारो ,
नंद को दुलारो स्याम सुंदर कन्हाई है ।

गोपियों का अनुमान है कि कृष्ण को कुब्जा के कारण आने में संकोच है ।

कौन भांति आइबो बनत ब्रजमंडल में ,
नईं प्रानप्यारी वहां अति अकुलावेगी ।
जोपै रसरासि याको संग लिये जैये तो ,
उनके हिये में कैसे यह धौं समावेगी ।
ऐसे अैसे अंदेसे करत वह कारो कान्ह ,
याही तैं न आयो जानि दासी दुख पावेगी ।
कंचन की वेली अलवेली कूबरी कौं कोऊ ,
गूजरी गमेली उहां नजर लगावेगी ।

किन्तु गोपियां कृष्ण को आश्वासन देते हुए संदेशा भिजवा रही हैं—

एक बेर फेरि व्रजमंडल में आओ कान्ह,
अब सब सूधी भई मांन हूं न करेंगी।
दान हूं मैं नेक हूं कहूं न झगरेंगी अरु,
माखन मलाई कूं छिपाइ कें न धरेंगी।
नई प्रानप्यारी हू की कांन हम मानि लैहैं,
बाकी हू रहैगी रसरासि वासौं डरेंगी।
दोऊ कर जोरि जोरि कोरि कोरि चाइन सों,
दौरि दौरि कूवरी के पाइन परेंगी।

इससे अधिक बिचारी गोपियां और क्या कह सकती थीं। और ऊधौजी हमें तो सन्तोष है—

कहां हम गोकुल के गोपी गोप ग्वाल बाल,
चंचल चवाई चोर त्यों कठोर ही के हैं।
कहां वे कमल दल नैंन कमला के नाथ,
एक साथ चाखे खारे खाटे मीठे फीके हैं।
तीनों लोक मांझ धन्य धन्य व्रजवासी भए,
जीवन मुक्ति रसरासि प्रान पीके है।
ऊधौ जी हमारे इहा दोऊ हाथ लाडू आहे,
आवे तऊ नीके न आवे तऊ नीके हैं।

अब तो ऊधौ अपना ज्ञान ध्यान सभी भूल गये और कृष्ण के पास पहुँचे।

राधेकृष्ण राधेकृष्ण एक रटि लागिरह्यौ,
रोवत हंसत पुलकत छवि छायो है।
छकनि छकायौ वाको चित चिकनायौ देखि,
कान्ह कौ सुहायौ दौरि गरे सौं लगायौ है।

उद्धव सिफारिश करते हुए कहते हैं—

तुम अरु वे तौ सदा रहत हिलेई मिले,
सो तौ रसरासि कथा रसिकन गाई है।
कहा मन आई यह सामरे कनाई इहां,
आप छिपि रहे उहां राधे को छिपाई हैं।
अतः जाह सुधि लीजिये कि लीजिये बुलाइ उन्हें,
भरे रसरासि प्यारु वासन सों त्वैरहै।

'राधा' से सम्बन्धित दो स्वतंत्र पुस्तकें मिलीं—एक राधामंगल और दूसरी राधिकाशतक। राधिकाशतक एक खण्ड काव्य है और अलवर के कविश्रेष्ठ जयदेवजी का लिखा हुआ है। अलवर दरबार में जयदेवजी का बहुत मान था और इनकी यह पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। राधामंगल गोसाईं रामनारायण द्वारा

लिखित एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें मंगलाचरण, भूमिका, गुरुवंदना, आत्म-परिचय आदि हैं। इस पुस्तक में ११ सर्ग हैं—

१. प्रस्तावना
२. कृष्ण अलक्ष जन्मोत्सव
३. राधामंगल
४. पूतना चरित्र
५. अन्य लीलाएं
६. राधे सगाई
७. गोपोत्सव प्रतीत परीक्षा
८. कृष्ण प्रेम परीक्षा
६. रास क्रीड़ा
१०. राधिका विवाह वर्णन
११. विविध

राधिका विवाह कवि-कल्पना-प्रसूत है क्योंकि कहा जाता है कि राधा और कृष्ण का विवाह कभी हुआ ही नहीं। कवि ने प्रार्थना के उपरान्त अपने वंश का वर्णन किया है जिससे प्रतीत होता है कि ये लोग भरतपुर राज्यान्तर्गत बयाना, खोह आदि स्थानों में रहे थे और फिर राधाकुण्ड जाकर रहने लगे। वहां भीखाराम के पुत्र रूप में कवि रामनारायण उत्पन्न हुए—

प्रगटें भीषाराम के सुकृत कियें सुत एक।
रामनारायण जोतसिन कियौ नाम अविशेक॥

पुस्तक-प्रयोजन के संबंध में कवि का कहना है—

मेरे राधाकृष्ण की द्रढ़ उपासना चित्त।
यातें भाषा में करूं राधामंगल मित्र॥

स्थान-स्थान पर काव्य की गति और भाषा की स्वच्छता देखने योग्य हैं। कृष्ण को प्रार्थना—

नील सरोरुह स्याम काम शत कोटि लजावत।
अरुण तरुण वारिज समान दृग अति छवि पावत॥
पीत पटित कटि कसन दसन दामिनी विनिंदित।
आनन अरुण उद्योत ज्योति राका शशि निंदत॥
मन चोरत मुनि मुसक्यात मृदु नेत नेत श्रुति कहत नित।
जन जान गुसांई राम उर करहु वास नित हित सहित॥

यह कवि महोदय महाराज जसवन्तसिंह के आश्रित थे ।[1] पुस्तक में सरस्वती प्रार्थना, गणेश प्रार्थना, गुरु प्रार्थना के उपरान्त भूमिका दी गई है। कृष्णावतार के कारण भी बताए गए हैं और गोकुल की लीलाओं का वर्णन है। साथ ही पूतना आदि के वर्णन यथास्थान दिये गये हैं। राक्षसों के हनन की कथा भी है। राधाकृष्ण के मिलन की तैयारी का एक चित्र देखिये—

आये आज स्याम बरसाने राधे यह सुधि पाई।
देखन चली सजे पट भूषण अष्ट सखी बुलवाई ।।
चन्द्रावली चन्द्रभागा चन्द्रानन चतुर चमेली।
चन्द्रकला चंपा चिराक सम ललित विसाखा हेली ।।
ए निज सखी और बहुतेरी तिनके मध्य प्रिया जी।
चलीं वदन सोभा विलोक त्रिय लोक ऊपमा लाजी ।।
कहे गुसाई रामनारायण यह प्रभु अकथ कहानी।
सादर सुनहिं परम सुख पावें होय परम सुज्ञानी ।।

अब राधा और कृष्ण के विवाह का भी वर्णन देखिये जो ब्रज में प्रचलित पद्धति के अनुसार बरसाने में वृषभानुजी के यहाँ सम्पादित कराया गया है। शादी, बढ़ार आदि सारी बातों का वर्णन कवि ने अपनी कल्पना के आधार पर किया है—

---

[1] ब्रज निकट भरतपुर नाम जासु को नृप जसवंत कहाये।
गढ़ वज्र समान असंक किलो अरि देस नरेस डराये ।।

पुस्तक निर्माण का समय भी है—

अब एसु विचारो सुन रीत अंक जिमि धारो—
त्रयतीस बहुरि उन्नीस वामगति जोति सहेत प्रमानों। (१९३३)
यह है प्रमांण श्रुति सार अलौकिक जो सुजान जन जानें ।।
सित पक्ष ज्येष्ठ की मास पंचमी अति पुनीत तिथि जानों।
रविवार पुष्य नक्षत्र योग वज्र कौलव करण बखानों।

और अपने संबंध में लिखा है—

हों राधाकुण्ड निवासी।
भो फेर भरतपुर वासी ।।

और अन्त में दिया हुआ है—

"इति श्री राधिकामंगल गुसाई रामनारायण विरोचते समाप्तम्। शुभम्भूयात्। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु। अथ शुभ संवत् १९३३ साके १७९८ भाद्रपद मासे शुक्ल पक्षे १३ भृगु वासरे लिखितं पं० नंदकिशोर लिखायतं श्री रामनारायण गुसाई ।। शुभम् ।।"

सुर पूजा निज निज पाई।
फिर ग्रांचर गांठ जुराई ।।
वृषभान राधिका पान लेह वर कन्यादान कराये।
सब नेगी नेग चुकाये ।।
दुज दान गुसाई पाये।
दुलहा दुलहनी समेत चले जनमासे कृष्ण लिवाये ।।

इस वर्णन में निम्न पंक्ति 'टेक' के रूप में मिलती है—

'वर समै जान वृखभान धाम ब्रह्मादि देव सब ग्राये।'

इसके उपरान्त—

जनमासे में जायकें कियौ वोहीत से दान।
ग्रब बढ़ार वरनन करूं ताय सुनौ दे कान ।।

पत्तल वांधने ग्रौर खोलने की क्रिया पूर्ण रूप से दिखाई गई है ग्रौर साथ ही बढ़ार का पूरा वर्णन किया गया है। पत्तल खोलने का थोड़ा सा नमूना देखिये ग्रौर देखिये कि किस प्रकार गोपियां बांधी जा रही हैं—

छूटी तरकारी पातरि झारी ग्रौर सुहारी भात धनी।
बांधों ग्रत प्यारी मांग तुम्हारी वैंनी कारी जात बनी ।।
छूटे दग दौने सेव सलोने नौन ग्रलोने भोग बने।
बंध्यो भोवां के पलकन बांके बिन सर सांके काम सने ।।
छूटे जो दाने घ्रत के साने ग्रौर मखाने खांड गरे।
बंधौ सब गोती ग्रौ नथ मोती सुंदर ज्यौती नैन खरे ।।
बांधौ जु हुलासौ हंसो ग्यासो मेदकोरि मतवारी कौ।
पुन बांध सुपारां रूपां तारां रुनकौ लक्ष्मी नारी कौ ।।
ग्रब जैंग्रों भाई कहै गुसाई सबै लुगाई बांध दई।

यह वर्णन इस प्रदेश की प्रचलित प्रणाली के अनुसार सभी विस्तारों सहित मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी बरात में जाने का सम्पूर्ण दृश्य सामने ग्रा गया हो। वर ग्रौर वधू गोकुल पहुँचते हैं ग्रौर यशोदा उनको लिवाती है ग्रर्थात् गृह प्रवेश कराती है। इसके पश्चात् की कथा भी है ग्रौर लिखा है कि एक बार नंद ग्रौर यशोदा कुरुक्षेत्र गये जहां से वे वसुदेव ग्रौर देवकी को ग्रपने साथ लिवा कर ब्रज लाये। कथा को चित्रित करने में कवि ने ग्रपनी कल्पना से सभी कमियों को पूरा कर दिया है। कहानी में ग्रनेक बातों के विस्तृत विवरण है ग्रौर कवि ने सरस प्रणाली में प्रबंध काव्य का निर्वाह किया है।

मत्स्य में शिवजी की भक्ति ग्रौर पूजा ग्रब भी यथेष्ठ मात्रा में होती है। शिव चतुर्दशी की रात्रि को ग्राज भी स्थान-स्थान पर जागरण किया जाता है

और जोगी लोग बड़े उत्साह और प्रेम के साथ 'व्याहुलौ' गाते हैं। पार्वती के कन्यादान के अवसर पर भक्तलोग कन्यादान के रूप में दक्षिणा चढ़ाते हैं। हमारे प्रसिद्ध कवि सोमनाथ ने भी 'महादेवजी की व्याहुलौ' नाम से एक पुस्तक लिखी है जिसमें ११८ पत्र हैं तथा ५ उल्लास हैं। इस पुस्तक की और 'ध्रुव विनोद'[1] की शैली एक-सी है। कवि को ५ उल्लास या ५ सर्गों से कुछ विशेष प्रेम प्रतीत होता है क्योंकि उनकी अनेक पुस्तकों में यह संख्या ५ ही मिलती है। इस पुस्तक की कविता कवि की कला के उपयुक्त ही है।

'महादेवजी की व्याहुलौ' संवत् १८१३ में लिखा गया—

संवत ठारैसै बरस, तेरह पौष सुमास।
कृष्ण सुदुतिया बुद्ध दिन, भयौ ग्रंथ परगास॥

कथा का आरम्भ हिमालय की पुत्री पार्वती के वर्णन के साथ होता है—

है मैंना नाम भांवनी, ताकें सुत मेंनाक कहायौ।
अरु हेम रंग उपजी है कन्या, छबि कौ वरनि बनायौ॥

पार्वती के रूप का वर्णन मर्यादा के अन्तर्गत किया गया है और कहीं भी पूज्य भाव को ठेस नहीं लगने दी है, साथ ही अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। उत्प्रेक्षा देखिए—

पुनि भरी मांग मुकतनि सों सुन्दर भरि सिंदूर ललाई।
मनु उडगन पांति गगन में राजें संजुत सोम सवाई॥
पुनि मृदु कपोल के निकट लायकें कुटिल अलक छटकाई।
मनु इंदीवर मकरंद पान कों सुख अंबुज ढिग आई॥

पहले उल्लास में पार्वती के जन्म का वर्णन है और दूसरे में 'भवानी शंकर-सम्बन्ध वर्नन' है। प्रकृति-वर्णन का एक नमूना देखिए—

बहु शृंगें जाकी मुकट प्रभा की सरद छटा की दुति जीतें।
शीतल जलवारे श्रवत अपारे झिरना भारे लहरी तें॥
द्रुम पुंजनि बेली जिती सुहेली पुहपनि मेली थिर थहरें।
मकरंद बटोरें पवन झकोरें जंह चंहु ओरें मृदु फहरें॥
फहरें सु प्रभंजन गरमी गंजन पग दुपभंजन धुनि बोलें।
अरु शृंगनिरूरा नचत मयूरा तपिनि हजूरा मन पोलें॥
बहु विधि के चहरें मृग छवि छहरें आनद लहरें लाह हिये।
तपसी तिहि कंदर बसि कें अंदर बन फल सुंदर पाइ जियें॥

---

[1] विवरण अन्यत्र देखें।

शिव के नृत्य का भी एक वर्णन देखें—

सुनि कें संदेस, नाच्यौ महेस, विसरचौ अटूट, सिर जटाजूट।
गंगा तरंग, बाढ़ी उमंग, चमचम्यो चंद, लहि दुति अमंद।।
लगि मुंडमाल, अरु द्विरद षाल, मिलि षडषडात, गति लेत जात।
च्वै अमृत धार, ससि तें सुढ़ार, उर परित आनि, मुंडनि मिलानि।।
अरु जंत्र टूटि, पुनि मुंड कूटि, छिति गिरत पुट्टि, हंस अट्ट अट्ट।
घुमरीय लेत, डग भूमि देत, फुंकरत संग, उद्धत भुजंग।।
आनंद लद्धि, चपि भुजनि मद्धि, फन कों हलाइ, नच्चे सुभाइ।
डमरू डमंक, सज्जति अतंक, सिंगी रसाल, वाजंत गाल।।
अनगन विहंग, बोलें सुढंग, मनु करत गान, ह्वै सुख निधान।।

इस ग्रंथ में भी कवि की वर्णन-प्रतिभा अति उच्च कोटि की है। पार्वती तथा शिव दोनों के वर्णन बहुत विशद और सुन्दर रूप में दिए गए हैं।

तीसरे उल्लास में लग्न-पत्रिका लिख कर भेजी गई है। इस उल्लास में पार्वतीजी की प्रार्थना बहुत ही जागरूक है—

तुही ब्रह्म की सिद्धि विद्या सयानी। तुही ज्ञान विज्ञान की वृद्धि सांनी।
तुही चंद्र में चन्द्रिका सुद्द जानी। प्रभा भानु में जो सबै यों वषानी।
तुही वारुनी, शक्ति है लोक मांनी। तुही भोग में इन्द्र की राजधानी।
तुही है सुधा और स्वाहा सयानी। तुही जोग ज्वालामुखी जोगधानी।
तुही रिद्धि औ अष्टहू सिद्धि गांनी। तुही सर्वदा राजती ह्वै भवानी।

× × ×

महिष्षासुरे मर्दिनी देवि चंडी। जगै जग्ग में जोति जाकी अषंडी।
तुही आसुरी किन्नरी नागकन्या। तुही जच्छनी अच्छनी रूपधन्या।।

चतुर्थ उल्लास में कन्या-दान किया गया है और साथ ही बरात का आगमन तथा दावत आदि का वर्णन है। कुछ मिठाइयों का स्वाद लीजिए—

बनी असरमी सेर बडी बरफी अरु पेरा।
मोदक मगद मलूक और मट्ठे पहंसेरा।।
फैंनी गूंझा गजक भुरभुरे सेव सुहारे।
जोर जलेबी पुंज कंद सों पगे छुहारे।।
निकुती छोटी छांट मंजु मुतिलडू बनाये।
सरस अमृती षुरमा सुंदर वेस सजाए।।

और साथ में—

तिनमें दई मिलाइ भंग की करि कें गोली।

दूलह के रूप में शिवजी का वर्णन, उनके नांदिया का शृंगार और बरात की तैयारी का अच्छा वर्णन मिलता है। पहले तो महादेवजी अपने असली रूप

में बैल पर बैठे चले आ रहे थे, परन्तु नगर के निकट आने पर उन्होंने भव्य रूप धारण कर लिया, जिसे देख कर सखियों ने पार्वती से कहा—

है धन्य भागि तेरो या जगमें तिनि अैसो वर पायो।
है सोरह बरस प्रमान वेस कौं महादेव सो छायो॥
अरु कोटि कोटि कंदर्पनि हू कौं दिल कौ दरप दरायो।
है अैसी और को कामिनि जाकौं लषत न चित्त चुरायो॥
तब भेष दिगंबर धारि ईसनैं औरनि कौं डरपायो।
बिनु कंचन मनि भूषन के अंगनि उनही जु लषायो॥

पाँचवें उल्लास में विदा और गणेश तथा स्वामिकार्तिकेय के जन्म की कथा है। विवाह की रीति व्रज में प्रचलित प्रणाली के अनुसार है—

तब दूधाभाती करवाई। दुहू की झूंठनि दुहुंनि षवाई।
गौने की अब रीति करावौं। गांठ जोरि केर सुष बरसावौं॥

गणेश जन्म—

एक समय मुसिक्याइ सिव लष्यौ गौरि को रूप।
एक दंत परगट भयौ, बालक तवे अनूप॥

स्वामिकार्तिकेय—

अरु संकर के बीज सों, षटमुख भयों प्रसिद्धि।
स्वामिकार्तिक नाम पुनि, तासों कह्यौ सुबद्धि॥

सबों के वाहन—

ऊंदर वाहन गज वदन, षटमुख वाहन मोर।
शिव कौ वाहन बैल है, देवी कौ हरि जोर॥

और अब शिव का दर्शन कीजिये—

जरद जटानि में फुहारें जिमि गंगाधर,
हार शेष हिरदें त्रिनेंन रूप न्यारे कौं।
गरल गरे में जोर जाहर जलूस वारो,
आधे अंग तरुनी सनेह के पत्यारे कौं।
सोमनाथ एरे उर अंतर निहारि भव,
पारावार पारत हकीकत हुस्यारे कौं।
भसम सिगारें जो लिलार पर धारें जोति,
चंद्र की कला कौ वा पिनाकी प्रानप्यारे कौं॥

इस पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ बातें—

१. काव्य के सभी उपादानों, जैसे अलंकार, प्रकृतिवर्णन, रसप्रसंग, आदि से युक्त वर्णन प्राप्त होते हैं।

२. पार्वती और शिव का श्रृंगार कहीं भी मर्यादाहीन नहीं हुआ है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि शैव था, क्योंकि स्थान-स्थान पर इसके आभास मिलते हैं। नाम तो उनका सोमनाथ था ही, साथ ही 'शशिनाथ' नाम भी उन्हें बहुत प्यारा था।

३. पार्वती की स्तुति, तांडव नृत्य और हिमालय के वर्णन विशेष रूप से अच्छे बन पड़े हैं।

४. यह वर्णन 'पार्वती मंगल' की शैली पर नहीं है। आजकल भी जोगी लोग जिस प्रकार 'व्याहुला' गाते हैं उसी प्रकार के वर्णन, वही कथानक इसमें भी मिलते हैं। यद्यपि जोगियों की तुकबंदी बड़ी विचित्र होती है, परन्तु वर्ण्य-वस्तु लगभग इसी प्रकार है।

५. व्रज में प्रचलित विवाह-पद्धति ही इस ग्रन्थ में स्वीकार की गई है। आज भी व्रजभूमि में इस ग्रंथ में वर्णित अनेक प्रथाएँ प्रचलित हैं।

खोज में कुछ शिव-स्तुतियां भी प्राप्त हुईं।

गंगाजी से सम्बन्धित दो ग्रन्थ मिले — १ गंगा भूतलआगमन कथा, २ गंगा भक्ततरंगावली।

१. **गंगा भूतलआगमन कथा** — यह कृति भरतपुर के प्रसिद्ध कवि रस-आनंद की लिखी हुई है। इसमें लगभग ९ पत्रों में २५ छंदों द्वारा गंगाजी की कथा कही गई है। इस पुस्तक का निर्माण-काल काव्य के अन्त में लिखे गये इस वाक्य से मिलता है—

'इति श्री रसआनंद विरचिते गंगा भूतलआगमन कथा सम्पूर्ण। मिति वैसाख कृष्ण २ संवत् १८९३।'

संभवतः यह प्रति स्वयं कवि द्वारा ही लिखी गई है क्योंकि उनकी लिखी गई कई अन्य हस्तलिखित पुस्तकों से इसकी लिखावट बहुत कुछ मेल खाती है। इस पुस्तक का पीछे का कुछ अंश किसी दूसरे व्यक्ति ने लिपिबद्ध किया हो ऐसा प्रतीत होता है। पुस्तक का आरम्भ प्रार्थना के नीचे लिखे दोहे से होता है—

विष्णु अंग सीतल सलिल, अज उज्ज्वलता बारि।
उठति जु गंग तरंग हैं, शिवि शिवि शब्द उचारि॥

कथा का आरम्भ अरिल्ल छन्द से इस प्रकार होता है—

एक समें श्री राम लषन दोऊ वीर हैं।
कौशिक मुनि संग गये सुरसरी तीर हैं॥
जाइ दोऊ कर जोरि वंद पद पांन कों।
करि सुचील अस्नांन दियौ बहु दांन कों॥

दैं दांन विधिवत अरपि भूसुर पूजि सनमानें सबै।
कर जोरि कौशिक कौं निहोरि बहोरि प्रभु बोले तबै॥
हे नाथ त्रिभुवन पावनी गंगा त्रिपथगा है सही।
किहि हेत तजि निज लोक ब्रह्म सरूप द्रवि भूतल बही॥

तब सारी कथा कौशिक मुनि ने सुनाई और अंत में कहा—

क्रीड़ा करहिं जलजीव नाघत शैल बन ऋतुराइ कै।
चलि हरद्वार प्रयाग काशी मिली उदधहि जाइ कै॥
तार्यौ सकल रघुवंश यह सुष देषि नृप आनंद लह्यौ।
निज उद्धरन हित यह पवित्र चरित्र रसआनंद कह्यौ॥

इस कथा के अंतर्गत सगर के पुत्रों को शाप, भगीरथ की तपस्या, गंगा की प्रसन्नता और उनके भूतल पर आने की कथा को संक्षेप में कहा गया है।

२. दूसरी पुस्तक 'गंगा भक्त तरंगावली' कवि रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद' की लिखी हुई है। संपूर्ण पुस्तक में कवि का भक्तिभाव लक्षित होता है। पुस्तक की रचना अलवर राज्य के सेनापति पद्मसिंहजी के लिए की गई थी।[1] यह ग्रन्थ अलवर में संवत् १९३५ में समाप्त हुआ।[2] ग्रंथ को कवि ने स्वयं ही लिपि-बद्ध किया था। पुस्तक में कविता की छटा दर्शनीय है। गणेशजी की प्रार्थना देखिए—

मंगल करन हैं अमंगल हरनहार,
दास मनरंजन अदासुता दरन हैं।
मुनि मन मधुप लुभाने रहैं रैन दिन,
सुन्दर सरोज हू की सोभा निदरन हैं।
देवन के देव श्री अदेव देव सेव करैं,
भेव न लहत को प्रसाद सुवरन हैं।
सेवौ कवि नायक सहायक न और अैसे।
सर्व सुखदायक विनायक चरन हैं॥

---

[1] सेनापति सुंदर सकल, पदमसिंघ परवीन।
तिन हित रामप्रसाद कवि, लिख्यो ग्रंथ रसलीन॥

[2] आनंद गुन मंगल सकल, कल मल दलन अपार।
अलवर में श्री गंग को, भयो ग्रंथ अवतार॥
५ ३ ९
संवत वाण प्रमांणियं, लोक सुनिधि उर आन। (१९३५)
१
पुनि ससि संजुत जांणिये, लिष्यो सुकवि निज पान॥

और गंगा की प्रार्थना इन पंक्तियों में देखिए—

येरे नर तेरे ये घनेरे उतपात मिटैं,
दूर कटैं रोग अैसो औसर न आवोगे।
जाके नैक नाम ही तैं पापन की कोट पोट,
फाट जात नैक ही में अैसो ध्यान लावोगे।
दीनन दयाल प्रतिपाल सब काल ही मैं,
सुकवि प्रसाद लोक लोक छवि छावोगे।
देवन के देव होय सुर पुर निवास करौ,
गंगा नाम कहिकै अभंगा पद पावोगे॥

पुस्तक में कवि रामप्रसाद ने अपने आश्रयदाता पद्मसिंह की बहुत प्रशंसा की है—

मोदभरी रैयत बिनोद भरचौ देस सब,
राजकाज साज में अनंत परवीनो है।
सुकवि चकोरन कौं चंद सम सोभा देत,
दीन अरविंदन कौं भानु रूप कीनौ है।
फौजदार परम प्रतापी पदमसिंघ वीर,
कीरत प्रताप को निवास जग लीनों है।
वैरिन कौ काल चोर चुगलन कौं ज्वालसम,
दीन प्रतिपाल तू विसाल विध कीनौ है॥

गंगा-चरित्र में गंगा की महिमा का वर्णन है कि किस प्रकार चित्रगुप्त के भेजे गये यमदूतों को मार कर हटा दिया गया, और गंगा में स्नान करने वाला पापी भी विमान पर चढ़ कर स्वर्ग पहुँचा—

धाय धाय मार कै हटाय जमदूतन कौं।
ल्याय कैं विमांण असमांन बीच लै गए॥

यमदूतों ने यमराज के दरबार में जाकर पुकार की। चित्रगुप्त उनकी फरियाद पेश करते हैं—

जोर कर करत पुकार दरबार बीच,
सोर कर सारे जमराज कौ मुसद्दी है।
हद्दी गई रावरी अखंड महि मंडल सौं,
रावरौ हुकम ताकी उठै नाहि अद्दी है।
कहै परसाद सब करत निसंक पाप,
गंगा को गरूर पाय छाय रही मद्दी है।
अैसी सुर नद्दी करै बद्दी या तिहारै साथ,
देखो महाराज राजगद्दी भई रद्दी है॥

यमराज ने गंगाजी को पत्र लिखा, किन्तु गंगा ने उत्तर में लिख भेजा कि—

"पैज यही पूरन प्रतग्या मन मेरैं भई,
पातकी तिराऊंगी तौ लोक जस पाऊंगी।"

कुपित हो कर यमराज ने विष्णु भगवान को पत्र लिखा। विष्णु ने भी जवाब दे दिया—

तेरिन मेरिन ग्रौरन की कहि ग्राछी बुरी नहिं कान धरैं है।
विष्णु भनें जमराज सुनों नहिं गंग के सामने पेस परैं है॥

ग्रौर शिवजी ने भी फरियाद किये जाने पर कुछ ऐसा ही उत्तर दिया—

येरे जमराज सुरसरिता के समूह गुन,
कौन कहै तौ मौं तमाम कै ग्रदंगा कौ।
बावरौ भयौ है भूल दीरघ गयौ है कैसे,
ससै छयो है सुन कौतुक ग्रभंगा कौ॥
कहै परसाद हम सीस धरि राखी ताही,
जैसें सिवराज समुझाय सुरसंगा कौ।
पावक परस ग्रति जंत्र होत भंगा जिमि,
पातिक पतंगा होत नाम लेत गंगा कौ॥

ग्रौर इसके उपरान्त ग्रनेक छंदों में गंगा की स्तुति ग्रौर उनका महत्त्व बताया गया है।

मत्स्य प्रदेश में दुर्गा-उपासना भी ग्रनेक रूपों में होती रही है ग्रौर यहां के कई कवियों ने देवी की प्रार्थना विविध छन्दों में लिखी है। दुर्गा सम्बन्धी कुछ संस्कृत ग्रंथों के ग्रनुवाद भी हुए जैसे कवि कलानिधि का किया हुग्रा दुर्गासप्त-शती का ग्रनुवाद जो 'दुर्गामहात्म्य' के नाम से प्रचलित हुग्रा।[1] ग्रलवर के प्रसिद्ध कवि उमादत 'दत्त'[2] ने कालिकाष्टक नाम से बहुत ही उग्र भाषा में एक ग्रन्थ लिखा। कहा जाता है कि इस ग्रष्टक के द्वारा कवि 'मारण' योग में सफलता प्राप्त कर सके थे। दो कवित्त देखें—

तोरि डारु दशन मरोरि डारु ग्रीवा गहि,
फौरि डारु लोचन विलम्ब न विचारिये।

---

[1] यह प्रसंग ग्रनुवाद नामक ग्रध्याय के ग्रंतर्गत लेना उपयुक्त होगा क्योंकि 'दुर्गा महात्म्य' एक ग्रनूदित ग्रंथ है।

[2] महाराज शिवदानसिंहजी के दरबार में इनका बहुत ग्रादर था। यह रौद्र रस की कविता विशेष रूप से करते थे। यह ग्रष्टक बहुत कोशिश करने पर ग्रलवर नरेश के संग्रहालय में ही मिल सका था।

फारि डारु उदर विदारि डारु आंतें सब,
पान कर शोणित अनंद उर धारिये।
दत्त कवि कहै पांय पकरि पछारि डारु,
छारि करि डारु वेगि विरद सम्हारिये।
कष्ट हरि दास को अष्ट भुज वारी मात,
दुष्ट महताब ताकों नष्ट कर डारिये।।

भेजिये खबीस खिलखिलत खुसीसौं खूब,
खैंचि खाल आमिष खुसीसों खोजि खावै री।
प्रवल पिशाच प्रेत डाकिनि चुरैल भूत,
चौप करि चाटि चाटि चरबी चबावै री।।
दत्त कवि कहै निज दास की पुकार सुन,
सिंह पै सवार ह्वै कै तुरत उठि धावै री।
येरी जगदम्ब कविता की अवलम्ब तू है,
मारि वेगि दुष्ट को विलम्ब न लगावै री।।[1]

यह कवित्त मारण प्रयोग के लिए लिखे गए हैं। इनसे सात्विक भक्ति-भाव प्रगट नहीं होता।

गोवर्द्धन से सम्बन्धित **'गिरवर विलास'** नाम का एक अति उत्तम ग्रंथ प्राप्त हुआ। इसके रचयिता कवि उदैराम हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गोव-र्द्धन में निर्मित कुंज, महल, मानसी गंगा आदि का उद्घाटन करने के समय इस पुस्तक को लिखा गया था। महाराजा सुजानसिंहजी ने इन स्थानों का निर्माण अथवा जीर्णोद्धार कराया था। इन्हीं महाराज ने भरतपुर का किला बनवाया और उसके चारों ओर खाई खुदवाई थी जो आज भी 'सुजान गंगा' के नाम से विख्यात है। मानसी गंगा का पहला रूप कुछ भी रहा हो किन्तु जिस रूप में यह सरोवर आज विद्यमान है वह महाराज सुजानसिंहजी का प्रयास है। गोवर्धन के महल, तालाव आदि का निर्माण उन्होंने ही कराया था, और इन्हीं महाभाग के समय में मानसी गंगा पर सब से पहला दीपदान हुआ। कवि ने स्पष्ट लिखा है—

मथुरा तें पछिम दिसा दोइ जोजन सौ ठाम।
देवन कों दुर्लभ कह्यौ है गोवर्द्धन नाम।।
बृजमंडल जदुवंस में अंस कला अवतार।
उदित भयो भूपति भवन सूरज हरन अंध्यार।।

---

[1] ये कवित्त जिस समय अलवर के वयोवृद्ध श्री रामभद्रजी ओझा ने सर्व प्रथम सुनाये थे तो उनका अस्सी वर्ष का वृद्ध शरीर भी, जो चारपाई पर था, एक विचित्र उग्रता से भर गया था।

मंजु महल मंदिर कियें कुंज भवन बनवाय।
अति अवास ऊंचे अटा लगे घटासों जाइ॥
गिरि गोवर्धन भुवन की रचना कहिसक कोइ।
लाजत लषि सुरपति सदन मदन मोह मन होइ॥
मानसरोवर मानसी रची गंग गंभीर,
वहां हंस विलसें यहां परमहंस हैं तीर।
अब बरनहु गिरिवर गहन करत जंतु जहं केलि,
सप्त कोस के फेर में सघन वृक्ष वन बेलि।

'गिरिवर विलास' में अनेक बातों का हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है। इस गिरि की महिमा, गोवर्द्धन के प्रति भरतपुर के राजाओं की भक्ति तथा यहां पर मनाये गये प्रथम उत्सव का विवरण इस ग्रंथ में पाया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि गोवर्द्धन का प्रसिद्ध दीपदान इस समय से ही आरम्भ हुआ—

'नृप सुजान के समें सौ दीपदान दुति भाइ।'

कवि का कहना है कि यह स्थान राधा और कृष्ण की रास-भूमि है, इसी प्रसंग में लिखे गये कुछ छंद नीचे दिए गए हैं—

१. रमित रास रस रसिक सिरोमनि, नागर नगधर नंदकिसोर।
थिरकत पटल पीतपट अंचल, चंचल चपल चलत चंहु ओर।
बजत बाघवर साधि सकल स्वर, मधुर मधुर मुरली घनघोर।
बजत मृदंग संग गिरि गुंजत, सुनि सुनि छिन छिन कहुकत मोर॥

२. राधे रमित रास रस मंडल, मधुर मधुर नूपुरन ठकोर।
रतन कनिक तन श्रमकन झलकत ललकत अलि अलकन की ओर॥
उघरि जात वर चीर चंदमुख, लषि लषि चितवत चकित चकोर।
करत गान कोकल कल कुहकत, चहुतक चातक चारहुं ओर॥

३. रमित रास रस रसिक राज अरु, ताता थेई तथेई तत्थेई तात्थेईया।
पटकत पग छुटकत लट बेनी, बिलुलत बदन लेत फिरकईया।
हरकत पुंछ मनंहु पंनग सुत, ससिरथ मनहु मदन मृग छईया।
निर्तत नवल लाल बालन संग, राधे राधे राधे राधे कहत कन्हैया॥

४. तोरत तान न मानत तन अति गति उछटति मनहु मदन मृग जोरी,
निर्तत नवल बाल लालन संग कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कहति किसोरी।

गोवर्द्धन परिक्रमा—

गिरि परिकर्मा देत हैं नरनारी बहु भीर।
मनहु मदन-रति की कला कोटिक धरे सरीर॥

बरन विविध भूषन बसन पहरि चलत गिरि पंथ।
मानहु गिरिवर बाग में फूल्यों वितन बसंत ॥
करत गान गजगामिनी गावत गुन गोपाल।
कोकिल कल केकी लजत गति पर मंजु मराल ॥
नंदनदन को सदन यह गिरवर गमन विलास।
हम कों दुर्लभ है अगम इनकों सहज सुपास ॥

इस उद्घाटन के अवसर पर जो भारी मेला हुआ कवि ने उसका भी वर्णन किया है—

धावत चारिहु ओर ते, नरनारिन के वृंद।
सोभा सर सरिता उमगि, मनहु मिली सुषसिंघ ॥
कहुं नचत कन्हैया करत ष्याल।
बाजंत्र बजावत देत ताल ॥
कहुं बाजीगर बंदर बनाइ।
अति करत ष्याल तिनको नचाइ ॥
कहुं निकर नादिया व्याल भाल।
बहु बरन जाति सुचि पंछ पाल ॥
कहुं कहत कवीस्वर वर कवित्त।
छवि छंदबंध बरने विचित्र ॥
कहुं रसिक मंडली फिरति संग।
रगमगे अंग नंदलाल रंग ॥

मानसीगंगा पर किए गए सर्व प्रथम दीपदान का वर्णन इस प्रकार है—

गंगा के प्रसं···वृज बाल दीपमाल करे,
धरे तज जोरि कोरि झाल जहरी है।
अति ही उजास आस पास परकास होत,
झिलमिलात झाई जल मांही गहरी है।
कैसें के बरन हरन मन होत उदै,
देषें छवि कविहू की मति सी हहरी है।
मानसीगंग मानों रूप रस रंग भीज,
नगनि की जराय जरी चुनरी पहरी है।

और पर्वत के ऊपर दीपमाला—

धरें दीपमाल वृजबाल ग्वाल गिरिवर पै,
मानों गिरिराज आज मनि प्रगटाई हैं।
रंभा रति उमा सारदा सची सिद्ध,
सावित्री सहित मानौं मन में ललचाई हैं।

नगने की नारि अरु पंनग कुमारि केती,
निपुन तन धारि बृजनारि बन आई हैं।
सुरन की बाला संग अंगना रसाल उदै,
लालन की माला मानों गिरि को पहराई हैं॥

और उदैरामजी का एक विचित्र युद्ध और देख लीजिए—

येक षवरि सुनि कैं भई, सब ही के तन त्रास।
मग में मारन कौं कहै, समर सूर सन्यास॥

उत ही रितुराज रुप्यौ रन कों सुनि कें सजि आवत संत अनी।
इतमें करुणाइ कियौ कंपू उत काम की कौपि खड़ी कंपनी॥[1]
तबही सब वीर बुलाइ कही सजहू सबही अब आइ बनी।
गिरिभूमि भई हरद्वार यहीं जै चाहत हैं अपनी अपनी॥

जुवती जन पलटनि पड़ी, करी जहां जनु मैंन।
जाके बल जीत्यौ जगत, कहा संत लघु सेंन॥

दृग वंदूक भरि भरि सकति, अंजन रंजक प्याइ।
चितवनि चकमक तक लगी, भ्रकुटी करनि चढ़ाइ॥

गान की कमान हांसी गांसी संधान तामें,
तीषी तान तीरन सों वीर उर वेधे हैं।
कुंतल कटारन सों वेनी पैंनी धारन सौं,
तारी तरिवारन सौं मारि मारि षेदे हैं।
चिवकनि के चक्रनि सों मारे परे मक्रनि से,
भूमि भवसागर में फेरि न उमेदें हैं।
भोंहन चढ़ाइ सर लाइ नैंन नावक में,
अंजन भरि मालि व्यालि छेकि छेकि छेदे हैं॥

इस प्रकार 'सांति-सिंगार' के समर का वर्णन किया है। इसके पश्चात् अन्न-कूट का वर्णन है, जब दानघाटी में भारी भीड़ हो गई थी। इसी समय महाराज सूरजमल की सवारी भी निकली और इस प्रसंग में कवि कहते हैं—

सूरजमल मुख पर लखी सूरजमुखी महान।
अस्ताचल कों जात जनु संध्या समय सुभान॥
दरसन करि हरदेव के हरसि हृदय सुख पाइ।
दिनमनि गत प्रापत भये नृप निज कुंजै जाइ॥[2]

---

[1] कंपू, कम्पनी—फौज।

[2] 'हरदेवजी का मंदिर' और 'भरतपुर की कुंज' आज तक विद्यमान हैं। कुंज तो टूटी-फूटी अवस्था में है किन्तु नियमित पूजा-सेवा के कारण हरदेवजी का मंदिर अच्छी अवस्था में हैं।

इसी समय में किये गये भागवत, महाभारत, रामायण, दुर्गासप्तशती आदि के अनुवाद, जो भक्ति-भावना से प्रेरित होकर ही किए गए थे 'अनुवाद' नामक अध्याय के अंतर्गत ठीक रहेंगे, क्योंकि वे ग्रंथ अविकल अनुवाद नहीं तो छायानुवाद अवश्य हैं। प्रह्लाद, ध्रुव आदि की कथाएँ भी लिखी जाती थीं। इस स्थान पर सोमनाथ द्वारा लिखित 'ध्रुव विनोद' का कुछ विवरण दिया जा रहा है।

'ध्रुव विनोद' में ५ उल्लास हैं। इस ग्रंथ में 'हरदेवजी सहाय' लिखा गया है।[१] यह पुस्तक अनेक छंदों में लिखी गई है किन्तु कथानक का अति प्रचलित रूप ही ग्रहण किया गया है। पुस्तक में मंजी हुई भाषा का प्रयोग है। प्रार्थना के कुछ दोहे इस प्रकार हैं—

ध्यावतु चरननि को सुविधि, गावति गुननि मुनीस।
जनवत्सल श्रीवत्स नित, जय जय श्री जगदीस॥

×

मैत्रेय जू उच्चरे, आप विदुर सों बात।
ध्रुव चरित्र को भक्त लषि, अति ही हरषित गात॥

×

कमलनाभि की नाभि तैं, भयौ कनक अरविंद।
तामें कमलासन भयौ, सुवरन वरन अनंद॥

तदुपरान्त कथा का आरम्भ होता है—

उत्तानपात के जुगल भाम।
जेठी सुनीति लघु सुरुचि नाम॥
ही निपट भांवती सुरुचि बाल।
अरु नहि सुनीति सों नृप दयाल॥

ध्रुव का अपमान होने पर माता ने उन्हें भगवान की प्राप्ति करने का उपदेश दिया—

अरुण कमल दल के छवि वारे।
निपट विसाल नैंन अनियारे॥

---

१. भरतपुर के राजाओं की हरदेवजी के प्रति बहुत श्रद्धा रही है। कहा जाता है कि भरतपुर के महाराज गोवर्द्धन से हरदेवजी के पुजारी को लिवा कर भरतपुर में लाये थे और एक मंदिर भी स्थापित कराया जो अब तक विद्यमान है। पहले तो इस मंदिर की जीविका बहुत थी परन्तु धीरे-धीरे कम होती चली गई। हरदेवजी के पश्चात् राजवंश में लक्ष्मणजी की भक्ति-परंपरा चली, ऐसा अनुमान है।

रुचिर नासिका शुक लषि लाजै ।
श्रवन ज्ञान के विवर विराजै ।।
अमल कपोल गोल अति नीके ।
ललित अधर सुखदायक जी के ।।

जब पुत्र जाने लगा तो माता की अवस्था देखिए—

जानि समीप सुनीति सपूतहि नैननि बेलि विनोद की बोई ।
ए शसिनाथ उदार तिंही छिन एकै वार विथा सब छोई ।।
आई उमंगि तरंगनि तूल हुती छतिया जु विछोह विलोई ।
नीकैं निहारि पसारि भुजा ध्रुव अंक में धारि पुकारि कैं रोई ।।

इस पुस्तक के प्रथम उल्लास में १०३ छंद, दूसरे में ११७, तीसरे और चौथे में क्रमशः ३५ और ३४ छंद हैं। पांचवें उल्लास में ५७ छंद हैं। इस पुस्तक की पत्र संख्या ८७ है। ध्रुव की कथा पौराणिक आधार पर लिखी गई है। इसमें मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के छंद पाये जाते हैं। इस पुस्तक की रचना-तिथि कवि के शब्दों में ही इस प्रकार है—

संवत् ठारै से वरस, बारह (१८१२) जेठ सुकास ।
कृष्ण त्रोदसी बार भृगु, भयौ ग्रंथ परकास ।।

कवि ने पुस्तक के अन्त में ध्रुव तथा उनकी माता दोनों को वैकुण्ठलोक में प्रतिष्ठित करा दिया है—

बैठि विमान चल्यौ सुरलोक कों कंचन सी तन जोति विसेषी ।
पंथ के मध्य अचानक ही पटकी पुनि अंब दशा अनलेषी ।
सो ससिनाथ सुनंद औ नंद ने जानि दई दरसाह सुमेषी ।
आनंद मान्यों तबै ध्रुव नैं जब आगे सुमाइ विमान में देषी ।।

कुछ स्फुट कविता प्रार्थना सम्बन्धी भी मिली। जैसे—गंगा की स्तुति, शिवजी की स्तुति। इनके अतिरिक्त जुगल कवि का लिखा एक 'करुणापच्चीसा'[1] भी

[1] वैसे इस पुस्तक का नाम 'सत्यनारायण करुण पचीसी' है। 'करुणापच्चीसा' मानने का कारण यह दोहा है—

हृदय आइ कवि जुगल के, उपजी भक्ति सुदेष ।
करुणा पच्चीसा लिष्यौ, सत्यनारायण वेस ।।

इति श्री सत्यनारायण भक्तिमय करुणापच्चीसा संपूर्णम् ।

मिला जिसमें अच्छी कविता प्राप्त होती है। यह पच्चीसा सत्यनारायण की स्तुति में लिखा गया है। कुल सवैयों की संख्या २५ है जिनमें से पहले सवा तीन गायब हैं। प्राप्त पुस्तक चौथे सवैये के दूसरे चरण से आरंभ होती है।

जब टेर सुनी गजराज ही की वृजराज ही धाए हे छिप्रकने।
दुष मध्य सभा के पुकारी ही द्रौपदी राषी प्रभावते लाजपने ।।
इमि भक्त अनेक के काज सरे त्यों लिहाज की पार जगाऐं बने।
कृपा रावरी को नहिं पार अबै प्रभु सत्यनारायण तो सरनें ।।

कलिकाल महा विकराल रहै सो विहाल करै को उपाइ ठनें।
प्रन पाल्यौ है ज्यों प्रहलाद कौ त्यों मम रक्षा करौ अब वात वनें ।।
इक तेरौ भरोसौ परौ सौ रहै प्रन पालिए संकट के हरने।
सुनिहारि निहाल करौ छिन में प्रभु सत्यनारायण तो सरनें ।।

अनुप्रास भी देखिए—

जनमें जगके जिव जंतु जितेक जिने जिय जीवन जे अपने।
अघ ओघन तें अति आरतवंत अबेही अनंत करो अपने ।।

और अन्त में इस पच्चीसा का फल भी लिखा है—

सत्यनरायन बीनती, जुगल कृत्य जनहेत।
जो याकूं सीषैं सुनें, मन वंछित फल देत ।।

इसी युग में प्रसिद्ध महात्मा चरणदासजी का आविर्भाव हुआ। इनकी दो शिष्याएँ सहजोबाई और दयाबाई अपने गुरु के समान ही काव्य-कला-मर्मज्ञ थीं। इन तीनों की कविता में निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की भक्ति का रूप मिलता है। चरणदासजी की वाणी का 'भक्ति सागर' नाम से प्रकाशन हो चुका है, और इनको शिष्या सहजोबाई का 'सहजप्रकाश' तथा दयाबाई के 'दया-बोध' और 'विनयमालिका' भी प्रकाशित हैं। हमने इनके हस्तलिखित ग्रन्थों को भी देखा और इसी प्रसंग में डेहरा की भी यात्रा की गई। डेहरा चरणदासजी की जन्म-भूमि है और यहीं इनकी दोनों शिष्याओं का भी निवास था। इस स्थान में चरणदासजी की कुछ वस्तुएँ, टोपी, खड़ाऊ आदि अब तक मिलते हैं। महात्मा चरणदास भार्गव वंश में संवत् १७६० के अंतर्गत प्रगट हुये। इनके सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण कहानियाँ हैं। इनके गुरु शुकमुनि थे और उनकी ही आज्ञा से यह दिल्ली गये, जहां इनका स्थान है। ऐसा भी कहा जाता है—

दिल्ली से चलकर गये, वृन्दाविपिन बिहार।

और वहां सेवाकुंज में पहुँच कर भगवान का साक्षात् दर्शन किया। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि वे सगुणवादी थे और भगवान कृष्ण में उनकी

पूर्ण आस्था थी। उनकी कविताओं में भी उनकी भक्ति का यही रूप मिलता है। इनका देह-त्याग संवत् १८३९ कहा जाता है। वृन्दावन में इनकी बहुत श्रद्धा थी—

नन्द के कुमार हौं तो कहौं बार बार,
मोहि लीजिए उबार ओट आपनी में कीजिए।
काम अरु क्रोध को काटो जम बेड़ा प्रभु,
मांगो एक नाम मोहि भक्तिदान दीजिये।
और को छुटायो साथ संतन को दीजे साथ,
वृन्दावन निवास मोहि फेरिहू पतीजिये।
कहै चर्णदास मेरि होय नहीं हांसी श्याम,
कहूं मैं पुकारि मेरी श्रवन सुन लीजिये॥

उन्होंने कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन भी किया है और सर्वदा यही कहते रहे—

'वंशीवारे सों लगन मोरी लाग गई।,

इनके द्वारा लिखा कुछ उर्दू पद्य भी मिलता है—

मुझे श्याम से मिलने की आरजू है,
शबो रोज़ दिल में यही जुस्तजू है।
नहीं भाती हैं मुझको बातें किसी की,
सुनी जबसे उस यार की गुफ्तगू है।
शराबे मुहब्बत पियी जिसने यारब,
बना दोनों जग में वही सुर्खरू है।

चरणदासजी ने दानलीला आदि भी लिखी हैं। साथ ही अष्टांगयोग, अष्ट प्रकार के कुंभक, हठयोग, सतगुरु, सुमिरन का अंग, अनहद शब्द की महिमा, माया आदि का भी वर्णन निर्गुण संतों की तरह किया है। कुछ उदाहरण देखें—

१. भेदबानी—

गुरु दूती बिन सखी पीव न देखो जाय।
भावै तुम जप तप करि देखौं भावै तीरथ न्हाय॥
पांच सखी पच्चीस सहेली अति चातुर अधिकाय।
मोहि अयानी जानि कै मेरौ बालम लियौ लुकाय॥
वेद पुरान सबै जो ढूढें स्तुति इस्मृति सब धाया।
आनि धर्म औ क्रियाकर्म में दीन्ह मोहि भरमाया॥

२. करम-भरम का निषेध—

सब जग मर्म भुलाना ऐसे।
ऊंट की पूंछ से ऊंट बंध्यों ज्यौं भेड़चाल है जैसे॥

खर का सोर मूंस कूकर की देखा देखी चाली ।
तैसे कलुआ जाहिर भैरों सेढ़ मसानी काली ।।
दूध-पूत पाथर से मांगें जाके मुख नहिं नासा ।
लपसी पपड़ी ढ़ेर करत हैं वह नहिं खावैं मासा ।।
वाकै आगे बकरा मारें ताहि न हत्या जाने ।
लै लोहू माथे सौं लावैं ऐसे मूढ़ अयाने ।।

३. अनहद शब्द—

नौ नाड़ी कौ खैंचि पवन लै उर में दीजै ।
वज्जर ताला लाय द्वार नौ बंद करीजै ।।
तीनों बंद लगाय अस्थिर अनहद आराधै ।
सुरति निरति काम राह चल गगन अगाधै ।।
सुन्न सिखर चढ़ि रहै दृढ़ जहां आसन मारे ।
भव चरनदास ताली लगै राम दरस कलमल हारे ।।

४. सतगुरु शब्द—

सतगुर मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट ।
मारे गोला प्रेम का, ढहै भरम का कोट ।।
मैं मिरगा गुरु पारधी, शब्द लगायौ वान ।
चरनदास घायल गिरे, तन मन वीधे प्रान ।।

५. कबीर वाला जल-कुंभ प्रकरण—

जैसे जल में जल कुंभ बसै जल भीतर वाहर पूरि रह्यौ है ।
तैसे जल में जल पाला बंध्यौ जब फूटि गयौ जल आय भयौ है ।।
ऐसे वह जग में व्यापि रह्यौ किनहूँ कर लोचन नांहि गह्यौ है ।
चरणदास कहै दुई दूरि करौ सगरौ जग एकहि डोर गुह्यौ है ।।

६. तीर्थ—

मकर तजै तो मथुरा मन में, कपट तजै तो कासी ।
और तीर्थ सवही जग नाथा, नाहिं छूटि जम फांसी ।।

इनके अतिरिक्त मुद्रा, अष्टकमल, निरंजन, साहब, नाम, शब्द आदि निर्गुण संतों की सभी बातें इनके ग्रंथों में मौजूद हैं।

सहजोवाई और दयावाई दोनों सदा गुरुदेव की सेवा करती रहीं । इनका जन्म १७७५ के आसपास हुआ होगा । इनके ग्रन्थों में से 'विनय-मालिका' को कुछ लोग चरणदासजी के किसी अन्य शिष्य, दयादास का लिखा मानते हैं ।

सहजोवाई की कविता भी निर्गुण की दृष्टि से उसी प्रकार की है ।

१. गुरु—

हरि किरपा जो होय तो, नाहीं होय तो नाहि ।
पै गुरु किरपा दया बिनु, सकल बुद्धि नहिं जाहि ।।

राम तजूं पै गुरु न बिसारूं । गुरु के सम हरि कूं न निहारूं ।।
हरि ने जन्म दियौ जग माही । गुरु ने आवागमन छुटाही ।।
चरनदास पर तन मन वारूं । गुरु न तजूं हरि को तजि डारूं ।।

२. ब्रह्म—

निर्गुण सगुण एक प्रभु, देख्यौ समझ विचारि ।
सतगुरु ने आँखी दई, निस्चै कियौ निहारि ।।

३. काया नगर—

बाबा काया नगर बसावौ ।
ज्ञान दृष्टि सूं घर में देखो सुरति निरति लौ लावो ।
पांच मारि मन बस कर अपने तीनों ताप नसावों ।।

४. साथ ही सगुण भी—

मेरे इक सिर गोपाल और नहीं कोऊ भाई ।
....
जाति हू की कान तजी लोक हू की लाज भजी ।
दोनों कुल माहिं की कहा करै सोई ।।

['मेरे तो गिरधर गोपाल' के अनुसार]

दयाबाई ने भी इसी प्रकार की कविता की । गुरु की महिमा इन्होंने भी बहुत गाई है—

गुरु बिनु ज्ञान ध्यान नहिं होवै ।
गुरु बिनु चौरासी मन जोवै ।।
गुरु बिनु रामभक्ति नहिं जागै ।
गुरु बिनु असुभ कर्म नहिं त्यागै ।।

साधु वर्णन—

साध साध सब कोउ कहै, दुरलभ साधू सेव ।
जब संगत ह्वै साध की, तब पावै सब भेव ।।

आतम ज्ञान—

ज्ञान रूप को भयो प्रकास ।
भयो अविद्या तम को नास ।।

दयाबाई का जन्म भी डहरा[1] में ही हुआ । 'दयाबोध' को रचना १८१८ की बताई जाती है । इनके द्वारा कोमलता, मधुरता, प्रेम आदि की प्रशंसा की गई है ।

---

[1] डहरा — अलवर जिले में एक गांव जो अलवर के राजमहल 'विजय पैलेस' से लगभग एक मील की दूरी पर है । यहां चरनदासजी का आश्रम है, और एक महंत उसके अधिकारी हैं ।

दयाबोध में भी अनेक प्रसंग 'अंग' नाम से लिखे हैं, जैसे—गुरु-महिमा का अंग, सुमिरन का अंग, सूर का अंग, प्रेम का अंग, वैराग का अंग, साध का अंग, अजपा का अंग।

चरनदासजी ने 'श्री ज्ञान स्वरोदै' भी लिखा है, जिसमें २२७ छंद हैं। जिस हस्तलिखित प्रति को मैंने देखा उसमें ३८ पत्र हैं।[1] यह एक आध्यात्मिक तथा दार्शनिक ग्रन्थ है। इसमें स्वरों के भेद भी बतलाये गए हैं और उनका ज्ञान कराया गया है—

भेद स्वरोदै बहुत हैं, सूक्षम कह्यो बनाय।
ताकू समझ विचार ले, अपनी चित मन लाय।।
धरन टरै गिरवर टरै, ध्रुव टरै पुन मीत।
वचन स्वरोदै नां टरै, मुरली सुत रनजीत।।
इडा पिंगला सुषमना, नाडी कहियें तीन।
सूरज चंद विचार कै, रहै स्वांस लौ लीन।।
स्वांस बाणवें क्रोड की, अरब जान नर लोय।
बीत जाय स्वासा सबै, तब ही मृतग होय।।

इकीस हजार छस्सौ चलें, रात दिना जो स्वांस।
नीसा सौ जीवै बरस, होय अघन कौ नांस।।

पावक और अकास तत, वाम नत्र जो होय।
कछू काज नहीं कीजिये, इनमें बरजू तोय।।
दहनों स्वर जब चलत है, वहां जाय जो होय।
तीन पांव आगै धरे, सूरज सो दिन होय।।

गर्भवती के गर्भ की, जो कोई पूछे आय।
बालक होय के बालकी, जीवै के मर जाय।।
बावें कहियें छोकरी, दहनें बेटा होय।
वाको वायों स्वर चले, जीवत ही मर जाय।।

उनकी 'बानी' से यह स्पष्ट है कि वे पंडे पुजारियों द्वारा प्रचलित अवतारों को नहीं मानते थे किन्तु वैसे 'अवतारवाद' का प्रतिपादन करते थे। कर्म-कांड और मूर्तिपूजा की निंदा स्पष्ट रूप से की गई है। प्रचलित देवी-देवताओं के नाम पर चलाए गए पाखण्ड से भी जनता को आगाह किया गया है। परन्तु कबीर, दादू आदि संतों की बातें भी इन चरनदासियों में उसी तरह से पाई जाती हैं। दार्शनिक दृष्टि से चरनदासी निर्गुणी कहे जा सकते हैं, परन्तु व्याव-

[1] इस ग्रंथ का बहुत प्रचार था। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान में ही इसकी तीन (ह० लि०) प्रतियां हैं।

हारिक दृष्टि से वे सगुण को ही मानते हैं। ये सगुणमार्गी होते हुए भी योग और साधना को ग्रहण करते हैं। सब कुछ मिला कर इनका झुकाव सगुण की ओर अधिक है किन्तु इनके सगुण में आडंबर की मात्रा कम है।

इस प्रदेश में और बाहर भी महात्मा चरणदासजी के पदों का बहुत प्रचार था और उस समय की प्रचलित पद्धति के अनुसार जो पद-संग्रह किए जाते थे उनमें इनके पद स्थान-स्थान पर मिलते हैं। राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान में उपलब्ध दो संग्रहों में इनके कुछ पद मिले। ये संग्रह दो सौ वर्ष पुराने हैं[1] और तुलसी, सूर, नंददास, अग्रदास आदि के पदों के साथ चरनदासजी के पद भी मिलते हैं। उनमें से दो तीन पद नीचे दिए जा रहे हैं—भाषा का जो रूप इन हस्तलेखों में मिलता है, वही दिया जा रहा है।

ऊधो के प्रति गोपियों का कथन —

ऊधो का जानै हमारै जीव की।
चात्रग वूंद चकोर चंद कूं, असे हमको पीव की।।
नेह के मानवी धर करि खैंची, मार गये हरि ति[ती]र की।
भाल वियोग हीये बीच खड़को, सुध न लहे या जीव की।।
चरनदास सखि निसदिन तरफै, जों मछरी बीन नि[नी]र की।
कहै कछु और करै कछु और, आखर जात अहीर की।।

अहीर जाति के होकर कृष्ण की 'कथनी' और 'करनी' में अंतर होना ही चाहिए।

एक और पद देखिए जिसमें चरणदासजी का सन्तमतानुगमन स्पष्टतः परिलक्षित होता है। यह पहले हो कहा जा चुका है कि चरणदासजी के काव्य में निर्गुण और सगुण दोनों दिखाई देते हैं।

अवै जम का करेगा रे।
अनहद सुरती रंगीलो लागी, जिह चंद पवन नहीं।।
... ... पानी जहां जाय घर छाया।
जामै आवागमन नेरा ज्ञान का कलप लगाया।।
पुरन ब्रह्म सकल विधि पुरा जिहा किया हम बेरा।
सील सुरत दा[2] धरघा अरावा इसट आवै नेरा।।

---

[1] क्र० सं० १८८२ और १८६० पर ये संग्रह-ग्रंथ मिले। इनमें से पहले का संग्रह संवत् १८१६ है और दूसरे का १८२७। इसका अभिप्राय यह हुआ कि चरणदासजी के जीवन काल में ही ये पद-संग्रह किए गए थे और उनकी ख्याति दूर-दूर फैल चुकी थी।

[2] 'दा'—संबंधसूचक यह प्रयोग सोमनाथ के 'प्रेम पचीसा' में भी मिलता है, यथा—'दिल अंदर दा परदा'।

जहा सकल जग मर मर जोहै, जहा हम जीवत जाई ।
बलिहारी सतगुर आपकी, ऐसी ठोर बताई ।।
जो कोही बसै आगमन जाकी, येकमयेक कहा होई ।
चरनदास हर कृष्ण सखी का, दूजा रूप न होई ।।

अब चरणदासजी के 'स्याम' का दर्शन भी कर लीजिए जो कभी 'इजार', 'पटुका' और 'बागौ' पहन कर और कभी 'पाग', 'उपरैना' और 'धोवती' में आपको कृत्कृत्य कर रहे हैं। मैंने कृष्ण के कई मंदिरों में देखा कि अक्षय तृतीया के दिन भगवान का शृंगार चंदन से ही होता है। संभवत: उसी दिन का दर्शन इस पद में वर्णित हैं—

[राग सारंग]
स्याम अंग बन्यौ चंदन कौ बागौ ।
चंदन इजार चंदन कौ, पटुका चंदन कौ सिर पागौ । टेक
रायबेलि की माला पहरै, बीचि सुरंग रंग लागौ ।।

[राग सारंग]
चंदन पहिरै राजत श्री गोपाल ।
हरष भरे मुख वरष महा सुषमा, धुरी मूरति रसाल ।। टेक
सेत पाग सेत उपरैना, सेत धोवती[1] उज्जल मोतिन माल ।
चरनदास प्रभु ए छबि निरषत, व्रज जीवनि नंदलाल ।।

चरणदासजी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली प्रतीत होता है। एक ओर जहाँ उन्हें सन्तमत का पूरा ज्ञान है वहाँ उनकी भक्ति-भावना भी उच्च कोटि की है पर साथ ही बाह्याडम्बर से उनकी बुद्धि मेल नहीं खाती। उनकी कृतियों से उनकी काव्य-प्रतिभा उच्च कोटि की सिद्ध होती है, उन्हें रागों का ज्ञान है, साथ ही सुन्दर पद-लालित्य का भी। व्यंगमय उक्तियां कहने में भो वे नहीं चूकते। उनकी भाषा वैसे तो व्रजभाषा है किन्तु खड़ी बोली का पुट भी स्थान-स्थान पर मिलता है, संभवत: दिल्ली प्रवास के कारण।

कुछ समय पूर्व इस प्रांत में एक प्रसिद्ध महात्मा लालदास ने भी निर्गुण की बातें कही थीं। इनके शिष्य लालदासी कहलाते हैं। अहमद नाम के एक अन्य कवि की कुछ कविताएँ मिलीं जिनसे उनकी विचारधारा भी निर्गुण के अन्तर्गत मालूम होती है—

काहे भरमता डोलै रे योगी, तू काहे भरमता डोलै ।
देह धोय मांजे क्या पावे, मन को क्यों ना धो लै ।।
ज्ञान की हाथ तराजू तेरे, फिर क्यों कमती तोलै ।
अहमद होय कहा [illegible] ।।

[1] 'धोती' के स्थान में व्रजमंडल और राजस्थान में आज भी 'धोवती' का प्रयोग होता है।

क्या पड़ि सोवै उठ अलबेली ।
आज रच्यौ तेरो व्याह नवेली ।।
सब सखियां तोहि दुलहन बनावें ।
मिलजुल के तोहि बिदा करावें ।।
द्वार बरात खड़ी धन प्यारी ।
तू सोई सुख नींद अनारी ।।

इस प्रकार के अनेक कवि हुए जिन्होंने इस संसार की असारता तथा उस संसार को जाने की तैयारी पर जोर दिया । खोज में दास नाम के एक निर्गुण संत का 'गोपीचन्दजी कौ वैराग' भी मिला—

'करैं बंदगी धरणि अकास'
'पीर पंच बर सिधि अरु साध'
'नाम कबीर जपै रैदास'
'दास कह्यौ वैराग बोध'

प्रेममार्गी शाखा के अंतर्गत गुलाम मोहम्मद द्वारा लिखे **'प्रेमरसाल'** की बात कही जाती है । यह ग्रन्थ सूफी प्रेममार्गियों के अनुकरण पर है । इन प्रेममार्गी कवि के पिता का नाम अब्दालखां कहा जाता है और इनके आश्रयदाता भरतपुर के महाराज रणधीरसिंह कहे जाते हैं । यह पुस्तक काफी खोज करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकी । एक अन्य पुस्तक 'मधुमालती' है जिसके रचयिता चतुर्भुजदास निगम कायस्थ हैं । इस पुस्तक की कई प्रतियां हमें उपलब्ध हुईं जिनमें दो प्रतियां सचित्र भी थीं । यह ग्रंथ मत्स्य प्रांत से अधिक सम्बन्ध नहीं रखता, अतः इसका विशेष विवरण इस स्थान पर उपयुक्त प्रतीत नहीं होता ।

मत्स्य के भक्ति-काव्य को देखने पर हमें इस प्रदेश की भक्ति-परम्परा में कुछ विशेष बातें दिखाई देती हैं—

१. निर्गुण की अपेक्षा मत्स्य प्रदेश में सगुण का अधिक प्रचार रहा । निर्गुण की प्रवृत्ति हमें चरणदासियों के साहित्य में मिलती है और सिद्धांत रूप से उनका उस ओर झुकाव भी मालूम पड़ता है । व्यवहार में ये लोग भी सगुण को अधिक मानते थे ।

२ राम और कृष्ण दोनों अवतारों की उपासना हुई । साहित्य की दृष्टि से कृष्ण-साहित्य की रचनाएँ अधिकता से मिलती हैं । वैसे तो हमें विचित्र रामायण जैसे सुन्दर प्रबंध काव्य भी मिले हैं किन्तु राम सम्बन्धी साहित्य की ओर लोग कम आकर्षित हुए । संयोग और वियोग दोनों की दृष्टि से कृष्ण संबंधी साहित्य की ओर कवियों का ध्यान अधिक गया है । राम और कृष्ण संबंधी साहित्य में शृंगार बहुत ही संयत रूप में मिलता है ।

३. प्राप्त पुस्तकों में प्रबंध काव्य भी मिलते हैं—जैसे विचित्र रामायण, राधामंगल आदि, परन्तु उपलब्ध ग्रंथों में अधिक रचनाएँ मुक्तक हैं। अनूदित पुस्तकों में महाभारत, रामायण, भागवत आदि सम्मिलित हैं।

४. प्राप्त साहित्य में मत्स्य प्रदेश की परम्परा और प्रचलित पद्धति का विशेष ध्यान रखा है जिसके सुन्दर उदाहरण—महादेवजी कौ व्याहुलौ, राधामंगल आदि हैं। लीलाओं में भी प्रचलित प्रणाली का अनुगमन किया गया है और उन्हें जन-साधारण के निकट की वस्तु बनाया गया है।

५. भक्ति-सम्प्रदाय से सम्बन्धित कुछ मुसलमान भक्त भी हैं, जैसे लालदास, अलीबख्श, अहमद आदि। पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियों की कविता भी प्राप्त हुई जिनमें दयाबाई और सहजोबाई के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

६. गिरवर विलास, राधामंगल और व्याहुलौ इस प्रदेश की विशेषताएँ हैं। इनका सम्बन्ध इसी प्रान्त से है, किसी अन्य प्रान्त में सम्भवतः इनका इतना अधिक महत्त्व न हो। किन्तु इन ग्रन्थों में जो उत्कृष्ट कोटि का प्रकृति-वर्णन मिलता है, उसका आनन्द सभी प्राप्त कर सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि मत्स्य प्रदेश के कवियों द्वारा भक्ति के अनेक अंगों का प्रतिपादन किया गया और उनकी रचनाएँ काव्य तथा भावुकता की दृष्टि से सम्मानपूर्ण स्थान की अधिकारिणी हैं।

अध्याय ५

नीति, युद्ध, इतिहास सम्बन्धी तथा अन्य

मत्स्य प्रदेश में नीति संबंधी अनेक दोहों का प्रचलन रहा जिनका मौखिक रूप तो उपलब्ध होता है किन्तु यहां के साहित्य में कोई अच्छा संग्रह नहीं मिल सका। हां, हितोपदेश, नीतिशतक आदि के अनुवाद अवश्य मिले, और आईने अकबरी के आधार पर लिखी कुछ राजनीति। इन नीति-पुस्तकों का प्रणयन राजपुत्रों को पढ़ाने के लिये किया गया था। नीति-संबंधी कुछ कहानियां भी प्रचलित थीं जैसे विक्रमादित्य से संबंधित बत्तीस पुतलियों की बत्तीस कहानियां। सामान्य ज्ञान और नीति के लिए अक़लनामे भी बनाये गए जिनमें सामान्य व्यावहारिक बातों का अच्छा वर्णन किया गया। इन अक़लनामोंमें बहुत सी ऐसी बातें भी हैं जिनका जानना न केवल राजपुत्रों को ही वरन् सभ्य समाज में सभी को आवश्यक होता है।

नीति के अतिरिक्त युद्ध-संबंधी साहित्य भी उपलब्ध हुआ है जो उस समय के राज्यों के उपयुक्त ही है। वह समय घोर संघर्ष का था। मुसलमान, मरहठे, जाट, अंग्रेज, मुगल आदि शक्तियां अपने-अपने उत्थान में लगी हुई थीं और अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने की चेष्टा कर रही थीं। कभी-कभी दो या अधिक शक्तियों के गठबन्धन भी हो जाते थे। मत्स्य के अंतर्गत चारों राज्यों में कभी-कभी आपसी लड़ाइयाँ भी हुआ करती थीं। उदाहरण के लिये प्रतापसिंह भरतपुर राज्य में जवाहरसिहजी के आश्रित रह चुके थे परन्तु उन्हीं के राज्य से अलवर का दुर्ग प्रतापसिंहजी ने झपट लिया। और भी कई वार इस प्रकार के संघर्ष हुए। जाट राजाओं का मुसलमानों के साथ घनघोर युद्ध हुआ और मुगल भी भरतपुर का लोहा मानते थे। दिल्ली में जाटों की धाक बैठ गई थी और उन्होंने मुगलों की इस राजधानी को खूब लूटा। एक समय तो जाटों के राज्य का विस्तार अत्यधिक हो गया था। आगरा, मथुरा, दिल्ली तथा आस-पास का बहुत सा हिस्सा भरतपुर राज्य का अंग बन गया। करौली और धौलपुर के वर्तमान नव-निर्मित राज्य अंग्रेजों से दानस्वरूप प्राप्त हुये थे, यद्यपि इन राज्यों की परम्परा अलवर और भरतपुर से पुरानी है। भरतपुर और अलवर के राजाओं में युद्ध की दृष्टि से दो राजाओं के नाम बहुत प्रख्यात हैं। एक सुजानसिंह (सूरजमल) जिनकी वीरता का जो वर्णन 'सुजान चरित्र' में

किया गया है उसकी समानता का अन्य ग्रंथ प्राप्त करना हिन्दी में कठिन है। दूसरे अलवर के प्रतापसिंहजी जिनके यश और पराक्रम तथा साहसिक कार्यों का वर्णन करते हुये जाचीक जीवण ने 'प्रतापरासो'[1] नाम से एक पुस्तक लिखी। इनके अतिरिक्त मत्स्य के राज्यों में समय-समय पर छोटे-बड़े बखेड़े भी हो जाया करते थे। भरतपुर में सिनसिनी पर लडाई हुई थी, और अलवर के एक राजा ने भी एक बार अपने सभी सरदारों से जागीरें छीनने का निश्चय किया था। उस समय की एक रचना 'यमन विध्वंस प्रकास' है। भरतपुर राज्य से संबंधित वीर-साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। यहां की वीरता का क्रम बहुत समय तक चला। सुजानसिंह और जवाहरसिंह की वीरता भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। एक छोटे से राज्य का अधिपति दिल्ली के सुलतान को भयभीत कर दे और मनमानी लूट मचा कर सम्पूर्ण दिल्ली में अपना आतंक जमा दे, इससे अधिक वीरता का और क्या प्रमाण हो सकता है? कहने को भरतपुर के इन जाट राजाओं को कुछ लोग डाकू कहते हैं और इनके पूर्वपुरुष चूरामण को तो डाकुओं के सरदार से कुछ भी अधिक नहीं कहा गया है। शिवाजी को भी लोग पहाड़ी चूहा कहते थे किन्तु उनकी वीरता का साक्षी भारतीय इतिहास है। इन डाकू कहे जाने वाले जाट राजाओं ने भी मुल्क जीतने के पश्चात् राज्य-शासन संभाला, बिखरी हुई शक्ति को संगठित किया; महल, मंदिर, तालाब और किले बनवाये तथा कवि और विद्वानों का सत्कार किया। सूरजमल को ही लीजिए। डीग के भवन स्थापत्य-कला के सुंदर नमूने हैं। इनमें मुगल कला का प्राधान्य है। गोपाल-भवन बहुत ही सुंदर है। और यहां के फव्वारे तो देखते ही बनते हैं। कोई समय था जब, कहा जाता है, रंगीन फव्वारे चलते थे। मैसूर के वृन्दावन उद्यान में चालित रंगीन फव्वारे तो विद्युत् प्रकाश का परिणाम हैं, किन्तु यहां डीग में रंगीन पानी की ही व्यवस्था की जाती थी। थोड़ी मात्रा में मामूली पानी के फव्वारे आज भी चलते हुए देखे जा सकते हैं। डीग के भवनों का शिलान्यास, डीग और भरतपुर के किलों का निर्माण, गोवर्द्धन को उसका वर्तमान वैभव प्रदान करना, उदयराम, शिवराम और अखैराम जैसे काव्य-मर्मज्ञों का सत्कार करना, दिल्ली पर सफल आक्रमण करना आदि किसी भी प्रतिभाशील राजा के लिये गौरव की बात हैं।

---

[1] प्रताप रासो एक उत्तम काव्य ग्रंथ है जिसका ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व अत्यन्त मूल्यवान है। प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा इस पुस्तक को प्रकाशित करने का प्रयत्न हो रहा है। पुस्तक 'अलवर म्यूजियम' में मिली थी।

युद्ध संबंधो साहित्य के अतिरिक्त दो तीन प्रकार की सामग्री और मिलती है, जैसे अक़लनामे, राजाओं के मनोविनोद संबंधी वर्णन, इतिहास, विवाह आदि के वर्णन। उस समय अक़लनामे लिखने की परम्परा-सी प्रतीत होती है। हमारी खोज में दो तीन अकलनामे मिले। इनमें अनेक प्रकार की सामान्य ज्ञान-संबंधी सामग्री होती थी। इन पुस्तकों को यदि सामान्य-ज्ञान का कोष भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। किन्तु अध्ययन करने पर पता लगता है कि इन अक़लनामों में सुनी सुनाई बातों का ही उल्लेख किया जाता था—अनुभूत सामग्री की कमी रहती थी। वैसे इनमें ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा जीवन संबंधी बहुत सी सामग्री उपलब्ध होती है।

कथा-साहित्य के अन्तर्गत दो प्रकार का साहित्य मिलता है—एक तो पौराणिक कथाओं से संबंधित जिसमें राम, कृष्ण, शिव, गंगा आदि के आख्यान हैं। इनके साथ ही कुछ भक्तों की कथाएँ भी मिलती हैं जैसे ध्रुव, प्रह्लाद आदि। दूसरे प्रकार के कथा साहित्य में हितोपदेश की कहानियां ली जा सकती हैं। उस समय सिंहासनबत्तीसी का बहुत प्रचार था और मत्स्य के कई कवियों ने इस ओर भी ध्यान दिया। ये कहानियां गद्य और पद्य दोनों में मिलती हैं। हमारी खोज में हिन्दी-गद्य के अतिरिक्त नागरी लिपि में लिखी उर्दू-गद्य की भी एक पुस्तक प्राप्त हुई।

हस्तलिखित पुस्तकों में वैद्यक और ज्योतिष के बहुत से ग्रन्थ मिलते हैं। इनका एक अच्छा संग्रह हिन्दी साहित्य समिति भरतपुर में है। इन विषयों को, साहित्य से दूर होने के कारण, हमने छोड़ दिया है। अधिकांश हिन्दी पुस्तकें तो प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद मात्र ही हैं।

राजाओं के मनोविनोद से संबंधित कुछ पुस्तकें प्रत्येक दरबार में पाई गईं। इन पुस्तकों को राजाओं के व्यक्तिगत जीवन का प्रत्यक्षीकरण कह सकते हैं। इन पुस्तकों की विशेषता वर्णन की उत्कृष्टता है जो राजाओं द्वारा शेर आदि की शिकार का वर्णन, होली के दरबार का वर्णन, लाल लड़ाने के अवसरों का वर्णन, यात्राओं का वर्णन आदि प्रसंगों में देखी जा सकती है। दो 'विवाह-विनोद' भी मिले। इनमें एक लड़के की शादी और दूसरे में लड़की की शादी के वर्णन हैं।

इतिहास नाम से केवल एक ही हस्तलिखित पुस्तक मिली जो अलवर के बारहट शिवबख्श दान गूजू की लिखी हुई 'अलवर राज्य का इतिहास' नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमें अलवर राज्य की कुछ ऐसी बातें भी लिखी हुई हैं जिनसे

इतिहासकार का पक्षपातपूर्ण होना लक्षित होता है। वैसे मत्स्य के युद्ध साहित्य में ऐतिहासिक तथ्यों का ही प्रतिपादन किया गया है और उस समय की प्रचलित प्रवृत्ति अतिशयोक्तिपूर्ण कथन से बचाया गया है। सूदन का लिखा 'सुजान चरित्र' उस समय के इतिहास के लिये सुन्दर सामग्री प्रदान करता हैं और इसी प्रकार जाचीक जीवण का लिखा 'प्रतापरासो'। इन ग्रन्थों की यह विशेषता है कि वर्णन करते समय सैनिक, घोड़े आदि की संख्याओं को भी जैसा का तैसा बताया गया है।

अकबर की राजनीति बहुत प्रसिद्ध और सफल रही है। उनके 'आईन' का कई भाषाओं में अनुवाद हो गया है। मत्स्य में भी इस ओर कुछ प्रयास किये गये। **'अकबर कृत राजनीति'** नाम से एक पुस्तक अलवर राजभवन पुस्तक-शाला में मिली। यह पुस्तक ब्रजभाषा से प्रभावित गद्य में लिखी गई है। इसमें राजाओं के उपयोग की बहुत सी बातें बताई गई हैं। उदाहरण के लिए इस पुस्तक में कहा गया हैं कि जब कोई फरियादी आवे तो उसका 'केस' नोट कर लेना चाहिये और उन केसों को नम्बर से निबेटना चाहिये ताकि पहले पीछे होने की स्थिति न होने पाये। दंड के भी दर्जे बताये गए हैं। जैसे पहले १–उपदेश और तरकीब से काम लेना, २–दंड देना, ३–अंगभंग करना, और ४–मृत्यु दंड, जब कोई भी अन्य उपाय काम न दे सके। राजाओं के लिए अनेक उपयोगी बातों का संकेत किया गया है, जैसे १–किसान के साथ बहुत रियायत करनी चाहिये, २–हंसी-मजाक अधिक नहीं करना चाहिये, ३–किसी की बुराई करने से दूर रहना चाहिये, और ४–जो काम करना हो सोच-विचार कर करना चाहिये। इस पुस्तक में बताया गया है कि न्याय किस प्रकार किया जाय, राजा की चर्चा किस तरह की होनी चाहिये, राज-नियम कैसे होने चाहिये, आदि। इसका अधिक वर्णन इसी पुस्तक के अनुवाद तथा गद्य प्रकरण में मिल सकेगा।

राजनीति की एक पुस्तक देवीदास ने भी लिखी है। ये कविराज करौली के आश्रित थे। इनका निवास-स्थान तो आगरा था किन्तु ये अवसर रियासतों में चक्कर लगाते रहते थे। **'राजनीति'** नाम होने पर भी इस पुस्तक में सामान्य नीति का ही वर्णन है।

कवि ने 'नीति' (सामान्य नीति) की बड़ी प्रशंसा लिखी है—

नीति ही तें धरम धरम ही तें सकल सिद्धि,
नीत ही तें आदर समाज बीच पाईये।
नीत तें अनीत छूटें नीत ही तें सुख लूटै,
नीत लिये बोलें भलो बकता कहाईये॥

नीत ही तें राजा राजैं नीत ही तें पातसाही,
नीत ही को जस नवखंड मांहि गाईये।
छोटेनि को बड़े करैं बड़े महाबड़े करैं,
तातें सबही कौं राजनीति ही सुनाईये।।

कवि द्वारा वर्णित यह नीति उनके व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित है। इसका एक उदाहरण और देखिए जिसमें कुछ बातों के उत्कर्ष का वर्णन किया गया है—

सूम की उदारताई दाता की कृपनताई,
क्रोध की तपंन ताह कहो को वखानि है।
मांगन की हलुकाई गुन की सुभगताई,
घोड़ा की तुताई ताहि कैसे उर आनि है।।
मीत मिले की सिलाई अरु मान की रषाई,
और बोल की मिठाई देवीदास सुषदानि है।
कुच की कठोरताई अधर की मधुराई,
कविता की सरसाई जानि है सु जानि है।।

और देखिए 'क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये'—

(अ)–आरंभत जाय बहु लोकनु सौं वैरु होय,
दूसरें करत जाहि धर्म्म ठहरे नहीं।
करत करत जाहि उपजै कलेस बहु,
फलु असो लागे जासौं पेट हू भरे नहीं।।
अति षोटो काम जैसो कुल में कियो न होय,
अति ही दुरत कै तु पूरो ऊपरै नहीं।
देवीदास जामें लाभ परच बराबरि है,
बुद्धिमान ह्वै कें असो कारजु करै नहीं।।

(आ)–जासों अति प्रीति सब जगत में विदित होय,
जासों पुनि वैरु होय दसै दाम दीजिये।
देवीदास कहै जो जिहाज को बनिजु करें,
धूरतु कहावै ताकी बातें नहीं कीजिये।।
जिन कहूं पहलें कदापि चोरी करी होय,
कुल सील रहित विचारु कर लीजिये।
सुष चांहे आपकों तो सब को सदा को सीष,
इतने मनुष्यन सौं संगति न कीजिये।।

'संपदा' की सार्थकता—

ऊजरे महल नांहि पालिकी बहल नांहि,
चहल पहल नांहि होम की ध्वनि सी।

मति गजराज नांहि मांगने की लाज नांहि ,
कवि को समाज नांहि दीसै अरवन सी ।।
देह नांहि षाह नांहि जोरत अघाय नांहि ,
देवीदास कहै वह वसु है वमनसी ।
घने दुख जोरी घने दुषनि सों राषतु है ,
यह जो पै संपदा तो वह जोक बनसी ।।

इस पुस्तक का नाम **'राजनीति'** अवश्य है किन्तु वास्तव में इस पुस्तक की सामग्री जनसाधारण के लिये नीति का सुन्दर उपदेश है। कवि के अनुभव पर आधारित यह सामग्री बहुत हीं मूल्यवान है। काव्य और वर्ण्य-विषय की दृष्टि से यह एक उत्तम पुस्तक है। इसमें राजा-प्रजा, धनी-निर्धन सभी के काम की बातें सुगम रीति से वर्णित हैं। दुःख इस बात का है कि मत्स्य प्रदेश में लिखी इतनी अनुभवपूर्ण पुस्तक का भी प्रचार नहीं हो पाया, जैसे गिरधर कविराय या घाघ का। यह पुस्तक अनेक प्रकार की सामग्री से सुसज्जित है और इसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिये कुछ न कुछ उपयोगी बात मिल सकती है।

हितोपदेश के कई अनुवाद प्राप्त हुए। यह बात निर्विवाद है कि हितोपदेश नीति-शास्त्र का एक अत्यन्त उत्कृष्ट ग्रन्थ है। मत्स्य में इस पुस्तक का अनुवाद करने वालों में देविया खवास और रामकवि के नाम उल्लेखनीय हैं। यद्यपि नीति की दृष्टि से यह पुस्तक जगत्-प्रसिद्ध है किन्तु मत्स्य प्रदेश के साहित्यकारों ने इसके अनुवाद किये हैं अतः इस प्रसंग को अनुवाद के अंतर्गत लेना अधिक युक्तिसंगत होगा।

नीति संबंधी एक अन्य ग्रन्थ **'विनयविलास'** है जो महाराज विनयसिंह के राजकवि हरिनाथ का लिखा हुआ है। पुस्तक का समय, नाम, कविनाम, आश्रय-दाता के नाम इस प्रकार हैं—

संवत सर[५] मुनि[७] वसु[८] ससि[१]। (१८७५)
पौष शुक्ल दसइनि समुझायौ ।।
सादर कवि हरिनाथ बनायौ ।
विनैसिंह को सुजस सुहायौ ।।
परम कृपा कर यह फुरमाई ।[१]
कहिये राजनीति सुषदाई ।।

[१] 'फरमाइयें' के लिये आज तक 'फुरमाओ' का प्रयोग होता है। सवासौ, डेढ़सौ वर्ष बीतने पर भी यह प्रयोग अभी तक उसी प्रकार है। 'फरमाइयें' से तो आओ, जाओ, खाओ, गाओ, आदि के सादृश्य पर 'फरमाओ' बन गया परन्तु 'फुरमाओ' में 'फ' उकारान्त कैसे हो गया। क्या 'सुनाओ' आदि से प्रभावित होकर ?

इस ग्रन्थ का प्रयोजन इस प्रकार लिखा गया है—

कीनौ बिनैंविलास में संपति सुषमा धाम ।
राजनीति या ग्रंथ को पूषन भूषन नाम ।।

यह पुस्तक उस राजनीति से संबंधित है जिस राजनीति की व्यवस्था श्री रामचन्द्र तथा वशिष्ठ के बीच हुई थी और जो रामराज की सुन्दर भूमिका प्रस्तुत करती है । इससे स्पष्ट है कि राजाओं तथा उनके आश्रित कवियों का ध्यान राज्य की सुन्दर व्यवस्था की ओर भी रहता था—

राम-वशिष्ठ प्रबोध में वरनी मति अनुसार ।

और इसी प्रकार पुस्तक के अंत में भी—

'इति श्री महाराव राजा बहादुर विनैसिंह बलवंत विरचितायां कवि हरिनाथ कृते श्री रामचन्द्र वसिष्ठ संवादे बिनैविलासे राज श्री दूषन भूषन बर्ननं संपूर्ण । संवत १८७५ माघ शुक्ला १० गुरुवार ।'

स्पष्ट है कि यह पुस्तक मौलिक नहीं है किन्तु इस उपयोगी प्रसंग को भाषा में प्रस्तुत किये जाने का संपूर्ण श्रेय कवि को ही है ।

नीति-संबंधी बहुत सी बातें अक्लनामों में भी मिलती हैं । उनका प्रधान उद्देश्य बहुत सी जानने योग्य बातों का एक स्थान पर संग्रह करना प्रतीत होता है । हम यहां केवल दो अक़लनामों की चर्चा कर रहे हैं—

१– अलवर के संग्रहालय में प्राप्त **'अक़लनामा'** एक 'बादशाही किस्सा' समझिये जैसा ग्रन्थ के आरंभ में लिखा हुआ है—

'श्री गणेशाय नमः । अथ अकलनामा पातसाही षिस्सा लिष्यते । बात'

इस पुस्तक में पत्र संख्या ५१ है किन्तु प्रति अपूर्ण है । बहुत कुछ देखभाल करने पर भी रचयिता का नाम नहीं जाना जा सका, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि यह पुस्तक अलवर में ही लिखी गई, जैसा कि इसकी भाषा से स्पष्ट विदित हो रहा है । इसमें अकल की बातें, कहानी और बीरवल की कहानियों के रूप में 'बात' शीर्षक से लिखी गई हैं । बात—

पातसाह तहमुर साह समरकंद की फतह करी । तहां येक लुगाई अंधी कैद में आई । जदी पातसाह नें कही तेरो नांव क्या है ? तब लुगाई ने कही, मेरा नांव दौलत है । तब पातसाह नें कही, क्या दौलत अंधी होती है ? तब लुगाई नें कही, अंधी थी जब लंगड़े के घर आई । और षिसा-पातसाह अकबर बीरबल सु कही—

'षिसां', 'षीसा', 'कीसा' तीनों रूप मिलते हैं। अनेक स्थानों से उपयुक्त किस्से इकट्ठे किए गए हैं जिनमें अनेक बीरबल से संबंधित हैं। अकबर, जहांगीर, नूरजहां, शाहजहां आदि के भी किस्से हैं। इस पुस्तक में 'रामकिसन और उसकी लुगाई' का किस्सा काफी विस्तार से दिया गया है। इसको 'अकलनामा' इसी दृष्टि से कहा जा सकता है कि इसमें ऐसी कथाएँ हैं जिनसे हम दुनिया की बहुत सी बातें जान कर शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

दूसरी पुस्तक है 'अक्कलनामा'। इसके लेखक (लिपिकार) महाराज बलवंतसिंहजी के प्रसिद्ध लिपिकार जीवाराम हैं। पुस्तक की समाप्ति संवत् १८९६ में हुई।[1]

इस पुस्तक के दो भाग हैं— (१) वार्ता प्रसंग (२) सामान्य ज्ञान प्रसंग। वार्ता प्रसंग में १६३ वार्ताएँ हैं और लगभग ६९ पत्रों में लिखी गई हैं। इसके उपरान्त निम्न प्रकरण लिए गए हैं—

(१) सूबा प्रमान— बंगाल, आसाम, बिहार, इलाहाबाद, अवध, आगरा, मालवा, षानदेस, बैराट्ठ, गुजरात, अजमेर, दिल्ली, लाहौर।

(२) मनोरथ की सिद्धि— (i) उद्योग (ii) भवतव्यता

(३) फिर 'सब्द समुदाय' हैं— (i) दो दो के— निरपेक्ष, विचार—दों काम राजाओं के; राज्य के मूल दो—नीति, सौर्य।

(ii) तीन तीन के— राज्य के सहायक—संघ, सुभट, दक्ष अधिकारी; उनत्तर होते दुख—माता, पिता, गुरु

---

[1] पुस्तक के अं में इस प्रकार लिखा है—

"इति श्री अक्कलनामा संपूर्ण शुभ।"

दोहा— दसरथ सुत रघुवंस मनि, व्यंकटेस तिंहि नाम।
श्री वृजेन्द्र बलवंत के, करो सदा मन काम॥

श्री जी सदा सहाइ संवत १८९६। लिखितं चोवे जीवाराम। लेषक सरकार को बासी ताल फरे को। लिपि सुभस्थान भरथपुर मध्य किले में श्री श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः॥ १

(iii) चार के जोड़े : आदर के पात्र-विद्वान्, हाकिम, वृद्ध, तपस्वी। चार प्रकार के मनुष्य—विरक्त, चोर, संतुष्ट, मूर्ख ।

(४) वस्त्रों के भेद ।
(५) आभूषणों के भेद ।
(६) सोलह शृंगार ।
(७) कुछ रहस्य प्रभात ही उठना, इष्टदेव का सुमरन, देहचिंता मिटा- उना, दांतनि करनी आदि ।
(८) राजन कूं विचार करने योग—जमा, जमी, जालिम, जिहान, जिम्मी- दार, जमीयत, जमान ।
(९) नवरस ।
(१०) छंदों के लक्षण ।
(११) मासों के नाम ।
(१२) राग-रागनो ।

इस प्रकार इस पुस्तक में ऐसी बहुत सी सामग्री एकत्रित कर दी गई है जिसका जानना सबके लिये उपयोगी हो सकता है किन्तु उस सामग्री में भी बहुत से वृत्तान्त सुनी-सुनाई बातों पर हैं। 'बंगाल के वर्णन' का कुछ अवतरण यहां दिया जा रहा है—

मुलक कामरु याही सूवा में है। तहां रूप अरु मंत्र विद्या बहुत है। कोई रूष आदमी बरावर होय। सो फल सुन्दर देता है। वांस [के] घर हैं। और आम की वेलि होती है। ......सब एक जाति है। हिंदू मुसलमान बहनि कू परनैं हैं। एक माता से नाता है। ......मरद लुगाई स्याह रंग होते हैं। लुगाई कैई भरतार रष्षै और गंगा जमुना सरस्वती तीन्यों ही समुद्र में जाइ मिलती हैं। मरद लुगाई नंगे बहुत रहते हैं। लुंगी पहनते हैं। केती स्त्री रूष के पात पहरती है......मृगराज जनावर स्याह रंग है। लाल आष का है। गज-गज की पर है। सब जानवर की बानी बोलै।

इस ग्रंथ में खड़ी बोली के भी अनेक प्रयोग आये हैं, विशेष रूप से क्रियाओं के। इस वृत्तान्त में कही गई बातों की सत्यता पर हर कोई सहज ही अपना मत दे सकता है।

वीर-काव्य

मत्स्य प्रान्त के राजाओं द्वारा किये गये युद्ध, आक्रमण तथा अन्य साहसिक कार्यों के अनेक विवरण मिले जिनमें से कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें तथा कवित्त-संग्रह

निम्नलिखित हैं—

(१) प्रताप राशो [सो]– जाचीक जीवणकृत ।

(२) सुजान चरित्र– सूदन कृत ।

(३) यमन विध्वंस प्रकास– दत्त कृत ।

(४) विजय संग्राम– पुसाल कृत ।

(५) फुटकर कवित्त– सोमनाथ, परसिद्ध, जसराम आदि द्वारा ।

(१) प्रताप राशो [सो]

प्राप्त प्रति अलवर नरेश विनयसिंहजी के शासन काल में लिपिबद्ध कराई गई थी। इसमें उनके पूर्वज तथा अलवर राज्य के संस्थापक प्रतापसिंहजी के साहसिक कार्यों और युद्धों का सुन्दर एवं प्रामाणिक वर्णन है। इस पुस्तक की पत्र संख्या ४४।। है और इसमें ६ प्रभाव हैं।

प्रथम प्रभाव	– वंश वर्णन
२	– आमेर पहुंचना
३	– मावड़ाजुध वर्णन
४	– युद्ध वर्णन
५	– नजभखां का वर्णन
६	– सेना का वर्णन
७, ८, ९	– युद्ध वर्णन।

यह पुस्तक पौष कृष्णा ६ सं० १९०४ में लिपिबद्ध हुई। पुस्तक के अन्त में लिखा है—

'इति प्रताप रासो जाचीक जीवण कृत नमो प्रभाव पूर्णम् मोति फुस वदी ६ संमत् १९०४।'

इस पुस्तक के अन्त में 'बपतैस' (बख्तावरसिंहजी) के राजतिलक का वर्णन है। बख्तावरसिंहजी का शासन-काल संवत् १८४७ से १८७१ वि० है। पुस्तक निर्माण का समय इस प्रकार है—

अठारसै सैंतीस साप संवत् सो ह्वंयत।
पोष मास बदि तीज बार बिसपत गुरु कहियत ।।

प्रतिलिपि संवत् १९०४ में की गई थी। पुस्तक की समाप्ति 'राजतिलक बपतेस' के साथ होती है—

बपतेस रावराजा नरेस। तप बड़ो राज राजंत देस।।
नर नरू पाटपति कुलनिधान। किरवांन दान छत्री प्रवाण।।

इसमें बख्तावरसिंहजी के राज्य का वर्णन वर्तमानकाल में किया गया है

अतएव इसमें संदेह नहीं रह जाता कि इसकी समाप्ति इन्हीं के समय में हुई।

कवि का नाम, छंद-रचना आदि के संबंध में निम्न कथन देखने योग्य है—

चौपैई छंद दोहा छपै कवि जाचिक जीवन नाम है।
जुगम जोय वरनन करूं जो कूरमकुल ठाम है॥

राजा के वंश का वर्णन करते समय कवि ने उनका संबंध 'राम' से स्थापित करने का प्रयास किया है। राम द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ का वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है—

सुनत राम रिष के वचन, सावकरण सजकीन।
गयो बाज बनवास में, ते लव कर गह कीन॥

और वंश की यह परम्परा मुहब्बतसिंहजी के पुत्र तक चलाई गई है—

धज बंधी ध्रम धारियें, जोरावर जग जाप।
उपजे मोबतसिंह सुत, तप पूरण परताप॥

प्रथम प्रभाव में राजवंश का वर्णन करने के उपरान्त कवि ने प्रतापसिंहजी का 'थाना'* छोड़ना बताया है—

तज थान चले ततकाल ही।

इसके पश्चात् प्रतापसिंहजी भरतपुर के महाराज की राजधानी में पहुंचे—

मुकाम दो मझ कीन। व्रज निकट डेरा दीन॥
घर षबर पहोंची जाय। को भूप उतरे आय॥

ये डीग[1] पहुंचे जहां राजा सूरजमल निवास करते थे। प्रताप के साथ इनके मंत्री छाजूराम[2] थे।

---

* अलवर राज्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजा के पुत्र न होने पर इसी ठिकाने से उत्तराधिकारी लिए जाते रहे हैं। वर्तमान महाराज भी यहीं के हैं।

[1] डीग का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

तहां इन्द्रपुर सो ठांव। तननगर दीघ सुनाम॥

[2] छाजूराम खण्डेलवाल वैश्य थे। इनका जन्म हल्दिया परिवार में हुआ था। हल्दियावंश का अलवर तथा जयपुर दोनों राज्यों में बड़ा मान-सम्मान था। किसी समय जयपुर राज्य के मंत्री और सेनापति जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर हल्दिया ही थे। छाजूराम हल्दिया इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हैं और सरकार आदि इतिहासकारों ने भी इनका उल्लेख किया है। बनारस निवासी श्री दामोदरदास खंडेलवाल ने 'खंडेलवाल जाति का इतिहास' (अप्रकाशित) लिखते समय छाजूराम हल्दिया के व्यक्तित्व का प्रामाणिक चित्रण किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने भी इस विषय से संबन्धित सामग्री 'खंडेलवाल जागृति' के 'जाति का इतिहास' नामक विशेषांक में प्रकाशित कराई थी। 'हल्दिया वंश' के प्रमुख व्यक्तियों पर हाथरस से प्रकाशित 'खंडेलवाल हितैषी' में एक लेखमाला प्रकाशित हुई थी—लेखक का नाम है श्री नरसिंहदास हल्दिया, जिनका कहना है कि उनके पास प्रकाशित सभी बातों के प्रमाण उपलब्ध हैं।

मंत्री छाजूराम सो, बूझत बोलै बैन ।
सुनि अवाज वृजराज ही आये पातिल लैन ।

राजा ने प्रतापसिंहजी को सिरोपाव दिया और—

नगर सु डहरा[1] नाम ठाम कहियत अति भारिय ।
महल नाग बाजार ताल तर सुगढ़ सुढारिय ।।

प्रतापसिंहजी कुछ दिनों तक भरतपुर के राजा के यहां रहे, अंत में जवाहरसिंहजी से अनबन हो जाने के कारण ये भरतपुर छोड़ कर आमेर चले गये। वहां जयपुर-नरेश के साथ मावड़े के युद्ध में प्रतापसिंहजी ने अपने आश्रयदाता जवाहरसिंहजी का सामना किया.। इस युद्ध में जवाहरसिंहजी की हार हुई। कवि के शब्दों में युद्ध का वर्णन देखिये—

उर उर सों नर सोंह उछारु। नर नर नेम लियो षग बारु ।।
मर मर माचि रही दल दोय। सर सर सेल पड़ै झड़ होय ।।
कर कर कायर रोम सुकंप। षर षर मोर लई सिर चंपि ।।
छर छर होय छडाल सपार। जर जर जोय बहे षगधारि ।।
रण रण रुचिर होइ रण जंग। तर तर तोंग[2] बहंत अभंग ।।

इसी प्रकार घर घर, फर फर, थक थक, पर पर आदि की आवृत्ति के साथ युद्ध का वर्णन है। एक और वर्णन—

थके सूर सोही भरै छोरु छोहं। परै रुंड मुंड गरकैस लोहं ।।
वहै तेग वानै कमांने वरंछी। वहै गोल गोला लगै तोव अछी ।।
फूटै कटै सीस होय टूक टूकं। गिरे लोथ लोथं परे षेत कूकं ।।

डीग पर नजफखां द्वारा की गई चढ़ाई का वर्णन 'नजब' नाम से किया है। महाराव प्रतापसिंह के युद्ध, साहसिक कार्य, आक्रमण आदि का विस्तृत विवरण दिया गया है। सूदन के सुजान चरित्र के सदृश ही इस पुस्तक का भी ऐतिहासिक महत्त्व है। इसमें दी गई बातों की पुष्टि अलवर तथा भरतपुर के इतिहास भी करते हैं। 'सुजान चरित्र' तथा 'प्रताप रासो' के वर्णनों को मिलाने से उस समय का एक प्रामाणिक तथा ऐतिहासिक चित्र उपलब्ध हो सकता है।

---

[1] यह डेहरा अलवर के डहरा से अलग है। भरतपुर का डेहरा डीग के पास है और अलवर का डहरा अलवर से पांच मील दूर। अलवर वाले डहरा में ही श्री स्वामी चरणदासजी का जन्म हुआ था और वहाँ अब तक भादों शुक्ला तीज को चरणदासजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। यहाँ के वर्तमान महन्त का नाम पूर्णदासजी है। भरतपुर का डेहरा सामरिक महत्त्व लिए हुए था। आज तक कहावत मशहूर है—'डहरे की डाइन'।

[2] 'तेग' का राजस्थानी प्रयोग।

सूदन का 'सुजान चरित्र' तो प्रसिद्धि पा सका, किन्तु 'प्रतापरासो' का नाम अलवर में भी नहीं सुना जाता। मैंने जब इस वीर-काव्य का वर्णन अलवर के विद्वानों तथा ठिकानेदारों से किया तो उन्हें बड़ा आश्चर्य सा लगा कि इस प्रकार का कोई युद्ध-काव्य भी कभी लिखा गया था। इसमें संदेह नहीं कि सूदन की कविता के सामने जाचीक जीवन की कविता हल्की पड़ती है, किन्तु एक प्रामाणिक वीर-काव्य का इस तरह नितान्त लुप्त हो जाना निःसंदेह खेद की बात है।

इस पुस्तक में वर्णित डीग के वृतान्त से भरतपुर राज्य के इतिहास पर भी बहुत प्रकाश पड़ता है क्योंकि कवि ने डीग की अनेक बातों का वर्णन बहुत विस्तार के साथ किया है। नजफखां के लिये लिखा है—

दिल्ली दल आमैरि दल, अरु दिखणी दल संग।
ले चढिय बल नजब नर, गज वाजि सुचंग॥

एक प्रभाव में प्रतापसिंहजी द्वारा अलवर ग्रहण करने का वृतान्त दिया गया है। लिखा है—

षत वंचत चलिए कटक, लिये वादि क्यौ राज।
उतरे जा अलवर किलै, मिल मंत्री बंधू समाज॥

इस पुस्तक में प्रतापसिंहजी के जीवन का पूरा विवरण मिलता है, यहां तक कि नायक का स्वर्गारोहण भी दिखाया गया है—

रावराज यौ वचन कह, धर्‌यौ चरन निज ध्यान।
पहर प्रात वैकुंठ घर, पातिल कियों पयांन॥

इसके उपरान्त बख्तावरसिंहजी का राजतिलक हुआ। यहां तक को कथा इस ग्रन्थ में दी गई है। इस संबंध में निम्नांकित बातें उल्लेखनीय हैं—

१. इस पुस्तक में सूदन की शैली का अनुगमन किया गया है। निश्चय ही सुजान चरित्र, प्रताप रासो से पहले लिखी गई पुस्तक है, और बहुत कुछ संभव है कि प्रतापरासोकार को सुजान चरित्र से कुछ प्रेरणा मिली हो। हो सकता है उस समय वीर-काव्यों को लिखने की यही प्रणाली हो। उस घोर शृंगारी युग में ऐसे काव्यों द्वारा ही वीर-काव्य का वांछनीय स्रोत प्रवाहित होता रहा।

२. प्रताप रासो में प्रतापसिंह के लगभग सभी साहसिक कार्यों का वर्णन है जिनके आधार पर उनकी एक प्रामाणिक जीवनी तैयार हो सकती है।

३. इस पुस्तक से उस समय की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि होती है।

४. भाषा और छंद की अनेक त्रुटियां हैं। इसका एक कारण लिपिकार की अज्ञता कही जा सकती है।

५. पुस्तक में प्रतापसिंहजी के जीवन से मरण तक का पूरा विवरण होने के कारण इसे वीर-काव्य के अतिरिक्त एक प्रबंध-काव्य भी कहा जा सकता है क्योंकि इसमें प्रतापसिंहजी के संघर्षमय जीवन का आद्योपान्त वर्णन है।

६. इस ग्रन्थ में केवल ४४।। पत्र हैं और काव्य-गुण स्थान-स्थान पर दिखाई देते हैं।

७. पुस्तक का नाम बहुत उपयुक्त है। यह उस समय की याद दिलाता है जब हिन्दी का वीरगाथाकाल था और जब हिन्दी में अनेक 'रासौ' लिखे गए थे।

८. हिंदी में 'वीर गाथा' कहे जाने वाले काल की लगभग संपूर्ण पुस्तकें संदिग्ध हैं, उनकी रचना कब हुई, किन कवियों ने की, कितनी सामग्री ऐतिहासिक है, कौनसे अंश प्रक्षिप्त हैं—इन बातों का भी कोई ठीक पता नहीं चलता। कुछ लोग तो इन पुस्तकों में से अनेक को दो-तीन सौ वर्ष पहले की ही कृतियाँ बताते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' नामक वीर-काव्य का आज तक भी कुछ निर्णय नहीं हो सका है—न कोई प्रामाणिक प्रति है, न कवि का निर्णय और न उसमें वर्णित घटनाओं की ऐतिहासिकता। इस दृष्टि से मत्स्य का वीर-काव्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है—

(i) उनके रचयिता का पता है।
(ii) सामग्री इतिहास से प्रमाणित होती है।
(iii) एक ही कवि की लिखी पूरी पुस्तक है।
(iv) प्रक्षिप्त अंश नहीं हैं।
(v) भाषा से भी रचनाकाल की पुष्टि होती है।
(vi) नाम, तिथियाँ, सेना की संख्या और युद्धों के वर्णन सभी इतिहास-संमत है।

९. कवि के जीवन से संबंध रखने वाली सामग्री बहुत कम मिलती है। अपनी 'अज्ञता' का वर्णन कवि ने अवश्य किया है जो कवि के आर्जव

तथा शील का परिचायक है—

मैं सिप हौं तुम चरन कौं, आठौं जाम अधीन।
परूं पाय परनाम करि, कवि पंडित परवीन॥

बरन-हीन कुल-हीन जाति आधीन लीन अति।
उर विचार यों धारि अंक ये किए जोर वित॥

१०. पुस्तक का विभाजन 'प्रभाव' नाम से किया है।

(२) सुजान-चरित्र

सूदन[1] कृत। सूदन भरतपुर के एक उत्कृष्ट कवि हैं। इनका लिखा यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य में काफी प्रसिद्ध है। 'सुजान चरित्र' एक प्रबंध काव्य के रूप में है और इसमें संवत् १८०२ से १८१० तक की घटनाओं का वर्णन है। यह ग्रंथ ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इसमें दिए गए संवत् और घटनाओं का अनुमोदन इतिहास द्वारा होता है। इस ग्रन्थ के संबंध में शुक्लजी ने कुछ आक्षेप किये हैं—

१. वस्तुओं की गिनती गिनाने की प्रवृत्ति बहुत है।

२. भिन्न-भिन्न भाषाओं और बोलियों के साथ खिलवाड़ किया है—भाषा के साथ मनमानी की है।

३. चरित्र-चित्रण में गांभीर्य नहीं है।

उस समय का ध्यान रखते हुए इनमें से एक भी आक्षेप गंभीर नहीं है। वस्तुओं की गिनती गिनाना उस समय की एक प्रथा थी जिसका तात्पर्य केवल विविधता से था। यदि घोड़ों की गिनती गिनाई है तो उसका यही अभिप्राय है कि युद्ध में विविध प्रकार के घोड़े थे। इसी प्रकार शस्त्रों तथा सैनिकों के बारे में भी कहा जा सकता है। साथ ही पंडित-प्रवृत्ति तो चलती ही थी। भाषा को अच्छी तरह देखने पर पता लगता है कि भाषा के साथ इतना खिलवाड़ नहीं है जितना आचार्य शुक्ल समझते हैं। मुसलमानों से खड़ी बोली का प्रयोग कराना कोई बुरी बात नहीं है, और ग्रन्थों में भी यह बात मिलती है और उनकी बोली हिन्दुओं से बराबर भिन्न रही है—आज भी है। वर्णन को वास्तविकता प्रदान करने हेतु, विशेषतः युद्ध-वर्णनों को, शब्द की तोड़-

[1] मथुरा निवासी चौबे। ये भी महाराज सूरजमलजी के आश्रित थे। कुछ लोग सोमनाथ और सूदन के माथुर चौबे तथा सूरजमल के आश्रित होने से इस बात की कल्पना करते हैं कि दोनों व्यक्ति एक थे।

मरोड़ मिलती है जो अनुकरण वृत्ति को ध्यान में रखते हुए क्षम्य है। चरित्र-चित्रण के गांभीर्य का प्रश्न तो आता ही नहीं। ये तो लड़ाई और मुठभेड़ की बातें हैं जिनमें विजय ही एकमात्र लक्ष्य रहता था। फिर भी पुस्तक के नायक सूरजमल के चरित्र की उत्कृष्टता स्थान-स्थान पर लक्षित होती है। एक प्रकार से तो पुस्तक का ध्येय चरित्र-चित्रण न होकर युद्ध-वर्णन है।

इसमें विभागों का वर्गीकरण "जंग" नाम से हुआ है। पुस्तक की कई हस्तलिखित प्रतियां मिलती हैं।

१. मिरज़ा सफदरअली के सफदरी छापाखाना भरतपुर में छपी हुई प्रति।

२. राधाकृष्णदासजी के सम्पादकत्व में 'इंडियन प्रेस' द्वारा मुद्रित। पहली पुस्तक काफी प्रामाणिक है जैसा कि प्रकाशक की टिप्पणी से ज्ञात होता है —

> 'जानो चाहिए कि चतर सुजान परतापवान अतसुभट बड़े धीर रंड जीत महावीर महेंद्र बलदेव नल व्रजराज श्री महाराज आधिराज व्रजेंद्र सवाई बलवंतसिंह बहादुर बहादुरजंग बैकुंठ वासी ने बडी चाहना और बहुत अवलाष से यह पोथी पवत्र सुजांन चरित्र छपानी करी थी और विशेष करके इसके छपाने में यह अवलाषा थी कि हमारे बाप दादा और पुरषाओं की बहादरी और साखे मुल्कगीरा का हाल सब छोटों और बड़ों पर जश प्रकाशत होइ········· ।'

इस पुस्तक पर राज्य के प्रमुख व्यक्तियों के हस्ताक्षर भी हैं जिससे इसकी प्रामाणिकता घोषित होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'सुजान-चरित्र' के अनेक पाठ मिलते होंगे, अथवा वर्णनों में कहीं भ्रामक बातें रही होंगी। उन सब की छान-बीन की गई और सफरदजंग छापेखाने से जो मुद्रित प्रति मिली उसे प्रामाणिक मानना चाहिए। किन्तु प्रस्तावना की भाषा पढ़ने से विदित हो गया होगा कि प्रचलित पुस्तक में लिपि सम्बन्धी अनेक अशुद्धियां थीं, साथ ही यह भी मालूम होता है कि इसमें पुस्तक का मूल रूप संभवतः सफरदजंग वाली प्रति से ही तैयार किया गया है, क्योंकि दोनों प्रतियों में पाठ भेद बहुत कम हैं।

इस पुस्तक में ८ जंग (विभाग) हैं।[1] प्रत्येक जंग के अंतर्गत कुछ अंक भी

---

[1] पंडित शुक्ल ने ७ जंग लिखे हैं। पुस्तक में आठवां जंग भी है जो प्रारम्भ तो हो जाता है समाप्त नहीं होता।

हैं। प्रत्येक अंक के अंत में एक छंद है, जिसकी तीन पंक्तियां तो सब में एक सी हैं जो नीचे दी जा रही हैं, चौथी पंक्ति अंक विशेष के विषय से सम्बन्ध रखती है—

भूपाल पालक भूमिपति बदनेस नंद सुजान है।
जाने दिली दल दक्षिनी कीनें महा कलकान है॥
ताकी चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइ कै।[1]

कवि की इस रचना से उसके बृहद् ज्ञान का पता लगता है। कविवर सूदन काव्य एवं सांसारिक ज्ञान दोनों में ही प्रतिभाशील थे। इनका शब्दकोष आश्चर्यजनक है। जब वे शस्त्र, अनाज, मसाले, पेड़, फल, मिठाई, बर्तन, आभूषण आदि गिनाने लगते हैं तो वस्तुओं की पूरी सूची समाप्त कर देते हैं, और वह भी बड़े काव्यमय ढंग में। यह ठीक है कि इस प्रकार की वस्तुओं को गिनाने की प्रणाली उच्च काव्यत्व से नीचे की चीज है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय वस्तुओं को गिनाने की प्रणाली पद्धति विशेष बन गई थी। और कवि समुदाय भी अपनी बहुज्ञता का प्रदर्शन काव्य-कला के अंतर्गत ही समझता था।

युद्ध का वर्णन बहुत ही उत्तम रीति से किया गया है।

ध्वन्यात्मक शब्दों की आवृत्ति पुनः पुनः हुई है। एक अवतरण देखें—

घड़धद्धरं घड़धद्धरं भड़भब्भरं भड़भब्भरं।
तड़तत्तरं तड़तत्तरं कड़कक्करं कड़कक्करं॥
घड़घग्घरं घड़घग्घरं झड़झज्झरं झड़झज्झरं।
अररर्ररं अररर्ररं सररर्ररं सररर्ररं॥

घननननन, सननननन आदि शब्दों की आवृत्तियां भी पाई जाती हैं। अस्त्र-शस्त्रों, गोला-बंदूकों के शब्द को शब्दों की ध्वनि द्वारा प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई है। कवि ने युद्ध में भाग लेने वाले दोनों दलों के साथ न्याय किया है। अतिशयोक्ति द्वारा वर्णनों को काल्पनिक बनाने की चेष्टा नहीं की है। सेना आदि की संख्या बताते समय वास्तविकता की ओर ध्यान दिया गया है। ऐसा मालूम होता है कि कवि को सेना संबंधी वास्तविक संख्याओं का पूरा पता रहता था। उसने निश्चय के साथ बताया है कि किसी युद्ध विशेष में कितने घुड़-सवार थे, कितने पैदल, कितना तोपखाना आदि थे। साथ ही इस पुस्तक में जितने भी नाम आये हैं वे सब सच्चे हैं, निश्चय रूप से इन लोगों ने राजा के साथ युद्ध में भाग लिया था। सूदन के वर्णन में ऐतिहासिक महत्त्व का गौरव है—

१. युद्धों की जो तिथियां दी गई हैं उन्हें इतिहास में दी गई तिथियों

---

[1] इसके पश्चात् चौथी पंक्ति में वर्णित विषय का उल्लेख होता है।

से मिलान करने पर ठीक पाया गया है जैसे अठारह सौ चार (१८०४) में मरहठों को हटाना, १८०५ में सलावतखां को परास्त करना, १८०६ में पठानों पर चढ़ाई करना, दिल्ली लूटना आदि ।

२. युद्ध में भाग लेने वाली हर प्रकार की सेनाओं की संख्या ठीक दी गई है ।

३. पुस्तक में दिए गए नाम सब ऐतिहासिक हैं । जिन मुसलमान मरहठा, जाट आदि ने युद्धों में भाग लिया उनके नाम इतिहास द्वारा प्रमाणित हो चुके हैं ।

४. पुस्तक में पाए हुए नगरों के नाम जैसे डीग, कामा, पथैना, नोंह सभी उन्हीं स्थानों पर आज भी हैं जिन स्थानों का वर्णन सुजान-चरित्र में मिलता है । उनमें बताए गए किले भी मौजूद हैं, यद्यपि आज वे खण्डहर हुए जा रहे हैं ।

५. ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने युद्धों को स्वयं देखा था । पुस्तक में दिए गए वर्णन एक प्रत्यक्षदर्शी की कृति जैसे विदित होते हैं । कुछ लोगों का अनुमान है कि यह पुस्तक इन युद्धों के दस-बारह वर्ष बाद लिखी गई होगी किन्तु पुस्तक पढ़ने पर ऐसा आभास मिलता है जैसे घटनाओं को प्रत्यक्ष देखने के उपरान्त उन्हें शीघ्र ही वर्णित किया गया हो ।

६. अपनी इस रचना में सूदन ने कुछ कवियों की नामावली दी है जिसकी संख्या लगभग १७५ है । यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि नामावली कालक्रमानुसार ही है किन्तु यह मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि इसमें उन्हीं कवियों के नाम हैं जो सूदन के पूर्ववर्ती हैं । इन्हीं नामों में एक नाम सोमनाथ भी आता है । यदि यह सोमनाथ वही है जो सूरजमल के दरबार में था तो सोमनाथ और सूदन को एक मानना कैसे सम्भव हो सकता है । इसके अतिरिक्त यह भी समझ में नहीं आता कि जब सोमनाथ ने अपने सभी ग्रन्थों में अपना नाम सोमनाथ ही रखा है तो फिर केवल 'सुजानचरित्र' में ही सूदन नाम क्यों ग्रहण कर लिया । इन बातों को देखते हुए इन दोनों कवियों को एक मानना युक्तिसंगत नहीं ।

७. पुस्तक में कवि अपना, अपने राजा का तथा अन्य व्यक्तियों का वर्णन भी देता है ।

८. इस पुस्तक में मुसलमानों की वार्ता खड़ी बोली में लिखी गई

है, वह भी बहुत साफ और चलती हुई—

'इस वास्ते तुम से अरज बहु भांति कीजत हैं बली।
अत्र हाथ उस पर रक्खिये तव लेइ जंग फतेअली ।।'

खड़ी बोली और व्रजभाषा का साथ-साथ प्रयोग ही कुछ आलोचकों की भाषा की गड़बड़ी के रूप में अखर सकता है।

पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र ने पटना विश्वविद्यालय में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास पर प्रभाव' नामक एक भाषणमाला दी थी जो पुस्तक रूप में प्रकाशित है। इसमें सूदनकृत 'सुजानचरित्र' द्वारा प्रस्तुत जो १८०२ से १८१० वि० तक का विवरण है, उस पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। अपने भाषण के उपसंहार में मिश्रजी का कहना है—

'सूदन का वर्णन १७४५—१७५३ ई० का है और है बड़ा सजीव। इनका साहित्य बुरा नहीं है, परन्तु ग्रन्थ का ऐतिहासिक मूल्य बहुत बढ़िया है, क्योंकि कवि ने उस काल का सजीव चित्र सामने उपस्थित किया है। १७३९ में नादिरशाह ने दिल्ली पर अधिकार कर के लूट एवं कत्लेआम किया था। बादशाह दिल्ली का बल १७१७ से ही मृतप्राय था, और नादिरशाह के आक्रमण से और भी ध्वस्त हो गया। प्लासी का युद्ध १७५७ में हुआ और पानीपत का तीसरा युद्ध १७६१ में। अतएव उस काल तक अंग्रेजों की शक्ति नहीं चढ़ी थी, न महाराष्ट्रों की घटी थी। ऐसे समय का सजीव चित्र उपस्थित करने से सूदन कवि धन्यवादार्थ हैं। सूदन तथा ऐसे अन्य कवियों ने हिन्दू शूर-वीरों का सजीव वर्णन कर के उस काल के हिन्दू समाज में सामरिक शक्ति एंव उत्साह-वर्द्धन किया। इस प्रकार भारतीय इतिहास के एक अंग का इन लोगों ने न केवल चित्र खींचा, वरन् हिन्दू शक्ति अथच् उत्साहवर्द्धन द्वारा इतिहास पर भी भारी प्रभाव डाला।'

यह पुस्तक पूर्ण नहीं है। हो सकता है सूदन का शरीर न रहा हो, अथवा वे भरतपुर को छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले गए हों। पुस्तक अवश्य ही अधूरी रह गई। इस पुस्तक में निम्नलिखित प्रकरण हैं—

१. असदखान हतनो नाम प्रथम जंग।
२. मंगलडूगरी-युद्ध-विजय नाम द्वितीय जंग।
३. सलावतखां समर विजय।
४. पठान युद्ध उभय वर्णन।
५. अन्य युद्ध।
६. घासहरो विजय।
७. दिल्ली विध्वंसिनो नाम।
८. यह जंग अधूरी रह गई है।

यदि यह ग्रन्थ बराबर चलता तो निश्चय रूप से हमें सूरजमल के समय का पूरा हाल मिल जाता। सूरजमल सन् १७६३ ई०, (१८२० वि०) तक रहे।[1]

१. **विजय संग्राम**– षुसाल कवि। इस पुस्तक की पत्र संख्या २२ है। पुस्तक का प्रणयन काल संवत् १८८१ है—

१ ८ ८ १
संवत ससि वसु अष्ट विधु पूरन जय संग्राम।
माघ वदी दसमीं सुतिथि सुक्रवार विश्राम ॥[2]

आरम्भ में गणेश स्तुति है—

सु-षुसाल हिय नाम (सरस) धरि अति अनूप सोभा सहित।
वर विनय सिंह कूरम कलस करौं सदां सुषसार नित ॥

सर्व प्रथम राजवंश का वर्णन सूर्य, मनु, इक्ष्वाकु……से किया है। इसी प्रकार आगे बढ़ते बढ़ते—

तिनसुत जोरावर भये राजकाज सिरताज।
मुहबतसिंह तिनके भये करो जगत सुभराज ॥
प्रगट भये परताप सुत फैलो जगत प्रताप।
राज करो वहु देस लै वीर रूप धरि आप ॥
वषतावर तिनके भये……………………[3]
वषतावर कें सुत भयो विनयसिंह महाराज।
सूरवीर रन धीरधर सब राजनि सिरताज ॥

विनयसिंह की कीर्ति का वर्णन—

चहचही चंद ऐसी चरचि चारु चांदिनीसी,
चंदन सी चवर सी चारु छवि धारी है।
छीर के सील हरि छहरि गई छिति छोर,
छीरनिधि छीहर हू की छकि छवि हारी है ॥

[1] इस प्रकार का प्रयास कवि उदयराम द्वारा 'सुजान संवत' नामक पुस्तक में किया गया है। यह पुस्तक १८२० वि० तक चलती है।

[2] इसी प्रकार पुस्तक के अंत में लिखा है—

'इति श्री श्री महाराव राजा श्री सवाई विनयसिंहजी बहादुर विजयसंग्राम संपूर्णम्। श्रीरस्तू। संवत् १८८१ माघ शुक्ला तिथयो १३ भौमवासरे लिषितं भगवान। श्रीरस्तू। शुभंभूयात्।

[3] 'तिनके भये' का अर्थ यही लगाना चाहिये कि उनके पश्चात राजा हुए–चाहे दत्तक हों अथवा औरस पुत्र।

वह वही बास वेस वनक बनाय बनी,
वरनत षुसाल बलीपुर हूं विहारी है।
धाई सुरलोकन सुहाईं ओक ओक चहूं।
राजा विनैसिह छाई कीरति तुम्हारी है॥

और भी—

कंपत दुर्जन दुरत सिंह सिंहनि संग छुट्टिय।
वृक बराह विकराल वाघिनी छन तरु तुट्टिय॥
मद गयंद दलमलत सेस सीसन फन फुंकत।
कहत षुसाल दिगपाल धरा भूधर हलि हुंकत॥
चढ़ते तुरंग वर षग्ग कर धौसा होत धुकार तब।
वषतेस-नंद अवतंस मनि साजत सहज सिकार तब॥

पुस्तक रचने का कारण—

बिनैसिंह महाराज नै अग्या करी बुलाइ।
कवि षुसाल रासो सुधरि करियै मन चित लाइ॥

संग्राम का हेतु इस प्रकार दिया है—

बहुत प्रपंच रच्यो सबनि बली प्रभू करि हेत।
मिलि जयकिसन नवाब अरु टामी फाटन नेत॥
टामी फाटन नेत कियो सुष दीरघ धरिकैं।
राज बिगारन काज लाज नेकी कहि करिकै॥
पौरुष बल बहु करै ठौर ठौर मंत्रै रहत।
रातद्यौस दुरि दुरि फिरत वकत पूछत बहुत॥
बलवंत सिंह[1] कौ दोस नहि, इन सबहुन को जानु।
बुद्धि कौन की थिर रहत, संगति दोस प्रमान॥

इस युद्ध में कुछ मुसलमानों ने भी भाग लिया था। इस लड़ाई का वर्णन

---

[1] बख्तावरसिंहजी ने थाना ठिकाने के विनयसिंहजी को अपना उत्तराधिकारी चुना। उधर उनकी प्रेमिका से उत्पन्न बलवन्तसिंह अपने को राज्य का अधिकारी बताता था। बहुत झगड़ा हुआ और उसी का वर्णन इस 'विजय संग्राम' में दिया हुआ है। इस झगड़े का अन्त संवत् १८८३ में अंग्रेजों द्वारा कराया गया। जब राज्य का उत्तरी भाग बलवन्तसिंह को दे दिया गया तो उन्होंने तिजारे को अपनी राजधानी बनाया। १९ वर्ष राज्य करने के उपरान्त वे निस्सन्तान देवलोक सिधारे और तिजारा का राज्य फिर अलवर राज्य में मिला लिया गया। कवि ने इस सारे बखेड़े में बलवन्तसिंह को दोषी न मान कर उनके साथियों का दोष बताया है।

बहुत बढाचढ़ा कर किया गया है—

मुसल्ला जुरे सब हल्ला ददै औरल्ला की बहु गल्ला बजाइकै ।
यहल्ला की दाढी औ छल्ला करैं सुपल्ला सवारैं मुकल्ला उठाइकै ।।
विनैसिंह प्रताप के तेजही सौं मुल्ला नवाब भये अकुलाइकै ।
अल्ला करैं बहु भल्ला वचैंत अरल्ला दये सब सल्ला छुडाइकै ।।

फरकि फरकि गिरि परत धाइ । कुइ चलत भाजि अरु लटपटाइ ।।
कुइ चलत धार स्रोणित अनंत । कुइ दुहमि परे बोलत नवंत ।।

गोला गोली परत हैं, जो वर्षा के मेह ।
मानस की कह बात है, पंक्षी पंषन देत ।।

दोऊ ओर अनि वनी फौजन की जुरी जहां ,
छुटत अराविन कै गोला भय भीत के ।
उमड़ि उमड़ि आये घुमड़ि चहू ते वीर ,
छत्रिय सरूप धारि जानत सुभीत के ।।
कहत षुसाल कवि विनयसिंह महाराज ,
आगे लरे सुभट सुहाये नित नीत के ।
वड़े वड़े दाढ़ीवारे सामुहे न ठाढ़े भये ,
गाढ़े लरे वीर मन बाढ़े जय जीत के ।।

इनकी कविता सामान्य श्रेणी की समझिये । इतिहास से पता लगता है कि यह एक छोटा सा मामला था जिसमें बलवंतसिंह ने इधर-उधर से सहायता प्राप्त कर राज्य पाने के लिए झगड़ा किया था । थोड़ी बहुत लड़ाई भी हुई और अन्त को अंग्रेजों ने बीच-बचाव करा कर राज्य का बंटवारा करा दिया था । कवि इस घटना को संधि हुआ कहते हैं और इसे विनयसिंहजी की विजय के रूप में मानते हैं—

सोहत बैठ मसंद पर, विनयसिंह महाराज ।
जैसे सुरपुर लोक में, राजतु है सुरराज ।।

इस युद्ध में रामू षवास, ठाकुर अपयसिंह, बलदेव दीवान और कुवरमल्लजी ने राजा का साथ दिया था । युद्ध के समाप्त होने पर राजा की ओर से इन्हें सिरोपाव दिए गए—

सिरोपाव बहु देत आज । यह विनयसिंह सुभ राजु साजु ।।
सब सिरोपाव ले कै पवास । पहुंचि आय अलवर मवास ।।

यद्यपि एक छोटा सा ही प्रसंग था किन्तु कवि ने इसे बढ़ा कर एक बड़ा युद्ध खड़ा कर दिया है । परिणाम भी राजा के विपरीत ही था किन्तु कवि ने उसे एक 'विजय' माना है । इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व

कम ही मानना चाहिए। सुजानसिंह और प्रतापसिंह से सम्बन्धित ग्रंथ—'सुजान चरित्र' और 'प्रतापरासो' अपेक्षाकृत कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और मत्स्य-प्रदेश की ऐतिहासिक काव्य-परम्परा के वास्तविक प्रतीक हैं। इसी प्रकार एक अन्य ऐतिहासिक काव्य 'यमन विध्वंस प्रकाश' भी इतना उत्कृष्ट नहीं ठहरता।

४. यमन विध्वंस प्रकास– इसके रचयिता हैं उमादत्त 'दत्त'। ये महाराज शिवदानसिंहजी के समय में थे। इस पुस्तक के पढ़ने से पता लगता है कि एक बार शिवदानसिंहजी ने यह विचार किया कि सभी राजपूतों को उनकी जागीरों से हटा दिया जाय और उन्हें राज्य में मिला कर अपने काबू में कर लिया जाय। मंत्रियों ने ऐसा न करने की बार-बार प्रार्थना की किन्तु राजा न माना। अन्त में सारा मामला पोलिटिकल एजेंट के पास गया और केडल[1] साहब को भेजा गया। कवि ने लिखा है—

जाते छाये तुरक तमाम अलवर बीच,
ठौर ठौर अधिक अनीति अनुसरते।
छूट जाते करम धरम नेम आचरण,
बरन विवेक कीउ धीरज न धरते॥
दत्त कवि कहै प्रजा पीड़ित विकल ह्वै कै,
सत्ति होड़ि पातक पयोधि बीच परते।
साहब सुजान बली कैंडल अजंट वीर,
या विधि सपूती मजबूती जो न करते॥[2]

इसके पहले शिवदानसिंहजी ने कहा था—

जेते गढ़ जंगी जंगी गब्बर गनीम जेते,
जुद्ध करि मारो सबै जेर करि राखौ में।
भूमिया जितेक छीन लेहू सब ही की भूमि,
छार करि छिन में सुजस अभिलाखौं में॥
दत्त कवि कहै यौं कहत सिवदान भूप,
संभु की दुहाई बैन सत्य करि भाषौ मैं।
छोटे बड़े वीर धीर साहसी जागीरदार,
जाति रजपूत नरु खंड में न राखौ मैं॥[3]

---

[1] केडल साहब के नाम पर स्थापित अलवर का केडलगंज विख्यात है।

[2] केडल साहब संवत् १९२७ में अलवर आए।

[3] कहा जाता है यह सारा झगड़ा मुंशी अम्मुजान के कारण हुआ। इनके बहकाने पर ही राजा ने ऐसी नीति की घोषणा की। राजा के भाई, बेटे, जागीरदार आदि सभी ने उनका विरोध किया और 'रामदल' नाम से अपना संगठन किया। विशेष वर्णन अन्यत्र देखें।

केड़ल साहब ने अच्छी नीति से काम किया और राजा को तथा रामदल के लोगों को काफी समझाया । अन्त में राज्य का सारा कार्य अपने जिम्मे ले लिया । कवि ने साहब के शब्दों को खड़ी बोली में लिखा है—

साहब का वचन

कौन बिगार महीप कीयो केहि कारन फौज घनी भरते हौ ।
द्वंद मच्यौ सब देस बिधे सत्र सेस कलेसन क्यों करते हौ ।।
आप कहौ सो करें हम न्याव, निसंक सुधीरन कौं धरते हौ ।
बंधु विरोध बढ़ाय वृथा अब जुद्ध कहौ तुम क्यों करते हौ ।।

वास्तव में शिवदानसिंह बहुत जिद्दी था और इसी कारण उसके भाई-बेटे सब उसके खिलाफ हो गए थे । उसकी 'हठ' के बारे में कवि ने लिखा है—

मांनस अधिक अंध्यार चन्द्रमा चार प्रकाशे ।
उलटि गंग बर बहै कामरितु प्रीति बिनाशे ।।
तजै गवरि अर्धंग अचल ध्रुव आपन चल्लै ।
शंकर फन फुंकरें काल हूंकरें उतल्लै ।।
मर्जाद छोड़ सातों समद दौरे दसहु दिसान को ।
छूटे न तदपि कविदत्त कहि हठ म्हीप शिवदान कौ ।।[1]

---

[1] दत्त के कुछ अन्य कवित्त देखिए जिनमें उनकी उग्रता दिखाई देती है—

१. खाट खटूल भई महँगी अति फाल कुदाल तमाम भडैंगो ।
मेख बिंदूक सिंदूक किंवाड़ सो दांतरी बांकरी दाम हडैंगो ।।
हे करुणानिधि कीनौ कहा यहि सोचे बिना नहिं पूरौ पड़ैगो ।
खाती लुहार भये मुनशी अब मांदरी फांदरी कौन घड़ैगो ।।

२. गूजरमल स्वामी भये, भंगिन के सिरदार ।
करें सफाई शहर की, भृष्टा खाय अपार ।।
भिष्टा खाय अपार मूंत मौरिन को पीवै ।
भये जात ते भ्रष्ट विप्र तिनकौ नहिं दीवै ।।
कहै दत्त कविराय भये भूतल तें ऊजर ।
कुपढ़ कलंकी क्रूर कुटिल ये स्वामी गूजर ।।

३ जाट जुलाहे जुरे दरजी मरजी मैंचक और चमारौ ।
दीनन की सुधि दीनी बिसार सो येकहु बार न लेत बुहारौ ।।
को शिवलाल की बातें कहै दिनरात रहै इनही को अखारौ ।
ये ते बड़े करुनानिधि को इन पाजिन नै दरबार बिगारौ ।।

[शेष पृष्ठ १६३ पर देखिए]

[शेष पृष्ठ १९२ का]

४. भीर भरी रहै भांड़न की नित ग्रावैं घनी गनिका गुनवारी।
चारन भाट कलावत टोली मचावत द्वारैं कोलाहल भारी।।
मांगन वारै षराव करैं कवि दत्त बड़े जस के ग्रदिकारी।
दारी बड़ो दुख तदे ग्रजी हमें च्यार दिनां ते मिली सिरदारी।।

इस कवि में उग्रता, व्यंग्य, भाषा-पटुता, साथ ही ग्रवसरवादिता ग्रादि बातें पाई जाती हैं। ग्रवसर को देख कर शिवदानसिंह, महताबसिंह, कायस्थ ग्रादि की प्रशंसा भी करते रहते थे। इनकी कविता सुन्दर ग्रौर सशक्त है तथा भाषा स्वच्छ ग्रौर ग्रलंकृत। दो एक उदाहरण देखिए--

हीरा—

षानि ते कढ्यो है षरसान पै घड्यौ है फेरि,
कंचन मढ्यो है त्यौं ग्रनूप ज्योति जाग्यो तैं।
कीमत बढ्यो चढ्यो कर में प्रवीनन के,
ग्रादर ग्रपार पाय प्रेम रस पाग्यो तैं।
दत्त कवि कहै लग्यो मुकट महीपन के,
हार बनि कामनि हिये में ग्रनुराग्यो तैं।
ये हो सुन हीरा भयो जगत जहीरा मूढ़,
ताहू पै नैंक ना कठोरपन त्याग्यो तैं।।

तगादगीर—

थर थर कांपे देह देखत तगादगीर,
सिथिल सरीर बुद्धि धीर न गहत है।
कामनी कलेश करै घर में हमेशा हाय,
सेवा करिवै कौं चित नेंक न चहत है।।
दत्त कवि कहै जाके सिर पै करज होत,
कस कर छाती निसिवासर दहत है।
चोरन में गनती करत सब लोग, ताही
सौं साहूकारन में साखी ना रहत है।।

झाली महारानी की मृत्यु—

प्यारी भूप भारी दुलारी भूप भारे की सु,
भारी गुन मंडित दुनी के ग्रोक ग्रोकन में।
भारी सनमांन सान सीतलता सुजांनपनों,
भारी दांन दोलति लुटावति ग्ररोक में।
दत्त कवि कहै धन्य झाली महारानी जग,
जाकी प्रभुताई सौं समाने शत्रु शोक में।
छाजी छवि सुमति दराजी कलि कीरति कै,
राजी करि राजहि विराजी देवलोक में।।

घमासान लड़ाई—

चली चारु बंदूख चारौं दिसा ते।
परे वीर ह्वै वीरता की निसा तें॥
कढी खूब समसेर हैं दामिनी सी।
लखी खेत में काल की कामिनि सी॥
कटे केतकौं केतकौं धीर तज्जैं।
धरा छोड़ि पाजी मुसलमान भज्जैं॥[1]

इस युद्ध में तोपखाना छीन लिया गया, और आग लग जाने के कारण बहुत से लोग मारे गए। वर्णन की उत्कृष्टता और युद्ध की भयानकता स्थान-स्थान पर लक्षित है।

५. **वीरता संबंधी कुछ स्फुट छंद**– अनेक कवियों के युद्ध सम्बन्धी छंद स्थान-स्थान पर बिखरे हुए पाए गए। इनमें जहां राजाओं की वीरता का वर्णन है वहां उस समय के संघर्षमय वातावरण का भी एक चित्र मिलता है। उदाहरण-स्वरूप कुछ छन्द दिए जा रहे हैं—

१. कवित्त बत्तीसा असदखां की जंग कौ—

उद्धत असदखां युद्ध कौ निधांन जान,
लैन उनमान फतेअली ने पठायो दूत।
कहियौ नवाब सों सलांम में भी हाजर हों,
जानत न थोल दर पुस्त इह मेरा कूत।
इधर न आवौ तो महर फुरमावौ मुझे,
बंदे हम साहि के हमेसां हमें तुम्हें सूत।
षातर न आवै तौ सु वाही बंदा बंदगी में,
मौला जिसे देहिगा रहैगा षेत मजबूत॥

---

[1] इस युद्ध में राजा ने मुसलमानों से सहायता ली, किन्तु यह सहायता मिलने पर भी राजा को हार खानी पड़ी। चारों ओर बदअमनी फैली और राजा ने राज-काज छोड़ दिया। उसी के परिणामस्वरूप केडल साहब आये। इस झंझट को बढ़ाने वाले मुंशी अम्मूजान की हवेली अभी तक राजगढ़ में मौजद है। इन मुन्शीजी के सम्बन्ध में एक जनोक्ति प्रसिद्ध है—

अम्मूजान की बाकरी, चर गई सारौ खेत।
लखजी के पाले परी, खाग्यौ खाल समेत॥

'लखजी' रामादल के एक प्रसिद्ध वीर थे।

२. दिल्ली की लूट के कवित्त—

लाल दरवाजे पर सूरज सुभट गाजे,
ताते ताते वीर हथ्थ आयुध दराजे हैं।
भाजे पुर लोगन कपाट दरवाजे दीने,
अरध भुसंडिनु के उद्धत अवाजे हैं।।
कहूं सरवाजे छरवाजे लम छर वाजे,
वाजे बाजे भाठिन सौं फौरें सिरसाज हैं।
जंग के लराजे उमराजे लहि छाजे ओट,
केते लोट पोट मिले आजे पर आजे हैं।।

वरनों कहां लौं भुवलोक में जहां लौं भई,
दिल्ली में तहां लौं वानी सूरज-प्रताप ते।
मुगल मलूकजादे सेप वे सलूक प्यारे,
सैयद पठान अवसांन भूले लापते।।
आया रोज कांमत मलामत सैं पाक हुवे
रहेंगे सलामत षुदाई आप आप ते।
जार जार रोती क्यों वजार मीरजादी यारौं
जिनका छिपाउ महताब आफताब ते।।

३. महाराज रणजीतसिंह और फिरंगी—

(अ) सुरपुर भवन भरथपुर देवन को,
काहे काज आये हो फिरंगी सूरछत्ता में।
धरि कैं नसैनी चढ्यौ कुरसी तमूर लियौ,
कीये मन मोरे गोरे सुरत चकत्ता में।
उठे वृजलाला हंकारि हाथ हाथर लें,
हिम्मत करस लोह लंगर लरत्ता में।
कहत परसिद्ध महाराज रणजीतसिंह,
धाय धाय धामें पग आगे ही धरत्ता में।।

'परसिद्ध' द्वारा लिखे ऐसे अनेक छंद मिले। इन छंदों में निम्नलिखित एक पांचवीं पंक्ति और पाई जाती है—

भेजी फोरि पटक पछार खाती षंमन सौं,
रेजी अंगरेजन की रोवें कलकत्ता में।

(आ) षेलत फुलता मता जोर जसमत्ता के,
पिनारे निदारि कलकत्ता रीर पारेंगे।
सुजार मीरषान से पठान जठे तुम्हारे प्रान,
लैंन कौं कृपान वान मारेंगे।।

कंपि कंपि कंपिनी पुकारत अंगरेजन पै,
अंग अंग अंग सौं त्रिभंग करि डारेंगे।
हल्ला में हारेंगे फिरंगी हजार भांति,
जालम जटा के कटा करि डारेंगे॥

(इ) धायौ कलकत्ता ते भरत्ता भारी फौजन कौं,
पूरब को दानौ आय वज में झलूकरा।
चौंके द्रगपाल छत्रभारी महि मंडल के,
जैपुर उदैपुर उठाय आयौ लूगरा॥
माचोरी कौ राव[1] सो तो जग में जनानौं भेष,
करि पहिरै कर चूरौ अनवट घूघरा।
कहत परसिद्ध महाराज रनजीतसिंघ,
सत्रै हजार दल मारे भट भूगरा॥

इसके बाद पांचवी पंक्ति यह है—

तेगनते तोड डारे मूड अंगरेजन के,
परे रहे पेत में भिखारी के से कूलरा॥

(ई) माचौ घमसान कोस तीन लों लोथि परीं,
झरि गये सूर साचे मुहरा अगार तें।
बाई यों भुजा ते मार कीनी जसवंत राव,
परे रहे रुंड मुंड लगि वे मलाहि ते[2]॥
कहत जसराम अंगरेज जंग हारि गए,
जीते जदुवंसी सूर लरत उछाह ते।
दोऊ दीन जानौ महाराज रनजीतसिंह,
हारि में फिरंगी फन पट क्यों मिलावते॥

(उ) अरे फिरंगी अग्यान, यहां ते उठि जा रे गुलाम,
ह्या फते नहीं पावेगा।
ये है गढ़ भारा, जैसा दूसरा सितारा,
या का राम रखवारा, गीदी हाथ नहीं आवैगा।
ये हैं जदुवंस, इनमें राजन कौ अंस,
इन मार्यो मथुरापति कंस, गीदी तोहू कूं नवावेगा।
यो मति जानै जट्ट है थोरे इनके,
घु दच्छिन वुलाय तेरे डेरे लुटवावेगा।

---

[1] भरतपुर के महाराज रणजीतसिंहजी का शासनकाल संवत् १८३४ से १८६२ वि० है। इस समय अलवर में विनयसिंहजी का शासन था।

[2] 'मलाह' नाम का एक छोटा गांव भरतपुर नगर से बिलकुल लगा हुआ है

(ऊ) गोरेन की बीबी डकराय के पुकार करें,
भागो हो कंथ जसमंत चढ़ि मारेगा।
आनि परे बृजभूमि भोरे काहू और ही के,
वही बृजवारा तेरी भुजा कूं उखारेगा॥
अडे सूरवीर तेरे गोलान कूं गिनत नाहिं,
लै के समसेर जोधा जोधन कूं पछारेगा।
उरक तिलंगी चपरासी सब हारि गए,
जसमंत औतार कलकत्ता लौं रौर पारेगा॥

४. दिल्ली-दुल्हन—

आगे ते सरस साजे सबल जड़ाऊ साज,
बाजै दीह दुंदभी अवाजै जीति वासे कौ।
तेज मुष मरवट से हटौ परताप पुंज,
औज कर कंकन है षग्ग रंग रासे कौ।
लगन बसंत-पांचे उलझत दोनों दिसा,
नृपति बराती सर्व सहर तमासे कौं।
दुलहन दिल्ली पौर तोरन कौ मार,
बृजदूलह बलवंत आये डेरा जनवासे कौं॥

इन कवित्तों में रणजीतसिंहजी के समय में अंग्रेजों द्वारा भरतपुर का किला जीतने के लिए किए गए युद्धों से सम्बन्धित प्रसंग हैं। इतिहास में सुविख्यात है कि भरतपुर किले का घेरा अंग्रेजों को बहुत मँहगा पड़ा। चार-चार बार आक्रमण करने पर भी जब किला किसी प्रकार सर नहीं हुआ तो कूटनीति और छलबल से इस किले को लिया गया।

युद्ध-साहित्य में कुछ पुस्तकें वास्तव में उत्कृष्ट हैं इनमें सूदन का लिखा 'सुजान चरित्र' तथा जाचीक जीवन का 'प्रतापरासो' विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों का ही ऐतिहासिक महत्त्व है और इनमें वर्णन-विविधता भी मिलती है। इस युग में कुछ साहित्य ऐसा भी रचा गया जिसमें अतिशयोक्ति है, इनमें 'विजयसंग्राम' और 'यमनविध्वंसप्रकास' के नाम लिए जा सकते हैं। स्फुट छंदों में जाटों के आतंक का वर्णन है। जाट और अंग्रेजों की लड़ाई न केवल इतिहास में एक महत्वपूर्ण पृष्ठ है वरन् साहित्य में भी उस समय की वीर तथा रौद्र रस पूर्ण कविताएं अपना एक विशिष्ट स्थान रखती हैं।

मत्स्य प्रदेश में कुछ कथा-साहित्य भी उपलब्ध होता है। भक्ति से संबंधित कथा-साहित्य का वर्णन अन्यत्र हो चुका है तथा हितोपदेश आदि की कथाओं का वर्णन अनुवाद के प्रसंग में होगा। महाराजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित बहुत

सी कथाएं प्रचलित थीं जिनमें सिंहासन बत्तीसी तथा पंचदण्ड कथा बहुत ही प्रसिद्ध हैं। अनेक कवियों ने इस दिशा में प्रयास किया। इन कहानियों द्वारा नीति और वीरता दोनों का ही प्रतिपादन हुआ जिनके लिए विक्रमादित्य का नाम विश्व में विख्यात है। एक प्रकार से विक्रम-साहित्य विश्व-साहित्य में नीति और न्याय का प्रतिनिधित्व करता है।

प्राप्त सामग्री में से कुछ का उल्लेख यहां किया जा रहा है—

१. सिंहासन बत्तीसी — अखैराम कृत
२. विक्रम चरित्र — वैद्यनाथ कृत
३. विक्रम विलास — अखैराम कृत
४. विक्रम विलास — गंगेस (विक्रम-बेताल) कृत
५. सुजान विलास — सोमनाथ कृत

सिंहासन बत्तीसी— विक्रम-विलास और सिंहासन-बत्तीसी लगभग एक सी कृतियां हैं। सिंहासन बत्तीसी में अखैराम ने अपना परिचय आदि नहीं दिया है किन्तु 'विक्रम-विलास' के नाम से इन्हीं की लिखो जो हस्तलिखित प्रति मिली उसमें कवि के जीवन से सम्बन्धित कुछ बातों का पता लगता है। अखैराम द्वारा लिखी सिंहासन बत्तीसी की अनेक प्रतियां पाई गईं जिनमें पाठ भेद के अतिरिक्त और भी कुछ घटा-बढ़ी मिलती है। सिंहासन बत्तीसी में कवि ने अपने सम्बन्ध में कम लिखा है—

गणपति सुमिरों सारदा, श्री वल्लभ सिर नाय,
राधा मोहन ध्यान करि, विक्रम यसहि बनाय।
श्री विक्रम नरनाह की, सुजस कथा बत्तीस,
भाषा करी बरनों तिनहि, कृष्ण चरण धरि सीस॥

यह काव्य 'दीर्घ' (डीग) में लिखा गया था—

मथुरा मंडल देश में, निज वृज मध्य सुथान।
अति ही दीर्घ सुहावनों, अमरपुरी अनुमान॥

डीग (दीर्घ) का विस्तृत वर्णन किया गया है—

चहु ओर सघन सुवास। जगमगत जोति प्रकास॥
अति ही ललाम सुग्राम। चहुघां विचित्रित धाम॥
झलकें अमंद अवास। जुत चंद्र लाज प्रकास॥

डीग के बाग का सुन्दर वर्णन मिलता है। भवनों के पास का यह बाग काफी अच्छा था। अब उसके स्थान पर पेड़ों को कटवा कर लॉन लगवा दिया

गया है। इस बाग में पहले फल-फूल वाले अनेक प्रकार के पेड़ थे और कवि ने भी लता, वेलि, फूल, फल, वृक्षों आदि का वर्णन किया है। वर्णन करते समय कवि को ऋतु-कुऋतु का ध्यान नहीं रहता। यह उस समय की प्रचलित प्रणाली थो जिसका आभास कभी-कभी अब भी मिल जाता है, जैसे—अयोध्यासिंहजी के 'प्रिय प्रवास' में। एक वर्णन देखिये—

तिहिं नगर कूल । वह बाग फूल ।।
केतकि गुलाब । चमेलि दाव ।।
करुना तुही सु । करवीर ही सु ।।
सौगंध राय । गुलषंस जाय ।।
गुल्लाल जाल । रविमुष नाल ।।
गुडहर सुचेत । सत गर्व षेत ।।
नरगस नवीन । करना सु कीन ।।
झुकि रामनेलि । चम्पा सुहेलि ।।
नागेस चारि । फूली निवारी ।।
हरिचक्र भूप । मंजरिय रूप ।।
नारिंग नार । कटहर सुठार ।।
श्रीफल करौंद । जहं नूत गौंद ।।
पुंगी फलानि । लीची इलांनि ।।
वल्ली सुनाग । लौगनि सुहाग ।।
जामिनि रसाल । इमली विसाल ।।
अश्वत्थ कूल । वट वृक्ष मूल ।।

डीग के 'तालाब' का भी अच्छा वर्णन है। यह तालाब आज भी उसी तरह पूरे साल पानी से भरा रहता है और डीग-निवासियों के स्नान का सुन्दर साधन है।

मकरंद वरषत जेंन । घुमडें अबीर सुफैन ।।
बहु मीन तरल तरंग । रवि किरनि परसि परंग ।।
चंहु ओर बाग बिसाल [विळास] । कृत कोकिला कलहास ।।
तिहिं देषि कें सुष होत । उपजं सु आनद स्रोत ।।[1]

नगर-वर्णन के उपरान्त राजवंश का वर्णन है और भगवान विष्णु से भरतपुर के राजाओं की वंशावली आरंभ की गई है—

नारायन की नाभि तें, चतुरानन अवरेषि ।
अत्रि भयो ता दृगन तें, ता द्रग चंद विसेषि ।

---

[1] डीग के भवन, तालाब आदि की सुन्दरता सर्वदा से रमणीय रही है। वर्तमान सरकार का ध्यान भी इस ओर गया है और इसे पर्यटकों का विश्राम-केन्द्र बनाने की दिशा में प्रयत्न जारी है।

ताही जदुकुल वंस में, कितिक साष के अंत ।
प्रगट भये जदुवंस में, श्रीपति श्री भगवत ।।

उसके उपरान्त प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि—

ताके कुल में भूपति, किते भये, गए सुरलोक ।
व्रज भगवत ता वंस में, उपजे सुष के नोक ।
ता व्रजराज के सुत प्रगट, भावसिंह नरनाह ।
ताके भए बदनेस सुत, अनगन गुननि अथाह ।।
× × × ×
ज्यौं बदनेस पवित्र घर सूरजसिंह कुमार ।।

इस पुस्तक में सूरजमलजी की वहुत कुछ प्रशंसा लिखी गई है । इनकी प्रशंसा में कवि ने एक अन्य पुस्तक 'सुजान विलास' भी लिखी है जिसकी ओर कवि ने इस पुस्तक में संकेत किया है—

प्रथम सु ताहि असीस करि, उपज्यौ हियें हुलास ।
सूरजमल के नाम कौं, रच्यौं सुजान विलास ।।

इसके पश्चात् कथा का आरंभ होता है ।[१] पुस्तक समाप्त होने का समय १८१२ वि० है—

ठारह से बारह गनौं, संवत्सर घर सूर ।
सांवण वदि की तीज कौं, कियौ ग्रंथ परिपूर ।।

प्रत्येक कहानो के पश्चात् निम्न चार पंक्तियां दी गई हैं—

बदनेस श्री जदुवंस भूपति सकल गुणनिधि जांनियैं ।
जिहि अरिन के बल पंड कीने कृष्णभक्ति वषानियैं ।
जिहि सुवन लाल सुजानसिंघ विलास कीरति छाइयै ।
कवि अषैराम सनेह सौं पुतरी सिंघासन गाइयै ।।

इस प्रकार के बत्तीस अध्याय हैं । पुस्तक के अन्त में लिखा है—

'इति श्री सिंघासन बत्तीसी कवि अषैराम कृते नाम द्वात्रिंशतमो ध्याय: ३२ मिती फागुन वदी १० में समाप्त भयौ ।।'

जो हस्तलिखित प्रतियां मिलीं वे अनेक व्यक्तियों के लिए लिखी गई हैं । उदाहरण के लिए एक के अन्त में लिखा है—

'पुस्तक लिखी चिरंजीव लालाजी श्री कलूरामजी के पठानार्थम् सुभचिंतक गुसाई बालगोविंद के हस्ताक्षर शुभं भूयात । श्री श्लोक संख्या २००० पत्र संख्या २५० ।'

---

[१] इस स्थान पर किसी ने हाशिये पर लिखा है 'अन्य प्रतियों में कवि परिचय भी है'। इसका विवरण 'विक्रम विलास' के अन्तर्गत दिया जावेगा ।

'श्लोक' का अर्थ 'छंद' ग्रहण करना उचित होगा।

सिंहासन की मूर्तियों ने बत्तीस कहानियां कहीं—

पुतरी बत्तीसों कही, प्रगट कथा वत्तीस।
जो तू अैसो भोज नृप, करै कृपा जगदीस ॥
कहि के कथा प्रगट भई सिगरी।
सजि सजि देव लोक को डगरी ॥
धनि धनि भूप हमें सुख दयौ।
तुम परताप साप मिटि गयौ ॥
भूपति वचन उचार्यौ अैसैं।
को तुम साथ भयौ है कैसैं ?

यह एक ऋषि के शापवश हुआ था, क्योंकि ये पुतलियाँ उसके ऊपर हँस गई थीं।

यह हस्तलिखित प्रति बहुत पुरानी है परन्तु अक्षर बड़े सुन्दर हैं। डीग और वैर के दरबारों में कवियों का बड़ा सत्कार होता था और राजा के ज्ञान तथा मनोविनोद की वृद्धि करते हुए ये कवि साहित्य-सृजन में लगे रहते थे। कवि का ज्ञान बहुत विस्तृत है, साथ ही उसको संख्या गिनाने का भी शौक है। मिठाई, पकवान, वृक्ष, फल आदि के वर्णन बहुत विस्तार के साथ किये गये हैं। इस ग्रन्थ से अखैराम की बहुत प्रसिद्धि हुई।

प्रत्येक अध्याय के बाद सुजानसिंहजी की प्रशंसा लिखने की वही प्रणाली इस पुस्तक में भी है जो सूदन रचित सुजानचरित्र में मिलती है। अन्तर केवल इतना ही है कि सुजानचरित्र में उस छंद की चतुर्थ पंक्ति में वर्ण्य-वस्तु का वर्णन होता है और सिंहासन बत्तीसी में ये चार पंक्तियां ज्यों की त्यों दी गई हैं।

३. **विक्रम विलास**—में कवि ने अपने संबंध में भी कुछ बातें लिखी है—

भोज नगर जमुना निकट, मथुरा मंडल माझ।
तहां भए भीषम सुकवि, कृष्ण भक्ति दिन सांझ ॥
ताकें मिश्र मलूक पुनि, श्रुति सुन्दर सब अंग।
खोजत वेद पुरान सब, कियौ नहीं चित भंग ॥

उनके गोविंद, पुनः क्रमशः दामोदर, नाथूराम, जगतमणि और उनके—

अषैराम ताके भयै, सहित कविन अनुसार।
जो कछु चूक्यौ होइ तो, लीजै सुकवि सुधार ॥

अपने आश्रयदाता के बारे में भी लिखा है—

जदुकुल भार धरिवे कों भयौ सेस जैसे,
प्रबल प्रहार करिवे कों द्विजराज सों।

रामकुल दीपक सौ असुर विहंडवे कों,
दुष्ट अरि षंडिवे कों गरुड़ समाज सों।
दानगुन गायवे कों, दिनकरनंद जैसो,
अरि गज राजनि कों सिंहन की गाज सों।
वदनेस-नंदन सुजान 'अषैराम' कहै,
कविन-रिझायवे कों भोज भयो लाज सों॥

अषैरामजी की आशीर्वाद देने की प्रणाली देखिए—

चित धरि अष्ट सु अंक वाह बत्तीस गुनीजै।
दुगुन करौ पुनि ताह त्रगुन पुनि ताह भनीजै॥
अरध अंक कर हीन शेष सों त्रगुन फलावहु।
वेद अंक संग धरहु भाग अष्टम चितवावहु॥
ऊपर अंक जो चित रहत, कविता गुन सो तिनहिं धर।
आठों सिद्ध वसों तहां, फिर सुजान निज तूव घर॥

इन अंकों को यदि कवि के कहे अनुसार रखते हैं तो इस प्रकार आता है—

$$\frac{८ \times ३२ \times २ \times ३}{२ \times ३ \times ४ \times ८} \quad ८$$

इसको हल करने से ८ आता है।

'आठों सिद्ध' बसाने की यह एक बड़ी ही विचित्र प्रणाली है।

अब एक वर्णन भी देखिए—

कोल के पाछे लग्यौ नरनाथ, गयो वोह कोल सुवेल वटावें।
कंदर अंदर द्वारे के वार, उहाई धस्यो सु अध्यारी घटावें॥
हातन सों वृक टोइ नरेस, क्यों पुनि और ई लोक छुटावें।
ऊंचे अवास परे झलकें, ललके मनि मोतीन लाल अटावें॥

पुतलियों की कहानी में मुहूर्त सोधने की बात बार-बार आती है—

और महूरत सोधिके, पुनि पग धरत भुवाल।
जैसे नाइक पूतरी, बोली वचन रसाल॥
जो तू विक्रम की सम आहि। बैठि सिंहासन पै अवगाहि॥
कैसो विक्रम भयो नरेस। अमनि मध्य जानों अमरेस॥

और फिर कहानी शुरू हो जाती है—

एक समै इक जोगी आयो

इत्यादि।

इसी पुस्तक की एक अन्य प्रति तुह[ल]सीरामजी[1] के लिये लिखी हुई और पाई गई। अलवर में भी इसकी कई प्रतियां मिलीं। डीग के बारे में लिखा है—

रजधानी जदुवंस की, ब्रजमंडल सरसाति।
इंदुपुरी अमरावती, तिहिं सम कही न जाति ।।

अपने संबंध में कवि लिखते हैं—

श्री विक्रम नरनाह की, सुजस कथा बत्तीस।
भाषा करि वरनौं तिन्हें, कृष्ण चरण धरि सीस ।।
जितियक मेरी बुद्धि है, तिहिं सम कही बनाइ।
छिमित होउ कविराज सब, चूक्यौ लेउ बनाइ ।।

३. एक अन्य **विक्रम विलास** मिला है जिसके रचयिता 'गंगेस' हैं। यह ग्रन्थ बहुत पहले लिखा गया था, इसका निर्माणकाल संवत् १७३९ है—

संवत सत्रह सै बरस, बीते उनतालीस।
माघ वदी कुज सप्तमी, कीनौं ग्रन्थ नदीस ।।

और अन्त में लिखा है—

'विक्रम विलास गंगेस कृत, तब लग या जग थिर रहै।'

इसमें 'विक्रम-वैताल' की कथाओं का उल्लेख है। यह पुस्तक अलवर राज्य की स्थापना से पहले लिखी गई है और इसे श्री बलवंतसिंहजी के पठनार्थ माचाड़ी में लिखा गया था।[2]

४. **विक्रम चरित्र पंचदंड**—कथा को सोमनाथ के वंशज वैद्यनाथ ने लिखा। इस पुस्तक का समय लेखक ने इस प्रकार दिया है—

ठारह सै चौरासिया, भादौं शुक्ल सुपक्ष।
मंगलवार चतुर्दसी, भयौ ग्रंथ प्रत्यक्ष ।।

श्रीमाथुर-कुल-मुकुट-मणि सोमनाथ कवि-वंस वैद्यनाथ कवि विरचितो विक्रम दंड प्रसंग ।।

इस पुस्तक के प्रथम चार पत्र नहीं हैं। २१वें छंद से पुस्तक का आरम्भ होता है। इसमें उन पंचदंडों की कथा है जो विक्रम की सास दमनी के कहे अनुसार विक्रम द्वारा प्राप्त किए गए थे—

१. विजै दंड, २. सिद्ध दंड, ३. तमहरन दंड, ४. काम दंड, तथा ५. विषहर दंड।

---

[1] पुस्तक लिषायतं लालाजी श्री धर्ममूर्ति धर्मावतार हरि गुरु सेवा परायण श्री तुहसीरामजी ने। संवत् १९११।

[2] 'श्री श्री श्री श्री श्री बलवंतसिंहजी लिषतं शुभस्थाने माचाड़ी अलवर मध्य देवा बागवान माली।' इस माली ने अनेक पुस्तकें लिपिबद्ध कीं।

दमनी अपनी पुत्री का विवाह विक्रमादित्य के साथ उसी अवस्था में करने को तैयार थी जब पांचों दंड जीत लिये जायें। दमनी के प्रोत्साहन पर विक्रम ने ऐसा ही किया और दमनी को सन्तुष्ट किया। अन्त में—

दमनी ने कियौ है तिलक सीस विक्रम के,
दीनी है असीस यों अनेक साल जीजिये।
पढ़ि कें विरद कही अति ही प्रताप होउ,
सूरज तपै ज्यों तपौ आनंद में भीजिये॥

नृपति विक्रमादित्य कौं, जयमाला लै साथ।
विषहरदंड समेत पुनि, रत्न-डबा लै हाथ॥
अपनी दमनी सास ढिग, ठाड़ौ भयौ सु आय।
कृपा तुम्हारी तैं इहां, पांचों दंड मिलाय॥

इस पर दमनी ने विक्रम को उपदेश दिया था—

"बड़ी वह छोटी यह दोउ एकसीनि धरि।
इनपे कृपालु ह्वै घनेरी कृपा कीजिये॥"

इन दंडों के जीतने में विक्रमादित्य को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। सिद्ध दंड की कठिनाई देखिये—

तौ महाराज सुनौ षंमाइत देस माहि इक नगर बरन में।
सौ पारापुर नगर सिंधु के पार तहां नृप सोमपाल है।
ता पुर माहिं सोमसर्मा इक द्विजवर सौ अति बुधि विसाल है॥
तिहि ग्रहणी को नाम उमादे तेके त्रेसठि शिष्य पढ़त है।
औरहु एक सिष्ष की इच्छा तिनके चितमें भाव चढ़त है॥
तहां होय चौसठवे सिष्षों तुम करौ सिद्ध कारन संपूरन।
राजा कही भले यौ करियौ दमनी निज ग्रह गमनी तुरपुर॥

प्रत्येक दंड के प्राप्त करने में ऐसी ही कठिनाइयां थी, किन्तु विक्रम ने अपनी चतुराई से पांचों दंडों को प्राप्त किया। इन दंडों को प्राप्त कराने में दमनी का बहुत योगदान रहा, उसी ने विक्रम को उपयुक्त स्थानों में जाकर दंड प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया। पांचों दंड प्राप्त करने पर ही दमनी प्रसन्न हुई और अपने हाथों से विक्रम के सिर पर टीका किया।

प्रत्येक दंड को प्राप्त करने पर विक्रम दमनी को बुलाता और अगले दंड को प्राप्त करने का उपाय पूछता।

जबै नृप जीतिय चारिहु दंड । उजैंन पुरी मधि आय प्रचंड ।।
सभा रचि बैठि सिंहासन मध्य । उछाह भयौ हिय में हित सध्य ।।

बुलाय तबै दमनी निज सास । जुहार कियौ कहि बैंन प्रकास ।।
जहो दमनी तु कृपा तुव पाय । विजै किय चारिहु दंड जु आय ।।
अबै जिमि जीतहुं पंचम दंड । उपाव जु मोहि बतावहु चंड ।।

तबै दमनी नृप को बहु भाँति । दई बहु आसिष ही हुलसाति ।।
तबै दमनी जु कहै समुझाय । बतावहुं पंचम दंड उपाय ।।
है समुद्र पार में, एक षमाइच देस ।
तामे नगरी एक है, पांच नाम तिहि वेस ।।

और उसके पांच नाम—

चंपावती नगरी कहे सीलवती कहियै अही ।
अमरवती पुष्पावती भोगावती कहियै सही ।।
इहि भांति ताके नाम पांचहुं तहां आप पधारियें ।
जैंकर्न नाम सुभूप ताको करत राज निहारियै ।।
ता नृपति के सिदूषचा इक भरयौ रत्ननि कौं लसै ।
ता माहि विषहर दंड है तिहि लेहु तुम लहि कैं जसे ।।

नृपति को अग्याहि दै दमनी गई निज धाम को ।

५. सुजान विलास—सोमनाथ कृत ।

ग्रन्थ कारण— सभा मध्य इक दिन कही, श्री सुजान मुसिक्याइ ।
सौंमनाथ या ग्रंथ की, भाषा देहु बनाइ ।।
हुकुम पाइ ससिनाथ हर, चतुर सुजान विलास ।
जामैं विक्रम गुन कथ, हैं बत्तीस (३२) प्रकास ।।

अथ कथा प्रारंभ लिष्यते—

गुरु गनपति गोपाल के, पग अरविंदन घ्याइ ।
रचतु सुजांन विलास कौं, सौंमनाथ सुख पाइ ।।
वसति वसुमति मध्य है, धारा नगरी नाम ।
प्रगट मालुवे देस में, सुष संपति को धाम ।।

सुजान विलास एक वृहद् ग्रन्थ है जिसमें बत्तीस प्रकाश हैं। अखैराम की तरह उन्होंने भी प्रत्येक अध्याय के बाद चार पंक्तियां लिखी हैं। चौथी पंक्ति बदलती रहती है। प्रथम प्रकाश के बाद की ये चार पंक्तियां इस प्रकार हैं —

श्री बदनसिंघ भुवाल जदुकुल मुकट गुनन विशाल है।
तिहि कुमर सिंघ सुजान सुंदर हिंद भाल दयाल है।।
तिहि हेत कवि शशिनाथ ने रचिय सुजान विलास है।
पुतरी सिंघासन की कथा किय प्रथम भइय प्रकास है।।

यह पुस्तक अपने पूर्ण रूप में विद्यमान है। इसके अन्त में लिखा है—

सनमान दै वरदान दै इमि आन पै अति पाइकै।
सुर नागरी गुन आगरी सब गई स्वर्ग लुभाइकै।।

कवि ने अपने संबंध में भी कुछ जानकारी दी है—

मिश्र नरोतम नरोतम, भये छिरौरा वंस।
रामसिंघ के मंत्र गुरु, माथुर कुल अवतंस।।

सोमनाथ के पिता 'नीलकंठ' मिश्र भी अच्छे कवि थे। सोमनाथ तीन भाई थे—अनंदनिधि, गंगाधर और ये स्वयं। ग्रन्थ-समाप्ति का समय इस प्रकार है—

तानै सूरजमल्ल की, हुक्म पाइ परकास।
रच्यौ कथा बत्तीस मय, ग्रंथ सुजानि विलास।।
सहस गुनी शशिनाथ की, विनती उर मैं धार।
चूक भई कछु होइ तौ, लीजौ सुकवि सुधार।।
संवत् विक्रम भूप कौ, अट्ठारह सै सात।
जेठ शुक्ल तृतिया रवौ, भयौ ग्रंथ अपरात।।

इस समय सूरजमल युवराज थे—

'ब्रजराज यह जुवराज सूरजमल्ल राजहु नित्य ही।'

विवाह संबंधी दो पुस्तकें मिलीं—१ विनयसिंहजी की पुत्री का विवाह : रामलाल कृत, २ बलवंतसिंहजी का विवाह : गणेश कृत।

१ **विवाह विनोद**—कवि रामलाल कहते हैं—

बंदि भवानी पदकमल, भूपसुता को ब्याह।
वरणों मति मेरी जिती, तिह कौ चरित अथाह।।

रामलाल सुकवि समस्त गय हय पाय,
अति हरषाय गाय कीरति कहावनी।
जाके जन्म लेत भूप विनय निकेत आई,
इंदरा समेत अति परम सुहावनी।।

पुस्तक से पता लगता है कि राजा अपने सरदारों से परामर्श करते थे। जैसे दशरथजी ने राम को युवराज बनाने के लिये पांच आदमियों से परामर्श चाहा था। उसी प्रकार—

जुरे सकल सिरदार, तब भूपति अैसे कही।
कही सुमंत्र विचार, वाई के सनमंध की ।।

और निश्चय हुआ कि—

राठ्यौर सिंह सरदार[1] नाम। वाकौं गढ़ बीकानेर धाम ।।

राजा ने संबंध निश्चय कर दिया और विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। 'विवाह विनोद' की कविता साधारण कोटि की है—

अैसो सुभ साजिके समाज श्री विनेस भूप,
उपमा अनूप कविराजन जताई है।
वसु है सुवासव है विश्वदेव की विभूति,
विश्वपति परम प्रवीन नै वनाई है।।

उमगि समद्द सरहद्द आपनी पै जाय,
सुजन समाज सनमाने सिध्य पाई है।
मिलि सिरदारसिंघ जु कौ संग लाए भए,
वांछित सफल देस देस में बड़ाई है।।

विनय बाग में बरात ठहराई गई और बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया—

'श्री सिरदार की फौज-विषै छिन एक में वाटी सुधारस भीनी।'

इस विवाह में नेग आदि में काफी दान-दक्षिणा दिए गए। बारहठ गोपाल को एक नेग में एक हाथी मिला था—

सिंह गज पै असवार है, श्री सरदार उदार।
सौ वारैठ गुपाल को, दियो सुनेग मझार।।

विवाह वेदविधि से सम्पन्न हुआ–

वेदन में विधि जो वरणी संग लै तिय कूरम नै वह कीनी।
जेवर लाषन के धरणीधर धेनु धराधिप कोटि नवीनी।।
ले जलु अंजुली में हर को धर ध्यान सौं साषानुचारि प्रवीनी।
श्री सरदार महीपति कौ अति हर्षित ह्वै तनया निज दीनी।।

२. दूसरे विवाह-विनोद में गणेस कवि लिखते हैं—

'श्री बृजेंद्र बलवंत कौ बरनत ब्याह-विनोद।'

बलवंतसिंहजी का यह विवाह विछोह निवासी सरूपसिंहजी की लड़की के साथ हुआ था। विवाह संपन्न कराने के लिये सरूपसिंहजी को डीग के 'कटारे वारे महल' बता दिए गए थे—

---

[1] सरदारसिंहजी के नाम पर ही 'सरदारशहर' नाम का नगर बसाया गया।

कीनौ श्री दिमान सनमान लै हुकम कही,
दीघ में कटारे वारे महल बताए हैं।
मदति मरंमति कराय कें तयारी लाय,
भूपति सरूप सकुंटुवित बुलाए हैं।
आए दीघ नृपति विछोह के सरूपसिंह,
बंधुन समेत हेत हियै सरसाए हैं।।

विवाह की तिथि १८८९ वि० वैसाष सुदि १० थी—

आई पीतपत्री छत्री वंस अवतंस श्री,
वृजेंद्र छत्रपति महा उत्साह है।
संवत् १८८९ में वैसाष सुदि,
दसें बुधवार को भली तिथि विवाह है।।

काम करने वाले अफसरों के नाम भी दिए गए हैं—

तहां कारषाने नाना पतिराम हैं। बकसी बालमुकंद निहारे काम हैं।।
दयाचंद सुत जैंन लाल दीवान हैं। मुतसद्दी मुषिया लाल हरध्यान हैं।।

नगर में फैला हुआ आनंद देखिए—

सकल सहर में बटे हैं गुड़ गाड़ा भरे,
गलिन गिरारे चौक जैसो जहां चहिये।
जो है वा महल में सु चहल पहल में ही,
फूले फले भले मनमानी मौज लहिये।।
नित्य बटें विरहा[1] अनेक झोरी भर भर,
जैसे ई सुहार बरवाई[2] जेती कहिये।
व्याह श्री व्रजेंद्र महाराज वलवंत केमें,
ठौर ठौर आनद समूह माह रहियै।।

साथ में धाऊ ग्यासीराम, दीवान भोलानाथ, नंदलाल आदि सभी सरदारों को लेकर मोरछल लगाये हुए महाराज की सवारी चली जा रही है। भरतपुर के राजाओं में आज भी यह प्रथा है कि जब कोई पुनीत अवसर होता है तो पहले विहारीजी की और उसके उपरान्त वेंकटेश महाराज की 'झाँकी' करते हैं। दशहरा पूजन के अवसर पर जब महाराज की सवारी फौज पलटन के साथ निकलती थी तो धाऊ, दीवान आदि राज्य के विशेष अधिकारी भी मोरछल लगा कर साथ में होते थे। उस समय भी किले में स्थित विहारीजी की झाँकी पहले करते थे और उसके उपरान्त वेंकटेश महाराज की।

---

[1] भीगे चने।

[2] दाल की बनी।

करी है प्रथम श्री बिहारीजी की झांकी।
वेस पूजे व्यंकटेश महाराज भले भाय के॥

बरात के पहुंचने पर फव्वारे चला दिये गये--[1]

छुटत फुहारे न्यारे न्यारे सब भौनन में।

गुलाल का वर्णन

किस्ती हैं अनेक संग रोरी औ गुलाल लाल,
ललकि ललकि लेत हेत सों उड़ाते हैं।
लाल लाल भई अवनी अकास आस पास,
लाल लाल है दिवाल रंग घुमडाते हैं॥
लाल ही लाल हाथी लाल ही सकल साथी,
लाल ही बराती लाल रंग उमड़ाते हैं।
लसंटीन साहब कौ लाल मुष लाल भयो,
लाल लाल बादल की छबि कौं छुड़ाते हैं॥

'लसंटीन साहब' विशेष रूप से शामिल हुए थे। विवाह के समय महाराजा के दोनों मथुरा-पुरोहित भी थे—

'रसिक लाल जी स्यामजी अति आनंदत चित्त।'

और कवि गणेश के दो पुत्र भी उपस्थित थे—

कवि गणेश-सुत दोइ हैं, हाजर ताई ठांम।
लक्ष्मीनारायन जु इक, दूजौ सालिगराम॥

स्त्रियों का समारोह—

आछी आछी नवल बधूटी ते झरोका लागी,
देषि श्री व्रजेंद्र कौ आनंद बरसाती हैं।
नामें लेत गारी देत हेत सों हंसावें सबै,
सकल बरात की सिरात जात छाती है॥
गाती हैं गुमानभरी गोरी गोरी गोरी सबै,
सीठना सुनाती देषि दूल्है मुसकाती हैं।
रंग बरसाती हैं अनंग सरसाती हैं,
नैंन षंजन नचाती मीठै बचन सुनाती हैं॥

इस कवित्त में खड़ी बोली के प्रयोग देखने योग्य हैं। अन्तिम पंक्ति तो एकदम खड़ी बोली है। भरतपुर के कवियों में इस प्रकार यदा-कदा खड़ी बोली का

[1] डीग के भवनों में लगे हुए 'फव्वारे' बहुत प्रसिद्ध हैं। इनको विशेष अवसरों पर अब भी चलाया जाता है। यह फव्वारे रंग-बिरंगे भी हो सकते हैं। महाराजा के समय में यह छटा देखने योग्य होती थी।

दर्शन भी मिल जाता है। इस विवाह में बलवंतसिंहजी ने बहुत दान दिया। कवि-समुदाय के ऊपर तो विशेष कृपा की—

कारे कारे कारी के से वारे मतवारे प्यारे,
जोरदार मारे घूमें नृप के निकेत हैं।
नद्दत द्विरद नभ गज्जत जलद्द मानों,
थल थल थलकत भूतल सचेत हैं॥
जिनके चलत मद छल छल छलकत,
झल झल झलकत सुंड मुष लेत हैं।
श्रीमंत व्रजेंद्र बलवंत के अनंद होत,
ऐसे गजराज कविराजन कों देत हैं॥

और इसी प्रकार के घोड़े भी दिए।

यह बलवंतसिंहजी के प्रथम विवाह का वर्णन है—

महामोद बरसे विविध, दीर्घ दुग्ग के माह।
श्री वृजेन्द्र बलवंत को, भयो सुप्रथम विवाह॥

कवि का आशीर्वाद—

संपति देस विदेसन की सबै आय वसी बलवंत के गेह में।
सुंदरता सुष राज दराज गनेस कहैं विलसो नित देह में॥

और अंत में लिखा है—

'बलदेव नंद श्री वृजेन्द्र बलवंतसिंह चिरंजीव होउ मारकंडे की उमर के।'

इस पुस्तक की पत्र-संख्या ७७ है और इसमें विविध प्रकार के २२४ छंद हैं। यह पुस्तक विलायती कागज पर लिखी हुई है जिसमें वाटरमार्क है

'जी विलमौट मेड इन १८३४ ए. डी.।'

इतिहास-संबंधी दो पुस्तकें और मिलीं—१ सुजानसंवत, जो यद्यपि पद्य में है किन्तु उसका महत्त्व ऐतिहासिक है। २ अलवर राज्य का इतिहास। यह पहले कहा जा चुका है कि मत्स्य प्रदेश में लिखे वीर-काव्यों में भी बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। यह देखा गया था कि प्रतापरासो प्रतापसिंहजी के संपूर्ण जीवन का एक प्रामाणिक वर्णन उपस्थित करता है और इसी प्रकार यद्यपि सुजानचरित्र प्रधान रूप से युद्ध-काव्य है फिर भी उसमें अनेक ऐतिहासिक बातों का उल्लेख है जो सूरजमलजी के समय में घटित हुईं। सुजानसंवत् में सूरजमलजी के शासनकाल का पूर्ण विवरण है और शिवबख्शदान के बनाये हुए 'अलवर राज्य का इतिहास' में मंगलसिंहजी के समय तक का इतिहास

है। इसीलिये ये दोनों पुस्तकें इतिहास-प्रकरण में ली गई हैं।

१ सुजान संवत--उदयराम[1] कृत। कवि ने अपना नाम एक विचित्र प्रकार से दिया है--

प्रात सूर सो होत है, ताके आगे राम।
द्वै जुग अछिर चारि करि, सौ कविता कौ नाम॥

इससे पता लगता है कि 'उदैराम' कवि का 'कविता कौ नाम' अथवा उपनाम है। उनका असली नाम कुछ और रहा होगा जो बहुत खोजने पर भी मालूम नहीं हो सका। उपर्युक्त दोहे के उपरान्त लिखा है--

यह बरनन जानें कीयौं, नाम धर्‌यौ निज नाहिं।
जानि लेहु नर वर चतुर, पिछले दोहा मांहि॥

पिछले दोहे में सूर का 'उदै' होना बताया गया है और उसके आगे 'राम' रखने को कहा गया है। इन 'द्वै जुग' अर्थात् दो जोडों के चार अक्षरों से कवि का कविता नाम 'उदैराम' बनता है। आरंभ में भी कवि के नाम का कुछ आभास मिलता है, जब वे स्तुति करते हैं—

वावय विनाइक नाइ सिर, सुमरि विप्र सुर संत।
गुर-पद प्रेम प्रताप बल, वानी विमल फुरंत॥

सुंदरि प्रवीन रूप जोवन नवीन सो है,
लीये कर वीन 'उदै' अषिल अवगाहनी।
चंदन चढ़ायें तन कुंदन सुगंधन सों,
सोधे वर चीर चारु चंचल दृग चाहिनी॥
सोहत सुकुमार उर फूलन के हार बार,
बेनि सों सुढ़ार मोती जोती हंस वाहिनी।
वसौ उर आइ मेरे कंठ सुष पाइ सदा,
सहाय रहै कविन कुल दाहिनी॥

पुस्तक-निर्माण का समय इस प्रकार दियो गया है—

षांस [पौस] मास एकादसी, संवत ठाहरु बीस,
नृप लीला करि लै भये, कान सुजान नहीस॥
मनमति कौं संवाद यह, संवत् स्याम सुजान।
कवि यासैं उरधार कछु, कीयौ कवित बखान॥

---

[1] उदयराम (उदैराम)--भक्ति-काव्यों में इसके तीन नाटकों का उल्लेख हो चुका है।

संवत् १८२० सूरजमलजी का निधन-संवत् है। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इस पुस्तक में सूरजमलजी के शासनकाल का पूर्ण विवरण है।

इस पुस्तक में बारह विलास हैं और इस काव्य को वीर-काव्य तथा इतिहास का मिश्रण समझना चाहिए। इसमें सुजान-चरित्र से आगे की घटनाओं का भी वर्णन किया गया है। सरस्वती की वन्दना के उपरान्त कवि अपने इस काव्य का आरम्भ करता है—

भारती भमानी जगरानी बाक बैनी बैठि,
कविन के कंठनि कमलासन बिछाइये।
लैके कवीन सों प्रवीन सुर तान मान,
करिकैं सयान पै सुजान गुन गाइये।।[1]

पुस्तक के १२ विलास इस प्रकार हैं—

१. सुजानसंवत वरननो नाम प्रथमो विलास,
२. जदुवंस-वर्नन,
३. जगमोहन वर्णन। सूरजमलजी के जन्मोत्सव का वर्णन,
४. परताप वीर वरनन,
५. सुराज वर्नन,
६. विविध,
७. गिरिवर लीला,
८. गढ़वर वरनन,
९. छह रितु-राज-वर्नन,
१०. बृज वृन्दावन फाग,
११. विजै विवाह वरनन (युद्धों के वर्णन सहित),
१२. उपसंहार (मृत्यु)।

सुजान संवत् की जो प्रति हमें प्राप्त हुई वह संवत् १८७६ की लिखी हुई है—

'मीति चैत्र सुदि १४ भृगुवासरे संवत् १८७६ शा० १७१७ लीषतं बहामन तुहीराम: पारासर। लोषीयतं फौदार हरदे फौदार। पत्र

[1] यह एक दुखद प्रसंग है कि आज के कवि इन पूर्ववर्ती कवियों की रचना को अपनी मौलिक रचना बता कर जनता को भ्रम में डालते हैं। यह कवित्त मैंने स्वयं एक अच्छे कवि से उनकी रचना के रूप में सुना था।

संख्या १२४ भरतपुर मध्य राजस्थान[1] मध्ये । श्रीरामजी ।।'

इस पुस्तक को आरम्भ करने की आज्ञा स्वयं 'मति' ने 'मन' को दी थी । इसीलिए यह मन-मति का संवाद कहा गया है ।[2]

येक समैं सुष सोवतें, सुमन रैंनि अवसेन ।
अकस्मात् काहू कही, अहै सुजान नरेस ।।

और फिर मति एक साधु के रूप में आकर बोली—

'मधुर मंद बोले बिहसि, करि जदुवंस बखान ।'

इसी प्रसंग ने कवि को लिखने की प्रेरणा दी । कवि ने अपना यह विचार अपने गुरु से भी निवेदन किया था और गुरुजी ने इस विचार को श्रेयस्कर बताया—

नृपति सुजान सुजान समाना । और न कोई नृप नर नाना ।।

और कहा—

तिनमें जो यह बदन कुमारा । केवल कान्ह कला अवतारा ।।

इस पुस्तक में सुजानसिंहजी के संपूर्ण जीवन और उनके शासनकाल का वर्णन है । पहले दो विलासों में वंश का वर्णन है और तीसरे में जन्मोत्सव का । इसके पश्चात् अगले दो विलासों में सूरजमलजी के प्रताप, वीरता और राज्य का वर्णन किया गया है । फिर गिरिवर (गोवर्द्धन) तथा किले आदि बनवाने का प्रकरण है । 'छह रितु', व्रज आदि के वर्णनोपरान्त विजय और विवाह का वर्णन किया गया है । यह विलास बहुत बड़ा और महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सूरजमलजी के लगभग सभी युद्धों का प्रसंग इसमें आ जाता है । अन्तिम विलास में कवि सुजानसिंहजी के स्वर्ग पधारने तक का वर्णन कर देता है । इस प्रकार यह 'सूजान संवत्' सुजानसिंहजी के जीवन का पूरा वृतान्त है और उनके जीवन से सम्बन्धित लगभग सभी बातें आ गई हैं ।

सुजानसिंहजी का दिल्ली, जयपुर आदि सभी जगह बहुत 'रौब' और 'दबदबा' था । इनके बल और प्रताप को सभी मानते थे—

येक समे आमेर-पति, दिल्ली-पति के पास ।
सुधि कर सूरजमल्ल की, उर में अधिक हुलास ।।

---

[1] आज से १५० वर्ष पूर्व तुहीरामजी ने भरतपुर को 'राजस्थान मध्ये' लिख कर एक विचित्र भविष्यवाणी की । राजस्थान शब्द भी पुराना है ।

[2] प्रत्येक विलास के अन्त में लिखा है—'सुमन सुकवि रचितायां'

बुलवायौ जैंसिंग जब, सिंहसुजान कुमार।
त्यारी करि तबही गयौ, जैंपुरपति-दरबार ॥

इस पुस्तक में सुजानसिंहजी के साहसिक कार्य, युद्ध, शासन, धार्मिक उत्सव, त्यौहार आदि के वर्णन हैं। इस ग्रन्थ से उस समय की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थिति का सुन्दर विवरण मिलता है। इसमें अलवर वाले प्रताप-सिंहजी का भी वर्णन मिलता है जब उन्हें डीग के पास ठहराया गया था। डीग के लिए लिखा है—

अति दुर्घट बंका निकट, निपट कठिन कमठान।
दीरघपुर गढ़ गढ़नि में, सबके गढ़त गुमान ॥

इतना कहने में कोई भी अत्युक्ति नहीं कि यह पुस्तक उस समय का इतिहास है। सिनसिनी का निकास इस प्रकार बताया है—

'तीन जाति जादवन की, अंधक, विस्नी, भोज।
तीन भांति तेई भये, ते फिर तिनही पेज ॥

पूर्व जन्म जे जादव विस्नी। तेई प्रगटे आइ सिनसिनी ॥

दूसरी इतिहास सम्बन्धी पुस्तक बारहठ शिवबख्शदान गूजू की[1] लिखी **अलवर राज्य का इतिहास** है। यह इतिहास छन्दोबद्ध है पुस्तक दो भागों में है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में शायद ही कुछ लोग जानते हों। मैंने इसे अलवर-नरेश की व्यक्तिगत लाइब्रेरी में खोज कर निकाला था। पुस्तक प्रामाणिक मालूम होती है किन्तु पुस्तक में ही कुछ ऐसे कारण हैं जिससे यह ग्रन्थ प्रकाश में नहीं लाया गया। यह पुस्तक अनेक प्रकार के छंदों में है—छंद-संख्या १४१६ है। कुछ फारसी के छंद भी हैं। एक सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार इस पुस्तक के प्रथम भाग में अलवर के राजाओं की वंश परम्परा महाराज रघु से दिखाई गई है और प्रथम भाग के अन्तिम अंश में—

'राजगढ़ के राव प्रतापसिंघजी'

---

[1] बारहठ कवि शिवबख्श (१६०१–५६ वि०) डिंगल के भी कवि थे। इन्होंने ब्रजभाषा में वृन्दावन शतक, और 'षड् ऋतु' भी लिखे हैं। ये महाराज मंगलसिंहजी के साथ रहते थे। कहते हैं निम्न दो सोरठों पर महाराज ने इन्हें ५००) रु० का पारितोषिक दिया था—

लड़वै लथ वत्थाह, झड़वें चख आतस झळाहं।
हाकिल नव हत्थाह, मारे निज हत्था मंगल ॥
रोसायल जम रूप, अजकायल साम्हा उड़े ॥
भले विलाला भूप, मारै सिंह डाला यथा।

का वर्णन आता है। दूसरे भाग में प्रतापसिंहजी तथा उनसे आगे होने वाले राजाओं का वर्णन है। पुस्तक के प्रथम भाग में ब्रजभाषा प्रयुक्त हुई है, किन्तु दूसरे भाग में खड़ी बोली और साथ ही उर्दू के छंद, जैसे—

अवल इष्ठ अपने का धरि चित्त ध्यान।
करूं मसनवी मख्तसिर में बयान।
दिया हुक्म कप्तान पौलिट सहाब।
बहादुर वो पीडिल्लु[1] जिनका खिताब॥
दिया हुक्म मुझ पै यह होके खुशहाल।
करो मुख्तसिर राज अलवर का हाल॥

तात्पर्य यह है कि पुस्तक एक अंग्रेज अफसर के कहने पर उन्नीसवीं सदी के अंत में लिखी गई। इसमें सन् १८९४ ई० तक का वर्णन मिलता है। महाराज मंगलसिंहजी का देहान्त सन् १८९२ में हुआ था और उनके उपरान्त जयसिंहजी गद्दी पर बैठे। प्रथम भाग के कुछ अवतरण—

लसत बाल विधु भाल में, मुंडमाल विष व्याल।
या छवि सों मो मन बसौ, पशुपति परम कृपाल॥

कवित्त—

असन धतूरा भांग बसन बघंबर के,
भूषन भुजंग प्रभा पूरिय अपारा है।
ओढे गजखाल कर कलित कपाल मूल,
धरें मुंड माल उर उदित उदारा है॥
कवि शिवदत्त पुंडरीक से बदन पांच,
शंभु को रुचिर रूप तीनों पुर तारा है।
लोचन विशाल भाल चन्द्रमा विराजै चारु,
चन्द्रमा के निकट विराजी गंगधारा है॥

इस पुस्तक में प्रमुख घटनाओं की वास्तविक तिथियां दी गई हैं। यथा—

'राजा सोरठदेव गद्दी विराजै। मिती कातिक बदी १० साल १०२३ के।'

'बीजलदेवजी देवलोक हुआ मिती सावण सुदी ४ संवत् १३०६।'

पुस्तक में स्थान-स्थान पर गद्य भी है—

---

[1] कवि का संकेत Captani P.W. Powlett की ओर है जो १८७४ ई० में अलवर के स्थानापन्न पोलिटिकल एजेण्ट थे। इन्होंने अलवर, करौली और बीकानेर के गजेटियर लिखे थे।

'जब ते रावराजा प्रतावसयंघ जन्म पायौ। तब ते राज गढ़ में आनद अधिकायो। संमत सत्रासै पूरन समय सवाई जयसिंह सुरगवासी भये। उरु इनके पीछे महाराज इसुरीस्यंघजी वरजोर जैपुर गद्दी व्राज गये। ता कारन इनते छोटे बंधु महाराज माधोस्यंघ पिता के लेष प्रमान राज्य को दावा करि आमेर पै आए.........'

काव्य की दृष्टि से इस पुस्तक को बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता, परंतु इसमें सन्देह नहीं कि इसमें दी हुई घटनाएं ऐतिहासिक हैं। अलवर का ऐसा अच्छा इतिहास शायद ही कोई और हो। कवि अपने सम्बन्ध में लिखता है—

इलाकै जो अलवर के गूजूकी गाम।
कि है बारहठ कौम शिवबख्श नाम।।

प्रतापसिंहजी के बारे में लिखा है—

दिया उसको ईश्वर ने खुद अख्तियार।
किये मौजे ढाई सै ढाई हजार।।[1]

अलवर, भरतपुर प्रकरण में जब प्रतापसिंह सूरजमल के यहां पहुंचे, तो लिखा है—

कहा कौन इरशाद आये यहां।
कहां के हैं सरदार जाते कहां।।
इन्होंने कहा राव परताप नाम।
कि है राजगढ माचहेड़ी मुकाम।।
दिया भेज के हलदिया छाजूराम।[2]
किया जाट से[3] जाके इसने सलाम।।
हुआ जब कि जव्हार[4] मसनद नशीन।
बमूजिब हुकुम फौज थी लाख तीन।।[5]

जब प्रतापसिंह के बाद बख्तावरसिंह को गद्दी मिली तो लेखक ने लिखा है—

बख्तावर पाट परताप के विराजै।
बावन किलों के बीच शादियाने बाजे।।

बख्तावरसिंहजी के विषय में बारहठजी का कथन है—

हुस्न जहां ही होसला, है व्हां ही भगवान।
खल्क टटोलत खाक में, बखत टटोलत जान।।

उनके साथ में भी हल्दियावंशोत्पन्न नन्दरामजी रहते थे। शिवबख्शजी

---

[1] ढाई गांव इस प्रकार थे—१ माचेड़ी, २ राजगढ, ३ आधा राजपुर—कुल ढाई गांव।
[2] छाजूराम हल्दिया प्रतापसिंहजी का मंत्री था।
[3] सूरजमल जाट—भरतपुराधीश।
[4] जव्हार—जवाहरसिंह।
[5] जवाहरसिंहजी की तीन लाख फौज इतिहास-प्रसिद्ध बात है।

को जो उनके दो सोरठे लिखने पर ५०० रु० इनाम मिला उसका वर्णन भी अपने इस इतिहास में किया है—

शेर की शिकार शौक करनी दिल धारी।
की गढ़ खुशाल सरिसके की तयारी॥[1]
करिकै वह हमला उड़ि फील पै ज्यूं आया।
मारि मंगलेश भूप बीचि ही गिराया॥
बारहठ शिवबख्श दोय दोहरा सुनाया।
अता रुपया पन्ज सद इनाम फरमाया॥[2]

पुस्तक में एक जगह जहाज का वर्णन भी आया है, जब अलवर नरेश कलकत्ता से पानी के रास्ते से मद्रास गये थे—

देखी विलायत की एक उसमें गाय ऐसी।
वह थी हकीकत में कामधेनु जैसी॥
खली खोपरे की खास खाने को देते।
दिल चाहा उसी वक्त दूध काढ़ लेते॥
कितने उसमें भरे मुर्ग और भेडी।
चारसद करीब अंग्रेज मैम लेडी॥

इस पुस्तक को पढ़ने से पता लगता है कि शिवबख्श ने असली हालात देने की चेष्टा की और अंग्रेज का हुक्म पा कर तथ्यों को निष्पक्ष रूप से लिखा। यदि अलवर का प्रस्तुत इतिहास बनाते समय इस पुस्तक से सहायता ली जाती तो वास्तव में बहुत-सा सच्चा इतिहास प्रस्तुत हो सकता था।

इस पुस्तक के दोनों भागों में, जो एक ही लेखक द्वारा लिखे गये हैं, बड़ा अन्तर है। प्रथम भाग में ब्रजभाषा और हिन्दी छन्द तथा दूसरे में खड़ी बोली और उर्दू छंद।

पुस्तक की समाप्ति संवत् १९९१ वि० है। महाराज मंगलसिंहजी की मृत्यु होने पर उनके 'कारज' का वर्णन इन शब्दों में किया है—

लड्डू रुपया दस्त जिसने ओट लीना।
तकसीम रेल के मुसाफिर तक कीना॥

---

[1] सिरसका अलवर शहर से २२ मील दूर है और शेर की शिकार के लिए बहुत उपयुक्त स्थान है। पिछले महाराजा ने यहां 'सिरसका पैलेस' नाम का एक स्थायी स्थान बनवा दिया था। इसका शिलान्यास तो राजा मंगलसिंहजी ने ही कर दिया था।

[2] दोहरे अन्यत्र दिए गए हैं। ये सोरठिया दोहरे राजस्थानी में हैं। इनसे सिद्ध होता है कि राजा को शिकार का बहुत शौक था।

बिराजे सवाई जयसिंह राजगद्दी ।
दोस्त खुशहाल हुए दुश्मनकुल रद्दी ।।

पुस्तक का प्रथम भाग, काव्य की दृष्टि से, अधिक अच्छा है। इस भाग में स्थान-स्थान पर गद्य भी मिलता है। ब्रजभाषा गद्य का एक अच्छा नमूना देखिए—

'असी सलाह कर स्वरथ हटाय अधिपति कौ अश्व आरूढ़ करत भये । अरु याकी एवज इम पै असवार राव रत्नसिंह रतलामधीश के सीस पर छत्र धरत भये ।'

शिकार का शौक सभी राजाओं को रहा । शेर, शूकर, डक, मगर आदि का शिकार आये दिन होता रहता था । शिकार के लिए बड़े-बड़े अंग्रेजों को भी आमंत्रित किया जाता था । शिकार के लिए कुछ निश्चित स्थान थे जहां का काम नियमित रूप से बराबर चलता रहता था। राज्यों में 'शिकारगाह' नाम से एक अलग विभाग रहता था । मत्स्य के राजाओं में शेर का शिकार बहुत प्रचलित रहा। करौली के राजा तलवार से सिंह का शिकार करते हुए सुने गए हैं । भरतपुर में बारैठा और अलवर का सिरसका शेर के शिकार के लिए बनवाए विशेष स्थान हैं । चिड़ियों का शिकार भी होता रहता था । भरतपुर का केवलादेव डक की शिकार के लिए बहुत प्रसिद्ध है। भारत-वर्ष में डक-शूटिंग के लिए भरतपुर का केवलादेव एक मशहूर स्थान है। अंग्रेजों के जमाने में गवर्नर जनरल तथा कमाण्डर-इन-चीफ इन चिड़ियों के शिकार के लिए नियमित रूप से भरतपुर में आते थे। भरतपुर में एक छोटी छत्रीनुमा इमारत है जिसमें इस बात का उल्लेख है कि किस शिकार में कितने डक मारे गए।

'बहरी' की सहायता से की गई व्रजेंद्र की आखेट सवारी देखिए—

चलत सवारी सिरदारी सब संग लैकें,
सीर औ सिकारिन की सांची ही सरति है।
मारत कबूतर ढूंढि ढूंढि आसमान में ते,
बगुला के झगुला से फारिकें धरत है।।
कहै जीवाराम करै बाज ते सरस काज,
तबै टूट फूटि काहू पंछी पै परति है।
श्रीमति वृजेंद्र जु तुम्हारे कर में ते उड़ि,
बहरी कुलंगन की किरचें करति है।।

यह शिकार बहरी चिड़िया की सहायता से किया गया है। इसके लेखक चौबे जीवाराम एक अच्छे लिपिकार थे। साथ ही 'सभा-विलास' नामकी एक

पुस्तक भी देखने में आई जिसकी रचना-तिथि १८८६ है।[1]

शिकार के कुछ अन्य प्रसंग देखिए—

थौली जो मीम साथ थी कहने तो फिर लगी।
हथनी भी ये हमारी आज क्यों नहीं भगी॥
अल्लाह ऐसी तमन्ना उनकी निकालना।
जिनको ये हिर्स हो कभी उनही पै डालना॥
× × ×
वल्लाह यक अवाज जो सब लोग पुकारे।
ऐसी जगह सै दिल नै कहा वापिस आइयै॥
कलेजा भी उछल कर कै सीधा मुंह में आ गया।
हया ने कहा ठैर गोली तो चलाइये॥
उठ कर जो मैंने हिम्मते मरदां को संभाला।
बंदूक उठाई तो फिर लगती ही पाइये॥
अए यार अब इस नज़्म का तो आ गया अषीर।
पस दूसरी तरकीब से किस्सा चलाइये॥

यह वर्णन सन् १६०० का है। कहा जाता है महाराज जयसिंह नें ये पंक्तियां स्वयं लिखी थीं। १८, २० साल के इस शिकारी राजा की भाषा देखने योग्य है। महाराज जयसिंह हिन्दी और उर्दू दोनों में लिखा करते थे। उर्दू में वे अपना उपनाम 'वहशी' रखते थे। मैंने इनके द्वारा लिखी जो दो नोट बुकें देखी उनमें हिन्दी के अक्षर बहुत स्पष्ट लिखे हुए हैं। शिकार का ऊपर लिखा वर्णन उसी नोट बुक से लिया गया है।

---

१ चौबे जीवाराम बलवंतसिह के दरबार में थे। जमादारी पाने के लिए इन्होंने सभा-विलास, नाम का एक ग्रंथ लिखा जिसमें ऋतुओं का सुन्दर वर्णन है। इस ग्रंथ को एक प्रार्थना-पत्र समझना चाहिये—

सरनि जो आवै ताकौ पोसन भरन करौ,
हरन कलेस तैसो अवध बिहारी है।
जाकी प्रभूता की सीलता की को बड़ाई करे,
हौ दुख दछ यह नीति उर धारी है॥
बडो उपगारी जाकी कीरति उज्यारी प्यारी,
श्रीमन वृजेंद्र पे सहाय गिरधारी है।
चौबे जीवाराम ताकी कीजयै जू जमादारी,
अरजी हमारी जो पै मरजी तुम्हारी है॥

अलवर के संग्रह में भी हमें इसी प्रकार की एक अन्य हस्तलिखित पुस्तक मिली जिसका नाम 'अभिनव मेघदूत' है। यह भी एक प्रार्थना-पत्र के रूप में है।

शिकारखाने के एक कर्मचारी ने शेर की शिकार पर लिखा है—

हुकम करोला पाय, भैंसा बांध्या समझ कर।
पहौच्या लशकर आय, भाल लगी केहरि तणीं ॥
सझयो भूप शिकार, लेय दुनाली हाथ में।
धन जय श्री अवतार, वीरा रस राषण घणीं।
छांडै नांही रीत, महाराणि राठोर जी।
हियें हरष मन प्रीत, चढ़ चाली आषेट में ॥

घणी धिराणी मुदित मन, गणपति हिय हरषाण।
हाल शिकार वषानियौ, निज मति के अनुमान ॥

इस शिकार में महारानीजी भी साथ थीं। शिकार-सम्बन्धी कई पुस्तकें महाराज जयसिंहजी के संग्रह में मिली, किन्तु वे सन् १९०० ई० के बाद की लिखी गई हैं अतएव उन्हें छोड़ दिया गया है। ये कुछ अवतरण भी इसी दृष्टि से दिए गए हैं कि मत्स्य की रियासतों में इस प्रकार की काव्य-प्रवृत्ति भी चलती थी। इन रचनाओं का साहित्यिक अथवा काव्यात्मक मूल्य चाहे बहुत कम हो किन्तु एक शिकारी के हाथ से लिखी हुई पंक्तियां अपना अलग ही मूल्य रखती हैं।

इस प्रसंग में दो पुस्तकों का वर्णन और लिख कर इस अध्याय को समाप्त करने को बाध्य होना पड़ता है क्योंकि यदि अन्य प्रसंग भी इकट्ठे किए जायं तो छोटी-वड़ी बहुत-सी पुस्तकें इस अध्याय में स्थान पाने की अधिकारिणी हैं।

१. सभाविनोद– कवि सोभनाथ कृत। अभी-अभी जीवाराम के सभा-विलास का उल्लेख किया था। इसमें अनेक प्रसंगों को लेकर कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा राजा को प्रभावित करने की चेष्टा की थी। सोभनाथ की इस पुस्तक 'सभाविनोद' में बहुत से विलक्षण विषय हैं जिसमें 'पक्षी-साहित्य' अपना विशेष स्थान रखता है। पक्षियों के साथ वृक्ष और सरोवर के भी उत्तम प्रसंग हैं। ग्रंथकर्ता ने यह पुस्तक पांच विलासों में बांटी है—

	दोहा संख्या
१. ग्रहाक्तवर्ननो नाम प्रथमो विलासः	५२
२. नाइका नाइकोक्ति द्वितीयो विलासः	६१
३. तरवरोक्ति तृतीयो विलासः	१६३
४. पंछी विलास चतुर्थो विलासः	५७
५. तरक तरोवर सभाविनोद पंचमो विलासः	१९८

कुछ उदाहरण देखें—

> सादर बोलें हित करैं, देत अमोल रसाल।
> सोभ निरषि कै कोकला, रीझत हैं छितिपाल।।
>
> बोलत बुलबुल बोस्तां, सब पंछिन के बोल।
> सोभा तौ सिरदार लषि, राषै समझ अमोल।।
>
> अकड़ भरे पोदत लहैं, पूरिन तैं दुरबास।
> सोभ बड़े सिरदार तौ, मुरग न राषै पास।।

और भी—

> अति कोमल तन चीकनैं, नर में सोभ विसेषि।
> को नहिं मोहै जगत में, बालन की छवि देषि।।
>
> तवा रूप तचई अवनि, सोभ तेज के धांम।
> कहलाये सब जीव तौ, पायो ग्रीषम नाम।।

यह पुस्तक 'रसरासि रसिक किसोर गुरुदेव' की प्रेरणा से सोभनाथ ने लिखी। पुस्तक की रूप-रेखा और अवतरणों से स्पष्ट है कि इस पुस्तक में कवि द्वारा प्रकृति-वर्णन का उत्तम प्रयास किया गया है। पशु, पक्षी, लता, वृक्ष, सरोवर, कमल आदि प्रकृति-उपादानों को मानवी भावनाओं सहित प्रदर्शित किया गया है। निःसंदेह कवि का प्रयास बहुत ही प्रशंसनीय है। दो दोहे और देखिए—

> दीरघ दरसें द्रसनी, सोभ लिये किलकान।
> को ठहरै इह लाग तें, दृग बलिष्ठ ए बांन।।
>
> सुद्ध प्रभा मन भावनी, भ्रमर अधिक दरसात।
> लषि कमलन सोभा सरस, अति ही नैंन सिरात।।

इस पुस्तक में सोभनाथजी ने अपने सम्बन्ध में बहुत-सी बातों का उल्लेख किया है। सबसे पहली बात तो यह है कि ये कवि महोदय बसुवा[1] के राजा के आश्रित थे।

> ब्राह्म प्रगट कनौजिया, कनवज मंडल बास।
> रह्यौ ढुंढाहरि मैं अभै, बसुवा कै नृप पास।।

पुस्तक निर्माण-काल—

> संवत अट्ठारह सतक, बरस और उनतीस।
> माघ शक्ल तेरसि भगो, पुष्य नक्षत्र लहीस।।

---

[1] बहुत समय तक बसुवा अलवर राज्य में रहा। एक समय ऐसा भी आया जब इसका आधा भाग अलवर में था और आधा जयपुर में।

कवि के लिखे अनुसार यह उनका २९वां ग्रंथ हैं—

ग्रंथ कियौ उनतीसवों, यह मन आनि प्रमोद।
तरक सरोवर नाम है, दूजो सभाविनोद ॥[1]
तरक सरोवर पढ़त ही, जीते सभाविनोद।
राजी करि राजानकैं, सुष पावै चहूं कोर।
सोभ मिले बड़ भाव तैं, हम कौं गुरू किसोर।
शक्ति दई कविता करन, मानि लही चहूं ओर ॥

ये महाशय राजाराम के पुत्र कान्यकुब्ज भारद्वाज थे—

भरद्वाज कुल में प्रगट, भये सु राजाराम।
सात पुत्र जिनके भये, पंडित धनी उदाम ॥
चारिन तें लघु कवि प्रगट, सोभनाथ है नाम।
गुरु द्वै भाइन तै लह्यौ, गुरू ध्यान अविराम ॥

'सभाविनोद' में सभा में विजय प्राप्त करने की युक्ति बताई गई है। साथ ही प्रकृति-चित्रण के भी सुन्दर उदाहरण दिए गए हैं—

२. **लाल ष्याल**–यह ग्रंथ लाल नामक चिड़िया के बारे में हैं। लाल-संग्राम राजाओं का एक मनोविनोद होता था और इस पुस्तक में यही दिखाया गया है कि इस चिड़िया के युद्ध में क्या-क्या तैयारियां की जाती थीं और किस प्रकार युद्ध कराया जाता था।[2] दुर्भाग्य से इस पुस्तक के रचयिता का पता नहीं

---

[1] कवि ने इस पुस्तक के दो नाम लिखे हैं—'तरक तरोवर' तथा 'सभाविनोद' इस पुस्तक के अतिरिक्त कवि के कम से कम अट्ठाईस ग्रंथ और होने चाहिएं। बहुत कुछ खोज करने पर भी अभी तक और कोई ग्रन्थ नहीं मिल सके है। कवि की उक्ति तथा सभाविनोद के देखने से प्रगट होता है कि कवि ने चारों ओर मान प्राप्त किया होगा।

[2] यह हस्तलिखित पुस्तक विचित्र है। उदाहरण के लिए—

१. इसमें अक्षर क्या हैं—प्रत्येक अक्षर एक चित्र है।
२. अक्षर बहुत ही मोटे हैं और कुछ तो दोहरे करके लिखे गए हैं। बीच में रंग भर दिया गया है।
३. प्रत्येक पृष्ठ पर ७–८ तरह के रंग पाए जाते हैं।
४. अलग-अलग पंक्तियों में अलग-अलग रंग हैं।
५. विराम चिन्ह भी अलंकृत हैं, जैसे दुहरी पाई में कहीं गेहूँ की बाल के समान और कहीं लाल नामक चिड़िया की आकृति के समान चिन्ह बनाए गए हैं। जगह-जगह अलग नमूने दिए गए हैं।
६. इस प्रति में १८७ पत्र हैं। अंत में लिखा है—

'समापीत ग्रन्थ सुभ'

'लाल ष्याल यह नाम है, जानत सकल जिहान।
अदवृत कथा प्रसंग की, या तो अदवृत मान ॥'

७. इस पुस्तक में विराम तथा अक्षरों के बनाने में लाल चिड़िया के चित्र का प्रयोग बहुतायत से किया गया है।

लग सका फिर भी इसमें संदेह नहीं कि इस पुस्तक की रचना बलवंतसिंहजी के आश्रय में की गई—

सोहै बाग सुहामनौ, ब्रज में परम रसाल।
भोगौ बलमत लाडलौ, धारे रूप ही जाल ।।

दोहरी पाई दो चिड़ियों के छोटे चित्रों से लगाई गई हैं, जो लाल चिड़िया के से चित्र मालूम होते हैं।

जानो बलमंत स्योंध लाल है अनूठी बड़ौ,
जंग जीतबे कौ बीरा वीर सम धारै है।
कोउ किन आवै वीरा कीरा सम लागै मोय,
याही तै गरूर भरौ वानी कौ दहारै है ।।
मीरा करौ षैती अंग जम परौ सीरा खाउ,
उर मैं ही नाम ही की चाह जोर मारै है।
तीरा मन धीरा भली-चोंच बनी हीरा सम,
चीरा है लालन के षीरा सम फारै है ।।

कवि का कहना है—

लालन के संग्राम की, बरनी कविन अनेक।
मेल मिलाती मैं कही, यह अदवृत रस लेष ।।
नौउ रस की सुभ कथा, लालन मैं सरसाय।
मैं सीखी कवितान पै, बरनी तिनै सुनाय।।
कविजन सागर मधुर के, कंज रूप तुम अंग।
भूलौ ताय समारियो, धारै प्रेम प्रसंग ।।
पाली पाली जानकै टाल, .कयौ सो हाल।
और जोट हाजर भई, मुसिकाये महिपाल ।।

इस प्रकार लालों की अनेक जोटें एक के पश्चात् एक उपस्थित की जाती थीं और उन्हें लड़ाया जाता था। पुस्तक में लेखन की अनेक अशुद्धियां हैं। छोटे 'उ' की मात्रा पुराने ढंग से ही लगाई गई है। अनेक स्थानों में वर्तनी की अशुद्धियां हैं। पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार होता है—

'श्री गणेसायनम—व्रंभने नम। सुरज वर्नन।'

कवित्त—

तेरो जो प्रकास ताकी सुंदर प्रकास गत,
आवत ही अवनी में होत है अराम लाल।
देवलोक दानव के जक्षन तै किनर के,
नर के जितेक लोक मानत हैं चैन जाल ।।
घाम घाम धारा जात अधिक अराम काम,
पूरन प्रकास पान पुन्यन के होत ढाल।
एहो देव देव सुन ग्यान देव जत्क रूप,
जागत ही जाकी सब्र सोमत ही सोमैं हाल ।।

ग्रीषम बीती रित गई, गई पतंगी भाग ।
अब बरसा आही प्रघट, ताको सुन अनुराग ।।
बरसा मै बहु षेल, नरनारी षेलैं प्रघट ।
तामे रस को मेल, लाल ष्याल बरनन करो ।।

कवि सभी प्रकार के लालों का वर्णन करने में असमर्थ है । केवल 'साहब के लाल' का ही वर्णन करना चाहता है—

सब लालन को बरन तैं, बाढ़ै ग्रन्थ अपार ।
तातै साहब लाल को, बरनो कर निरधार ।।

साहब के लाल —बलष बुषारे को पातसाह—

बलष बुषारै एक पातसा सवारी जात,
ऊट परो प्रान भए सब गात हैं।
याही को चलाय देन चालै नहीं षोयो गयो,
जैसे सुनमान लई झूठी जग बात है ।।
एक लाल कौन कहै छोड़े हैं अनेक लाल,
साहब के लालन की ऐसी बड़ी जात है।
कौन लाल कौन भयो कौन जानै कौन रीत,
देषो अब जाकी जग ध्वजा फैरात है ।।

साहब लाल अनेक हैं, वरन् सके कवि कौन ।
ग्रन्थ बडे वीस्तार पै, तातै गही मत मौन ।।

इस प्रकार इस पुस्तक में साहब के लाल और उनकी जोटों का वर्णन है । लाल-संग्राम इसकी विशेषता है ।

इस अध्याय के अंतर्गत मत्स्य में प्राप्त विविध प्रकार का साहित्य उपस्थित किया गया है । इनमें से प्रत्येक की अपनी-अपनी विशेषता है, किन्तु युद्ध तथा इतिहास सम्बन्धी साहित्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

१. इसमें काव्य के साथ ही ऐतिहासिक महत्त्व सर्वत्र मिलता है । वर्णन अत्यन्त प्रामाणिक हैं और इतिहास द्वारा सत्य सिद्ध होता है ।

२. इस साहित्य में अतिशयोक्तिपूर्ण कविता कम मिलती है । भूषण जैसे राष्ट्रीय कवि भी इससे मुक्त नहीं । वीरगाथा काल वाले कवियों का तो कहना ही क्या है । किन्तु इस प्रदेश की तथ्यपूर्ण वर्णन-शैली को कभी नहीं भुलाया जा सकता । वीरता का बखान करते समय कुछ बढ़ावा भले ही हुवा हो किन्तु नाम, स्थान, संख्या, तिथि आदि के बारे में कवि बहुत सतर्क रहे हैं ।

३. राजस्थान का यह प्रान्त जैसे वीरता का अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है, उसी प्रकार यहां की युद्ध-सम्बन्धी कविता भी ऊँचे दर्जे की हुई। हमारा तो अनुमान है कि मत्स्य का यह वीर-साहित्य गौरव के साथ अपना मस्तक ऊँचा कर सकता है।

४. राजाओं का मनोविनोद तो चलता ही रहता था, किन्तु उसके साथ कवियों द्वारा प्रस्तुत वर्णन की सूक्ष्मता और प्रकृति का निरीक्षण बहुत सुन्दर बन पड़ा है। सभी बातों का विचार करते हुए हमें मानना पड़ता है कि यहां के कवि वास्तविकता और स्वाभाविकता की ओर अधिक झुके हुए थे।

अध्याय ६

गद्य - ग्रन्थ

गद्य का प्रयोग मनुष्य-जीवन के साथ रहा है। जब से मनुष्य ने बोलना सीखा तबसे वह गद्य बोलता आया है। यह अवश्य है कि इसका लिखित रूप कम मिलता है। पुराना पद्य मिल जायेगा, किन्तु पुराना गद्य 'नुमायशी चीज' हो कर हमारे सामने आता है। हजार वर्ष पहले का पद्य हमें उतना प्रभावित नहीं करता जितना पांच सौ वर्ष पहले का गद्य। इसका सबसे बड़ा कारण है गद्य के लिखित रूप का अभाव। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य पारस्परिक सम्भाषण में गद्य का प्रयोग करते आये हैं और जब कोई समाचार आदि लिखने होते हैं तब गद्य का ही प्रयोग किया जाता है, किन्तु प्रायः सामयिक होने के कारण गद्य में स्थायित्व नहीं होता। कार्य हो जाने के पश्चात् तत्सम्बन्धी गद्य व्यर्थ हो जाता है, अतः नष्ट कर दिया जाता है। इसके विपरीत काव्य में स्थायित्व के लक्षण होते हैं—अच्छा काव्य सब काल और सब देशों के लिए होता है—और इसी कारण वह अधिक समय तक बना रहता है। पद्य की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं जो इसे स्थायित्व प्रदान करती हैं। पद्य में काव्य का गुण आने पर एक चमत्कार उत्पन्न हो जाता है जिसके लिखने, पढ़ने और सुनने में आनन्द आता है। पहले तो वैद्यक, ज्योतिष, गणित, विज्ञान आदि की पुस्तकें भी पद्य में ही लिखी जाती थीं क्योंकि उन्हें याद रखने में सरलता होती थी। आज की विद्या 'पुस्तकस्था' है किन्तु उस समय जब मुद्रण-यन्त्र का आविष्कार नहीं हुआ था, बहुत-सा काम मौखिक ही होता था और इस रूप में गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक सुविधाजनक होता है।

मत्स्य प्रदेश में गद्य का प्रचार उतना ही पाया गया जितना हिन्दी भाषा-भाषी अन्य प्रदेशों में। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय भी यह बात स्वीकार की जाती थी कि व्याख्या करने में पद्य की अपेक्षा गद्य के द्वारा आसानी होती है और इसी कारण किसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए स्थान-स्थान पर गद्य का प्रयोग किया जाता था। मत्स्य-साहित्य की खोज करने पर गद्य का प्रयोग अनेक रूपों में पाया गया। प्रमुख ये हैं—

१. उपनिषद् ग्रन्थों के सूत्रों की व्याख्या के रूप में।

२. पुस्तकों की प्रस्तावना के रूप में। यह प्रथा अपेक्षाकृत कम ही थी। साधारणतः पुस्तक के प्रथम अध्याय, सर्ग, उल्लास, प्रकाश, प्रभाव, विलास, तरंग, मयूख, आदि द्वारा प्रस्तावना-कार्य सम्पादित किया जाता

था। उनमें वर्णन का माध्यम पद्य ही रहता था जो पुस्तक के आगे के अध्यायों से संबंधित होता था। इस प्रकार का प्रस्तावना—अंश पुस्तक का अंग ही समझना चाहिए।

३. किसी पुस्तक का आरम्भ तथा अन्त करते समय उससे संबंधित सूचना देने के रूप में कि—

क पुस्तक का नाम क्या है।
ख रचयिता कौन है।
ग निर्माण किस संवत् में हुआ।
घ लिपिकार का नाम और पता।
ङ लिपिबद्ध करने का समय।
च किसके लिए लिखा गया।
छ लिखने का समय क्या है।
ज लिखने का प्रयोजन आदि, आदि।

आरम्भ में गणेश, सरस्वती अथवा किसी अन्य देवी-देवता के लिए नमस्कार। कभी-कभी ग्रंथ का नाम और रचयिता का नाम भी।

४. पुस्तक के प्रत्येक सर्ग, अध्याय आदि के अंत में पुस्तक का नाम, रचयिता का नाम और उस सर्ग अथवा अध्याय के वर्ण्य-विषय का संकेत होता था। यह सूचना बहुत उपयोगी सिद्ध होती है—

क अध्याय विशेष के वर्ण्य-विषय का पता लगाने में।
ख अपूर्ण पुस्तक होने पर पुस्तक का नाम आदि जानने में।

५. कहीं-कहीं पुस्तकों के बीच में किसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए भी गद्य का प्रयोग होता था। ऐसा माना जाता था और अब भी यही धारणा है कि जहां तक किसी बात की व्याख्या करने का प्रश्न है पद्य की अपेक्षा गद्य की शक्ति अधिक है। अतः कठिन प्रसंगों को समझाने के लिए गद्य का प्रयोग किया जाता है। गद्य का यह रूप रीति-ग्रन्थ, इतिहास-ग्रन्थ, कथा-ग्रंथ आदि में मिलता है।

६. गद्य की स्वतन्त्र पुस्तकें जिनमें निम्न प्रकार की पुस्तकें मिलती हैं—

क किस्से, 'पीसा', 'षिस्सा', कहानियां आदि।
ख नीति-प्रतिपादन।
ग सिंहासन-बत्तीसी, हितोपदेश आदि के अनुवाद।

घ अकलनामे, सामान्य ज्ञान कराने वाली पुस्तकें।

ङ नागरी में लिखा हुआ उर्दू गद्य।

७. हिंदी-संस्कृत ग्रन्थों की टीका, अर्थ आदि के रूप में।

८. प्राचीन काल के हुक्मनामे, संधिपत्र, ख़रीते आदि के रूप में संचित सामग्री। यह सामग्रो बहुत मूल्यवान होती थी और राजा तथा अन्य लोग इनका संग्रह सावधानी के साथ करते थे।

९. रुक्के, परवाने आदि जो कुछ लोगों के पास आज भी सुरक्षित हैं। ये किन्ही बातों के प्रमाण रूप में दिए जाते थे।

१०. अन्य गद्य के नमूने जो सामान्य व्यवहार की सामग्री हैं और जो किसी कारण विशेष से उपलब्ध हो जाते हैं, जैसे—पत्र आदि। उस समय की प्राप्त गद्य-सामग्री के आधार पर नीचे लिखे निष्कर्ष निकलते हैं–

(अ) प्राप्त पत्रों के आधार पर मालूम होता है कि उस समय नागरी तथा फारसी दोनों लिपियों का प्रचार था। फारसी लिपि को प्रधानता होने पर भी नागरी को उपेक्षा नहीं थी। किन्हीं-किन्हीं पत्रों में फारसी और नागरी दोनों लिपियां पाई जाती हैं, यद्यपि भाषा फारसी है।

(आ) उस समय हिजरी तथा विक्रमी दोनों संवत् चालू थे। उर्दू, फारसी के पत्र तथा ग्रंथों में भी विक्रम संवत् मिलता है। हिंदी को पुस्तकों में प्राय: विक्रम संवत् ही पाया जाता है। कुछ स्थानों में शक संवत् भी दिया गया है।

(इ) उस समय का गद्य व्रजभाषा से ही प्रभावित है। मत्स्य-प्रदेश में भी जहां बोलचाल की भाषा व्रज से भिन्न रही है, उपलब्ध गद्य का अधिकांश व्रजभाषा में ही है। हो सकता है उस समय साहित्यिक कार्य के लिए व्रजभाषा का हो प्रयोग किया जाता रहा हो। प्राय: देखने में आता है कि साहित्य की भाषा से वोलचाल की भाषा भिन्न रहती है, इसी नियम के अनुसार इस प्रदेश में भी बोलचाल की भाषा अन्य रहने पर भो लिखने में व्रजभाषा की ओर ही ध्यान रहता था। अलवर की कुछ रचनाओं में कभी-कभी अलवरियापन मिल जाता है—जैसे 'ण' का प्रयोग 'न' के स्थान में अथवा 'यह' के स्थान में 'याँ' का प्रयोग, अथवा 'क्या' के स्थान में 'कांईं' आदि। किन्तु प्राप्त साहित्य के आधार पर इस प्रवृत्ति को नियम की अपेक्षा अपवाद ही माना जा सकता है।

(ई) अन्य प्रदेशों की ही तरह यहां भी गद्य-साहित्य प्रचुर मात्रा में नहीं मिलता और उसके द्वारा किसी विशेष महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति भी नहीं होती। समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार साधारण रूप में गद्य का प्रयोग होता रहा।

'भारतीय प्राचीन लिपि माला' में पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने राजस्थान में प्रयुक्त होने वाली ७ बोलियां—मारवाड़ी, मेवाड़ी, बागड़ी, ढूंढाड़ी, हाड़ौती, मेवाती और ब्रज बताई हैं। मत्स्य में ब्रजभाषा की ही प्रचुरता है। भरतपुर, धौलपुर तथा करौली जिलों की तो यह भाषा है ही, साथ ही अलवर के पूर्वी भाग में भी इसी का प्रयोग होता है। अलवर और भरतपुर के मेवात प्रदेश में मेवाती बोली जाती है जो अपनी कर्ण-कटुता तथा विशेष लहजे से जानी जा सकती है।

विक्रम की अठारहवीं सदी के अंत में तथा उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में कवि 'कलानिधि' ने हिन्दी साहित्य को अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ-रत्न प्रदान किये। उन्हीं के द्वारा १८वीं शताब्दी के गद्य का नमूना भी प्राप्त होता है। कवि ने 'उपनिषद्-सार' नाम का एक ग्रंथ गद्य में रचा। इसमें 'तैत्तिरीय, माण्डूक्य, केन आदि उपनिषदों के सूत्रों की व्याख्या हिन्दी में की गई। इस पुस्तक का एक नमूना—

सूत्र—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'

व्याख्या—'याकौ अर्थ नित्य अरु अनित्य इन वस्तुन कौ समुझिवौ अरु शम दमादिक अरु वैराग्य अरु मोक्ष की इच्छा येयों चारि साधन हैं। इन चारचौ साधन सिद्धि भये उपरान्त याहि हेतु तें ब्रह्म की जिज्ञासा कहै जानिवे की इच्छा तासौं श्रवण मनन निदिध्यासन करि अविद्या नाश भये अपरोक्ष साक्षात्कार ब्रह्म कों सूचित करयौ।'

हितोपदेश को हिन्दी गद्य में लिखने के अनेक प्रयास हुए। १८वीं सदी का एक नमूना देखिए जिसे करौली राज्य के आश्रित देवीदास ने प्रस्तुत किया था। श्लोकों के अनुवादों में प्रयुक्त गद्य का रूप देखना उचित होगा। यह एक प्रकार से उन श्लोकों की, उनके शब्दों सहित, टीका भी है—

'अथ सुरद भेद लिषते—

दुहा— राजपुत्र असैं कहतु, सुनों जु सद्गुर धीर।
जब हमकूं इच्छा भई, सुरद भेद सुख गीर॥

पुन राजपुत्रन विष्णु शर्मा सों कही—अहो गुरु मित्रलाभ तो हम सुन्यौ। अब सुरदभेद कथा सुनिवे की ईच्छा है। तब बिसन सरमा कहतु है—

दुहो— समैं ऐक सिंघ वन विषै, बढ्यौ बरद सुं नेह।
दुष्ट आर असी करी, बरद मरावत लेऊं॥

बात–बिसन सरमा कहतु है एक समै वनमें बरद ग्ररु सिंघ बाढचौ सनेह। दुष्ट लोभी स्यार उनक सनेह दूर करायौ। तब राजपुत्रन कही यह कैसी कथा है।

तब विस्न सरमा कहत है—

दछिन देस में सुमतितिलक नाम नगर है। तिहां बरधमान नामक बनीया बसै। जद्यप वाकै बहुत धन है। तद्यिपि वाको ग्रौर बनीयां के धन बहुत ईच्छा भई।

बात– ग्ररु जाकै थोरी तिसना होय। धीरजवंत सयांनो होय। सूर ज्यूं पछि छांही नाही छाकै त्यूं साहिब की सेवा न छाकै ग्राग्या पाय ऊजर नांही करै। सो राजा के निकट जाय रहै।

श्लोक–उपायेन हि यच्छ्‌क्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः।
काक्या कनक सूत्रेण कृष्न सर्पो निपातितः॥

जातै जु कारज उपाय कर होई। सु बल तै कबऊ न होई।
जातै एक कागनी सोनै के सूत्र करि कालौ सांप मरवायौ।

तब करकट कही यह कैसी कथा है..."

इस गद्य में कुछ विशेष बातें दिखाई देती हैं, जैसे—

१. शब्दों के रूप बहुत बिगड़े हुए हैं। संस्कृत का 'सुहृद' 'सुरद' रूप में हैं। तृष्णा 'तिसना' रह गई है।

२. शब्दों का रूप स्थिर नहीं है, एक हो शब्द कई प्रकार से लिखा गया है, जैसे—

१ विष्णु, विसन, बिसनु, विस्न।
२ यद्यपि, जद्यप, जद्यपि।

३. इकारान्त ग्रौर ईकरान्त का भेद नहीं पाया जाता।

४. क्रियाग्रों के रूप ग्रनेक प्रकार के मिलते हैं।

५. लय-गीतात्मकता भी है—

ग्ररु जाकै थोरी तिसना होय। धीरजवंत सयांनो होय॥

यह देखने की बात है कि यह ग्राज से २००, २२५ वर्ष पहले के गद्य का नमूना है, फिर भी समझने में कोई कठिनाई नहीं होती है।

इसके उपरान्त रीति-काव्यों में ग्रनेक प्रकरण ऐसे हैं जिनमें गद्य का प्रयोग स्थान-स्थान पर किया गया है। गोविंदानन्दघन का एक उदाहरण देखें—

ग्रथ ग्रभिनव गुप्त पादाचर्ज को तत्व लक्ष्ण—

(रस की व्याख्या करते हुए)

'रसिकनि के चित्त में प्रमुदादि कारण रूप करि कैं॥ वासना रूप करि कैं

स्थिति ।। नाटच के काव्य विषै विभाव अनुभाव संचारो भाव साधारणता करिकें प्रसिद्ध । अलौकिक ।। ग्रैसै निकरि कै प्रगट कीनौं हुवौ । मेरे शत्रु के उदासीन, के मेरे नही, सत्रु के नही उदासीन के नहीं । याही तें साधारण । जहां स्वीकारपरिहार नहीं सो साधारण । साधारण उपाय बलि करि कै ततछिन उतपत्ति भयौ । आनन्दस्वरुप । विषयांतररहित । स्व प्रकास अपमित जो भाव । स्व स्वरूप की सी नांही । न्यारौ नहीं तौ हू जीव नें विषय कीनौ हुवौ । विभावादिक की स्थिति जाकौ जीव ते आंनद वृति जाकै प्राण । प्रयान कर सा न्याय करि कै । अनुभव कीनौं हुवौ आगारो फुरत सौ । हृदय में धरत सौ । अंगनि कौ आलिंगति सौ । और ज्ञान को छिपावत सौ । परब्रह्म अस्वारद कौ तजावत सौ । अलौकिक चमत्कार करै जो इत्यादि स्थाई भाव सौ रस ।।

सो नव विधि

प्रश्न--सांति कछु कैसें ।

उत्तर--सांति काव्य मैं कहियत नाटच मैं नहीं याते ।।

इस गद्य अवतरण में हम देखते हैं कि—

१. विचार-ग्रहण में कुछ कठिनाई होती है, जिसका एक कारण अभिनवगुप्त के गहन विचारों का गुम्फित होना भी हो सकता है ।

२. कुछ शब्दों के रूप शुद्ध संस्कृत हैं—

तत्त्व, लक्षण, परिहार, आस्वाद, स्वरूप, विषयांतर इत्यादि ।

३. 'फुरत सौं', 'धरत सौं', 'आलिंगत सौ', 'छिपावत सौ', 'तजावत सौ' आदि से तुकबंदी की प्रणाली लक्षित होती है । यह प्रणाली बहुत समय तक चलती रही और पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय में ही इसका पूर्ण परिहार हुआ ।

'महाराजाधिराज वृजेन्द्र रणजीतसिंह कुमार श्री बलदेव सिंह हेतवे' श्री धरानंद कवीश कृत **'साहित्य-सार-संग्रह-चिंतामणि'** नामक ग्रंथ । इस पुस्तक में कई प्रभाएँ हैं । यह पुस्तक अपूर्ण मिलती है । तीसरी प्रभा पर ही जहां 'ध्वनि' आदि का वर्णन चल रहा है, ग्रंथ अधूरा रह जाता है ।[1] इसमें 'वचनिका' नाम से गद्य दिया हुआ है ।

---

[1] इस पुस्तक की केवल ३ प्रभाएँ ही उपलब्ध हो सकीं ।

१. पिंगलनिरूपण ।

२. काव्य प्रयोजन, कारन स्वरूप, सब्दार्थ विशेष निर्णय निरूपण ।

३. ध्वनि प्रसंग—२८७ छंद से आगे नहीं चलता । (शेष टिप्पणी पृ. २३२ पर देखें)

दूसरी प्रभा से :

वचनिका--

'काव्य कौं मूल कारण गुरु देवता प्रसाद जनित संस्कार सो शक्ति जानियै। शास्त्र कहिवे तें छंद कोश व्याकरण जानि इन के देखेते चतुरता होइ सो चतुरता। कवि कालिदासादिक इन की रचना देखनों रूप सिद्धता ताते होइ सो अभयास। अभ्यास कहा कि देखिवे विचारिवै में वारंबार प्रवृत्ति। ए तीनों मिलि काव्य के कारन हैं। वस्तु तें तो काव्य को कारण मुख्य शक्ति ही है। याही तें शक्ति को काव्य की मूल कारणता कही ···।'

यह स्पष्ट है कि ऊपर लिखा गद्य बहुत कुछ सुगम है और समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। इस पुस्तक में इस प्रकार के बहुत-से उदाहरण हैं।

प्रसिद्ध कवि सोमनाथ कृत 'रसपीयूषनिधि' में प्रयुक्त गद्य का नमूना भी देखें।

वीभत्स रस का उदाहरण दे कर उसमें विभाव आदि का स्पष्टीकरण

अ. ऐसा प्रतीत होता है यह पुस्तक बहुत बड़ी थी। जो अंश प्राप्त हुआ है और जिस विस्तार के साथ काव्य-सिद्धान्तों को समझाया गया है उसके आधार पर पूरी पुस्तक के आकार की कल्पना की जा सकती है। प्राप्त ३ प्रभावों की पत्र-संख्या १३५ है।

आ. इस रीतिग्रन्थ में अनेक कवियों के उदाहरण दिए गए हैं। सिद्धान्त निरूपण में काव्यप्रकाश का अनुगमन किया गया है। पुस्तक का कविकृत मौलिक अंश गद्य में ही है। अतएव इसे गद्यग्रन्थों में सम्मिलित किया गया है।

ई. पिंगल समझाते समय कविवर सोमनाथ की तरह इन्होंने भी अनेक चित्र आदि दिए हैं। पहाड़, वर्ग, पक्षी आदि अनेक प्रकार से पिंगल को समझाया गया है।

जहां कवि ने अपने छंदों का प्रयोग किया है वहां 'स्वकृत' लिख दिया है। कविता की दृष्टि से इनकी रचना अच्छी होती थी। उदाहरण—

'स्वकृत—

मदजल मंडित गंड चंड लगि चंचरीक गन।
हलत सुंड मनु दूंड विविध जिहि पूजत सुरगन ॥
सेस दंत मद भक्तवंत सोभित अतंक गति।
सेवित शेष सुरेश नरेश द्विजेश महामति ॥
सिंदूर पूर सोभित बदन, सदन बुद्धि भवभय हरण।
इन्द्रादि देव वंदित चरन, लंबोदर कवि जन सरन ॥'

किया गया है ।[1]

'इहां चंडिका और दषनि वारी आलंबन विभाव और आंतनि को चचौरबो उद्दीपन विभाव और देषन वारे के वचन अनुभाव और असुया संचारी भाव इनतैं आनि स्थायी भाव व्यंगि तातैं बीभत्स रस ।'

इसमें संदेह नहीं कि कवि द्वारा प्रयुक्त गद्य में अर्थ बहुत ही स्पष्ट हो गया है । भाषा में भी उलझावट नहीं है । किन्तु वाक्य क्रियाहीन हैं । इसे हम यदि टिप्पणी के रूप में मान लें तो कोई हानि नहीं होती, क्योंकि इस गद्य का उद्देश्य भी यही है कि यदि किसी को कुछ संदेह हो तो बात स्पष्ट हो जाय ।

काव्य-सिद्धान्त-निरूपण के प्रसिद्ध ग्रंथ "भाषाभूषण" की संपूर्ण टीका अलवर के महाराजा विनयसिंहजी ने की है । पुस्तक में अपना परिचय इस प्रकार दिया है —

'जस जागत जसवंत वली, नृप भाषाभूषण कौं रचत ।
राजाधिराज वषतेस सुत, विनैसिंह टीका करत ।।

इस दोहे से प्रतीत होता है कि विनयसिंहजी उस समय तक सिंहासन पर नहीं बैठे थे । अतएव उनके द्वारा बनाई गई भाषाभूषण की इस टीका का समय संवत् १८७१ से पहले होना चाहिए । टीका का एक नमूना देखिए—

"विघन हरन तुम हो सदा, गनपति होहु सहाय ।
विनती कर जोरैं करैं, दीजे ग्रन्थ बनाय ।।

टीका

'हे गनपति तुम सदा विघन के हरन हारे हो । मेरी सहाय होहु, हाथ जोर तुमतैं विनती करौं हौं । यह ग्रंथ संपूरन बनाय दीजै । प्रथम ग्रंथारंभ में इष्ट देव कौ मनाइये । तहां मंगलाचरन तीन प्रकार कौ होत है । वस्तु निर्देशात्मक, आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक ।

---

[1] उदाहरण का छंद ये है—

इतही प्रचंड रघुनंदन उदंडभुज,
उतै दसकंठ बढ़ि आयौ रुंड डारि कै ।
सोमनाथ कहै रन मंडयौ फर मंडल मैं,
नाच्यौ रुद्र श्रोणित सौं अंगनि पषारि कै ।
मेद गूद चरबी की कीच मची मेदनी में,
बीच बीच डोलें भूत भैरों मुंड धारि कै ।
चाइन सौं चंडिका चबाति चंड मुंडन कौ,
दंतनि सौं अंतनि चचोरे किलकारि कै ।।

जहां इष्टदेव कौ वस्तु स्वरूप गुण इत्यादि वरनन कीजै सो वस्तुनिर्देशात्मक। सो वस्तु निर्देश तौ सब ही जगै आवै। परन्तु वस्तु निर्देश में जय शब्दादि लिये होय तहां आशीर्वादात्मक। जैसे 'केसवदास निवास निधि' इहां आशीर्वादात्मक। 'नमस्कार करि जोरि कै कहै महाकविराय' इहां नमस्कारात्मक।

मेरी भव बाधा हरौ·········होई॥ टी० इहां केवल वस्तु निर्देशात्मक। इहां कर जोरवौ यह शब्द आयौ तातै इहां वस्तु निर्देश के अंतर्भूत नमस्कारात्मक मंगलाचरन है॥ १॥"

एक और उदाहरण—

"सुकिया पति सौं पति कहै, परकीया उपपत्ति।
वैसुक नायक की सदां, गनिका सौ हित रत्ति॥

टीका

सुकिया के पति सौं पति कहै है॥ परकिया के पति सौं उपपति कहै हैं—वेस्यां के पति सौं वैसक कहै है॥ ८॥ अनुकूल १ दक्षन २ सठ ३ घृष्ट ४। धीरोदात्त १ धीरमृदु २ धीर उद्धत ३ धीर प्रशांत ४॥ यन सौ चौगुने कीये भेद ला भये (४×४)॥ १६॥ फिर दिव्य १ अदिव्य २ दिव्यादिव्य ३॥ यन तीन (१६×३=४८) भेदन सूं सोले कूं तिगुने कीने तव सोलेति। अठतालिस भेद भये॥ ४८॥ उत्तम १ मध्यम २ अधम ३ यन तीन (४८×३=१४४) तै तिगुने कीये। अठतालीस कूं। तब येक सो चवालिस भेद भये। पति १ उपपति २ वैसुक ३ तीन ये भेद मिलिके (१४४+३=१४७) येक सो सेतालिस भेद भये॥ १४७॥"

अब नायिका के भेद भी देख लीजिए। इससे पता लगता है कि उस समय कितनी विस्तृत टीका होती थी।

"मूल- पदमनि चित्रनि संषनी, अरु हस्तनी वषांनि।
विविध नाइका भेद में, चारि जाति तिय जानि॥

टीका

पदमनि सो कहिये जाके अंक में कमल की सी सुगंध आवै। वस्त्र स्वेत उज्जवल पवित्र पहरवे की रुचि होय। देव पजन में रुचि होय। आहार थोडौ करै। कंदर्प थोरौ होय। कुच नितंब पीन होय। नासिका चंपकलि सी तिल प्रसून सी होय। और नेत्र मृग के से वा कमलदल से होय। चंद को आधो भाग सो भाल होय। और भृकुटी टेढ़ी कवान सी हौय सूछ्म होय। सब अंग सुन्दर वन्यो होय। कर चरन की अंगुरी पतली होय। और करतल पगतल आरक्त होय। और ऊमर वड़ी होय तोहू बारै बरस की सी दीपै। और दांत छोटे होय सुधी पंगति होंय। केस माथे के सटकारे हौय, सचकिन हौय। और अनंग भूमि में रूमा न होय, और सुरत जल में पुष्प रस की सी सुगंध आवै और जाके अंग सुगंध के लोभ सौ भ्रमर मडरायौ करै। पीक निगलती वरीयां पीक की लीक कंठ में होर दीपै। असी त्वचा झीनी होय। स्वसी की

प्रकृति होय । छह ग्रांगुर की धरनी होय । ग्रौर सीप स्वसी की पुरी रेषा तद्वत् ग्रनंग-भूमि होय । पोहप-माल ग्रासन की रुचि होय । स्वेद में कमल पुष्पादिकिन की सी सुगंधि होय । सुरति समै विमल स्थान, निर्मल सेज भूपन वस्त्रादि विमल भावै। गति हंस की सी मंद होय । नपस्पर्श नपाग्रपात, कपोल-चुंबन, नेत्र-चुंबन की रुचि होय । यह लछिन पदमनीन के हैं ।। १ ।। ग्रथ चित्रनी लछन·········"

इस प्रसंग में चित्रनी, हस्तनी, संषनी ग्रादि स्त्रियों का वर्णन इसी विस्तार के साथ किया गया है । निश्चय ही यह टीका बहुत ही विद्वत्तापूर्ण है ।

पुस्तक में स्वकीया ग्रादि नायिका के भेद भी देखने योग्य हैं—

"स्वकीया नायिका के भेद । १३ । परकीया । २ । ऊढ़ा ग्रनूढ़ा । सामन्या । १६ । प्रोपित पतिका । १० ।

	१६×१०=१६०
उत्तम मध्यम ग्रधम	१६०×३=४८०
दिव्य ग्रदिव्य दिव्यादिव्य	४८०×३=१४४०
४	१४४०×४=५७६०
८	५७६०×८=४६०८०
४	४६०८०×४=१८४३२०
१८, ४	१,३२,७१,२४० भेद"

इस प्रकार एक करोड़ बत्तीस लाख इकहत्तर हजार दो सो चालीस प्रकार की नायिकाएं बताई हैं ।

इस टीका के संबंध में कुछ बातें—

१. टीका की भाषा स्वच्छ ग्रौर विशुद्ध ब्रजभाषा है । ग्रलवर-नरेश बोलचाल की भाषा का प्रयोग न करके उस समय की साहित्यिक भाषा का प्रयोग करने में बहुत सफल हुए हैं । हम देखते हैं कि टीका में

(ग्र) भाषा का रूप बहुत निखरा हुग्रा है ।

(ग्रा) विराम चिन्ह (कम से कम पूर्ण विराम) यथा स्थान लगाए गए हैं ।

(इ) शब्दावलि तथा क्रिया के रूप ग्रपेक्षाकृत व्यवस्थित हैं ।

(ई) तत्सम शब्द शुद्ध लिखे गये हैं ।

२. उस समय सम्पूर्ण मत्स्य प्रदेश में, गद्य में भी, ब्रजभाषा का ही प्राधान्य था । गद्य ग्रौर पद्य दोनों में यही भाषा चलती थी । खड़ी बोली के प्रयोग गद्य की ग्रपेक्षा पद्य में ग्रधिक दीख पड़ते हैं । उसका कारण है मुसलमान तथा ग्रंग्रेजों के द्वारा खड़ी बोली का प्रयोग करना । सोमनाथ,

सोभनाथ, जाचीक जीवन, सूदन आदि में इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। गद्य में ब्रजभाषा छोड़कर अन्य कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं देखी जाती।

३. टीका बहुत ही उत्कृष्ट कोटि की है—

(अ) इस टीका को सरलता के साथ समझा जा सकता है।

(आ) इसमें दिया गया विवरण लेखक की काव्य-शास्त्र-प्रतिभा का द्योतक है।

(इ) भाषाभूषण की सुंदरतम टीकाओं में इसका स्थान होना चाहिये।

४. इस टीका में संख्या आदि देने में बहुत सावधानी की गई है। गुणन ठीक और विधिवत् हुए हैं, जो मूल में नहीं हैं। टीका में बहुत सी बातों को शामिल कर दिया गया है। अवतरण शुद्ध और यथास्थान दिये गये हैं। मूल को समझने में टीका द्वारा मूल्यवान सहायता मिलती है। एक प्रकार से इस टीका द्वारा मूल पुस्तक की सम्मान-वृद्धि हुई है।

५. टीका की इन सब विशेषताओं एवं उत्कृष्टता के कारण हमारा अनुमान है कि इस टीका का लिखने वाला कोई बहुत ही विद्वान तथा काव्य-शास्त्र-मर्मज्ञ कवि था जिसका अध्ययन, भाषा पर अधिकार तथा काव्य-ज्ञान बहुत उच्च कोटि का था। टीका को देख कर इस बात के मानने में बहुत कठिनाई होती है कि महाराज विनयसिंहजी द्वारा इस प्रकार की रचना की जा सकी हो। उस समय के राजाओं में काव्यप्रेम अवश्य था किन्तु कवि और लेखक के रूप में बहुत कम राजा मिलते हैं। हमारा अनुमान है कि महाराज विनयसिंहजी के किसी विद्वान पंडित ने जो राज्य के आश्रित रहा होगा यह टीका लिख कर अपने आश्रयदाता के नाम से प्रचलित करा दी होगी और इस प्रकार के अंश बढ़ा दिए होंगे जैसे—

राजाधिराज बषतेस सुत विनैसिंह टीका करत।

इसमें कोई संदेह नहीं कि महाराज विनयसिंहजी विद्वानों का बहुत आदर करते थे और उनके सम्बन्ध में अलवर राज्य के इतिहास-प्रेमी पंडित पिनाकीलाल जोशी ने अपने इतिहास में लिखा है—

'महाराज विनयसिंहजी के सुशासन में देश-देश के विद्वान, शिल्पकार तथा संगीत-शास्त्र के ज्ञाता अलवर में आये और महाराज उनके गुण ग्राहक हुये।'

महाराज विनयसिंहजी ने भी उस विद्वान की पूरी सहायता की होगी

इसमें सन्देह नहीं हो सकता, किन्तु स्वयं विनयसिंहजी ने इस टीका को किया हो इसमें भारी संदेह है। यदि यह कहीं सम्भव हुआ हो और राजा ने स्वयं ही टीका के रूप में इस उत्तम पुस्तक की रचना की हो तो इसे साहित्य में एक चमत्कार ही मानना चाहिये।

गद्य में लिखा हुआ कुछ कथा साहित्य भी मिला। सिंहासन बत्तीसी के कई हिन्दी संस्करण गद्य-पद्य में देखें, किन्तु हमें 'फितरत' का लिखा **'सिंघासन-बत्तीसी'** नामक ग्रंथ देख कर बहुत प्रसन्नता हुई। पुस्तक का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है—

> श्री गणेशाय नमः। पोथी सिंघासन बत्तीसी उर्दू में[1] सबब लिखने इस दास्तान का जो अकसर औकात गुंचा दिल का व सबब चले व बाद मुपालफ जमाने के वस्तगी तमाम रखता था और नैरंग साज़ी चरपाकीसै किसी काम में न लगता था नाचार वास्ते तफरीह पातर और चसपीद गीतवे के यह पियाल दिल पर गुजरा कि किताब सिंघासन बत्तीसी कू कि हिकायतै नाद रखती है और आज तक किसीनै बीच ज़बान उरदू के तरजमा नहीं किया[2] लिखा चाहिये कि बहर हाल पढ़ने उसके से दिल कू फरहत ताजै हासिल हो। इस वास्ते वंदे मुतपल्लिक 'फितरत' नै बीच पते दिलकुशा भरतपुर के बीच अहद महाराजधिराज व्रज इंद्र सवाई बलवंतसिंहं बहादर-बहादर जंग के तरजमा कीया और कसीदा मदद का माफक है सिले अपने के वास्तै नजर के लिपता हूं कि बीच सिलै उसके यह अफसाना नादर कि मुसम्मा व बाग़ बहर है नज। फैज़ असर से गुजर कै मौरदत हंसी का होवे॥

प्रस्तावना कुछ कठिन सी मालूम देती हैं किन्तु लेखक ने जिस भाषा का प्रयोग आगे किया है वह आसानी से समझ में आ जाती है। "हिकायत पुत्ली दहम की मदन मंजरी नाम—

> 'रोज दीगर कि राजा भोज ने तमन्ना और रंग नशीनी की की पुत्ली दसवीं ने कि मदन मंजरी नाम रखती थी कहा कि ऐ राजा भौज जो कोई कि मानंद राजै विक्रमाजीत की ऐसी हिम्मत और सपावत रपता होय कि जैसी उसने ब्रह्मन करी बुल-मर्ग कू समर जां बख्श दीया और दफे अजीयत किया तौ वह इस औरंग पर बैठे।

---

[1] ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुस्तक मूल रूप में 'उर्दू जबान' में थी। कुछ ही समय बाद इसे नागरी लिपि में लिखा गया। इसे लिपिबद्ध करने वाले 'गोरधन सूरध्वज' थे। लिखने का समय १८९७ दिया हुआ है और महाराज बलवंतसिंह का राज्यकाल १८८२-१९०९ वि० है। यह पुस्तक एक बड़ी सुन्दर जिल्द में सुरक्षित है।

[2] संभवतः यह सिंहासन बत्तीसी का प्रथम उर्दू अनुवाद है जैसा रचयिता भी स्वयं अनुमान करता है।

राजा ने कहा ऐ पुत्ली उस हिम्मत और सपावत का वियांकर। पुत्ली ने कहा कि एक रोज एक जोगी वाग़ राजा के में वारद हुआ··· ·····

नज्म– जो देषा कि आलूदैहै षाक से।
किया उसने दर्याफत इन्द्राक से।
कि यह भी वेशक ख़ुदा दान है।
जवी से अयां नूर इर्फान है॥

पुत्ली ने कहा कि 'ऐ राजा भोज अगर एसी हिम्मत और सपावत रपता हो तो इरादा वैठने इस तख्त का कर।'

पुस्तक के अंत में लिखा है—

'तमाम हुई किताव सिंहासन वत्तीसी वमूजव फरमाइश महाराजे वृजेन्द्र सवाई बलवंतसिंह वहादुर के।'

इस तख्त का इतिहास इस प्रकार बताया गया है—

'किस्सा कहने वालों ज़माने के नै इस दास्ता कूं यौं ज़ीनत तहरीर वषशी है कि एक रोज श्री महादेवजी और गौरा पार्वती कैलाश वैठे थे कि गौरा पार्वती ने अर्ज किया ऐ महाराज तवीयत मेरी वास्ते सुनने अहवाल किसी राजा वड़े के अदल और इनसाफ़ में कोई उसके वरावर हुआ न हुआ होय चाहती है। महादेवजी ने जो वास पातर उनका वीच सव का मौके मंजूर था फरमाया।

नज्म– है मुझ कू पारा षातर यहां तलक।
आनै न दूं कलाम कूं मुतलक जवां तलक॥
मुतवजे गोश दिल से हो मेरी तरफ वशौक।
पूरी हो दास्तान मुरव्वत वहीं तलक॥

पेश्तर इसके जमानै पहले मैं तमाम देवता मुत्तफिक हो कै एक तषत विल्लौरी जवाहर सै आरास्ता करके रूवरू मेरे लाए। मैने कवूल नजर उनके का करा पीछे मुद्दत वहुत के राजा इन्द्र वास्ते मुलाकात के गया था मैंने उसकू वष्शा और राजा इंद्र ने उस तषत कू राजा विक्रमाजीत कू··············'

१. फितरत ने अपने बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं दी है। इधर-उधर पता लगने पर मालूम हुआ कि फितरत साहब शहर भरतपुर के निवासी थे और उनका घर नगर के बीच में स्थित गंगा मन्दिर के पास था। यह संस्कृत और फारसी के विद्वान थे तथा हिन्दी और उर्दू में भी अच्छी योग्यता रखते थे।

२. सिंहासन बत्तीसी नाम का यह ग्रन्थ १८८ पत्रों में लिखा हुआ है।

३. लेखक का दावा है कि उसका लिखा यह ग्रंथ उर्दू भाषा में

किया गया सिंहासन बत्तीसी का प्रथम अनुवाद है। इससे यह भी मालूम होता है कि लेखक ने इसे उर्दू की पुस्तक माना है। इसके द्वारा हिन्दी वालों को गद्य में लिखी एक अच्छी चीज मिल गई।

४. इंशा अल्ला खां की लिखी 'रानी केतकी की कहानी' तथा इस अनुवाद की तुलना करने पर पता लगता है कि वह फारसी लिपि में लिखी गई हिन्दी की किताब थी और यह नागरी में लिखी हुई उर्दू की। इस पुस्तक की भाषा में उर्दू व्याकरण का ही अनुकरण किया गया है। यह कहानी इंशा की पुस्तक से कुछ ही दिनों बाद लिखी हुई गद्य पुस्तक है।

नागरी लिपि में उपलब्ध होने के कारण इसे मत्स्य के गद्य साहित्य में शामिल किया गया है।

'अकल नामा' भी गद्य में लिखा गया है। संवत् १८९६ के आस-पास लिखे गए इस गद्य ग्रंथ का नमूना देखें—

'श्री मन्महागणाधिपतये नमः। श्री श्री सरस्वत्यै नमः। अथ अकल नामा लिष्यते। पातसाह अकबर बीरबल सें कही। श्री भगवान हाथी की पुकार सुनी आप ही दौडे तो कोई चाकर नहीं हुता[1]। तब बीरबल कही कि फेरि अरज करूंगा एक षोजा पातसाह के पोता कू रोज हजूर मैं लाउता। तासू बीरबल कही। जो पातसाह के पोता की सूरति माफिक मोंम की सूरत बनाय। गहना पहराइ हजूर में लाउ। और जानता ही हौद मैं गिराउ। सो षोजा नें वैसे ही किया। तब पातसाह देषत ही हौद में गिरे। सौ मोंम की पुतली लेके बाहर आये।[1] बीरबल कू पूछी यह क्या है। तब बीरबल कही। आपके चाकर नहीं थे। जो आप ही पोते के काढ़नें कूं दौडे। सो जैसें ही ईस्वर की प्रीति भक्तन में होती है। सो गज के छुड़ायन के वास्ते आप ही धाए।'

इस गद्य में स्पष्टतया खड़ी बोली के दर्शन हो रहे हैं—

अ. क्रिया—अरज करूंगा। भक्तन में होती है।
वैसे ही किया। नहीं थे।

आ. कारक– बीरबल से, पोते के, पोता की, पातसाह के।

इ. वाक्यों की बनावट।

'कू' आदि शब्द तब तक चल रहे थे। इस पुस्तक का निर्माण १८९६ वि. में महाराज बलवंतसिंहजी के कहने पर हुआ—

दसरथ सुत रघुबंस मनि, व्यकटेस तिहि नाम।
श्री बृजेन्द्र बलबंत के, करो सदां मनकाम॥

---

[1] भाषा में खड़ी बोली की झलक।

अलवर में प्राप्त '**अकल नामा**' भाषा के रूप की दृष्टि से पिछड़ा हुआ मालूम होता है, इसमें जगह-जगह अलवरी बोलचाल की भाषा के रूप मिलते हैं, परन्तु स्थान-स्थान पर खड़ी बोली भी दिखाई देती है।

'पातसाह साहजिहां कैद में थे। तहां आलमगीर ने जाय अरज करी। जो आप तौ आठवैं दिन अदालत बैठते थे। अर मैं तौ नित अदालत करता हूं। साहजिहां कही हम आठवैं दिन अदालत करते तब नकीव फिरीयादी कूं बलावता सो कोई आवता नहीं। अरु तुम नित अदालत करते हो, तिसपै फिरयादी वाकी रहत हैं।

कुछ अन्य वाक्य—

किसान को कहुत रियायत करणी। गई वस्तु का सोच कधी न करिये॥[1]

'ईश्वर को मनते न भुलाइये। विना उपदेस और भली चर्चा के मुषते कोई वचन नहीं काडिये। वालक और स्त्री जो कहे ताकी प्रतीत न कीजिये। और इनौते मन का भेद न कहिये।[2]

संवत् १९१० के आस पास का गद्य भी देखिए जो '**सुजान चरित्र**' की प्रस्तावना के रूप में दिया हुआ हैं—

'............अप्ने मन्कू वढ़ावे कि इस समै में अवके मनुष्यों से जैसी सूर-वीरता होनी कठन है जो इस पौथी के षोधने में वहुत श्रम हूआ है। पहले तौ श्री महाराज सुरग गामी नै अप्ने आगे आप उस्का एक एक अक्षर औसा शौधा कि उस्के आगे पोथी असल में अशुद्धता विशवास होता था किस वास्ते कि आप भाषा में वहुत समझते थे और वनाते थे कि वड़े वड़े पंडत कवीश्रुर सराहना करते थे और उस पौथी के शोधने समें उन्कू चाहना दूसरी पोथी की भी नहीं होती थी। और पीछे सुर्गवाशी होने महाराज के पंडत गोर्द्धनदास व लाला छोटेलाल और लाला वांकेलाल ने कि इस पोथी कूं लिखा है इसके शोधने में वहुत श्रम आया।.........'

यहाँ भी भाषा का रूप कुछ आगे बढ़ता दिखाई नहीं देता। वैसे यह भाषा इंशा और सदासुखलाल से लगभग ५० वर्ष बाद की भाषा है किन्तु इसमें शिथिलता और अव्यवस्था स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। राजाओं की सीधी देख रेख में प्रणयन होने पर भी राजघराने की यह पुस्तक गद्य का निखरा रूप नहीं पा सकी। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्स्य प्रदेश में गद्य का विकास उस तेजी के साथ नहीं हुआ जैसा अंग्रेजी इलाकों में हुआ। गद्य की भाषा जिस

---

[1] अलवर सम्बन्धित प्रयोग।

[2] क्रियाओं में खड़ी बोली अपना काम करती दिखाई दे रही है। ये रूप मुसलमानी प्रसंगों में ही अधिक मिलते हैं

रूप में थी उसी में चलती रही। इसके लिए न राजाओं का ध्यान था और न लेखकों का। सम्भव है उस समय राज-दरबारों में गद्य को ओर यही मनोवृत्ति रही हो। अंग्रेजों को तो ईसाई धर्म का प्रचार करना था। उन्हें क्लर्क इकट्ठे करने थे तथा लोगों की भाषा में उनके साथ घनिष्ठता स्थापित करनी थी। देशी राज्यों में इस प्रकार की कोई आवश्यकताएं न थीं। अतएव गद्य अपनी मनमानी गति से चलता रहा। राज्य की ओर से भी गद्य-विस्तार के लिए कोई विशेष प्रबंध न था क्योंकि साहित्य की दृष्टि से केवल पद्य को ही सम्मान-पूर्ण स्थान दिया जाता था। कवियों से पद्य सुनने की आशा की जाती थी और इसी आधार पर पुरस्कार-सत्कार आदि की व्यवस्था होती थी। अतः यह स्वाभाविक ही था कि गद्य की ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया। वह बोलचाल की भाषा के रूप में ही चलता रहा। जिस गति से ब्रिटिश प्रांतों में गद्य को प्रोत्साहन मिला और उसकी वृद्धि हुई वह देशी राज्यों में न हो सका।

खोज में एक अधूरी पुस्तक **'बैराग-सागर'** मिली। लेखक के नाम का पता नहीं लगता। इस पुस्तक में अनेक भक्तों की कहानियां दी गई हैं और ये भक्त प्रायः बल्लभसम्प्रदाय के हैं। अतः पुस्तक का लिखने वाला कोई वल्लभकुली होगा। सूरदासजी के संबंध में दी गई वार्ता देखिए—

'दोऊ नेत्रन करि हीन एक व्रजवासी कौ लरिका व्रज में सूरदास। सो होरी के भंडउवा बनावै ह्वै तुकिया। ताके वासतै श्री गुसाई जी सौ जाय लोगनि नै कही। तां पर श्री गुसाईजी वा लरिका कौ बुलाय वाके भड़उवा सुने हंसे श्री मुष तै कह्यौ जु लरिका तू अब भगवत जस बनाय। श्री भागवत अनुसार॥ प्रथम जनम की लीला गाय। तब वाने कही राज हू कहा जानौ। तब आग्या करी भगवत इच्छा है तू बनावौगौ। असे श्री गुसाई जी की आग्या तै भगवत लीला भ्यासी। सरस्वती जि अग्र भई। प्रथम ही प्रथम श्री सूरदासजी श्रीजी जनम लीला की बधाई बनाई। अरु श्री गुसाईजी कौ सुनाई। तब बहौत प्रसन्न भये। कंठी दुपटा भट्टा प्रसाद दयौ। अरु सबनि सौ आग्या करी जु श्री ठाकुरजी की आग्या तै हम कहत हैं। बरस पै दिन जनमाष्टमी की जनमाष्टमी श्री गोवर्द्धननाथजी के आगै प्रथम एक ही बधाई गावैगे सो अब लौ एक ही गावत है—

राग आसावरी—

ब्रिज भयौ महर कै पूत जब यह बात सुनी।
सुनि आनंद सब लोक गोकुल गुनित ग्रुनी॥
ग्रह लगन नछित्र बल सोधि कीनी वेद धुनी।
आदि।

इस वार्ता के आधार पर सूरदासजी के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है--

१. सूरदास जाति के राजमजूर थे।
२. वे जन्मान्ध थे।
३. वे पहले होरी के भंडउवा बनाते थे।
४. गुसांईजी ने सूर के बनाये भडउवा सुने और कृष्ण की लीला लिखने की प्रेरणा दी।
५. गोवर्द्धनजी के आगे गाया जाने वाला राग आसावरी प्रचलित हुआ।

जैसा पहले संकेत किया जा चुका है कि मत्स्य-प्रदेश का गद्य बहुत धीमी गति से चला। आज से कोई ६० वर्ष पहले गद्य का एक नमूना **'अलवर राज्य का इतिहास'** नामक हस्तलिखित पुस्तक से नीचे दिया जा रहा है—

'जब से रावराजा प्रतापस्यंघ जन्म पायौ तब ते राजगढ़ मैं आनंद अधिकायौ संवत् सत्रासै पूरनं समै सवाई जयसिंह सुरगवासी भये अरु इनके पीछे महाराज इसुरी-स्यंघजी बरजोर जैंपुर गद्दी आज गये······महाराज इसुरीस्यंघजी समस्त कछवाह सुभट कूं जयपुर बुलवाये तामै कितनेक अमराव तो अंतरगत माधोस्यंघजी सू मिले रहे जैसी हवा देषी तैस ही उपाहने दये अरु नरूकान ने ईसरीस्यंघजी की ही अग्यानुसार स्वाम धर्म धार जुद्ध में जुटे··· ······'

यह हिन्दी गद्य का नमूना हैं, अब इसी पुस्तक की खड़ीबोली के उर्दू-मिश्रित पद्य का नमूना देखिए--

दिया उसको ईश्वर ने खुद अख्तियार।
किये मोजे ढाई से ढाई हजार॥

कहा कौन इरशाद आये यहां। कहां के हैं सरदार जाते कहां॥
इन्होंने कहा राव परताप नाम। कि है राजगढ़ माचहेड़ी मुंकाम॥
दिया भेजके हलदिया छाजूराम। किया जाट से जाके इसने सलाम॥

हमारे अनुसंधान में कुछ हुक्मनामे तथा रुक्के भी मिले। ये फारसी और नागरी लिपियों में हैं। इनमें से केवल कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं। पहला हुक्मनामा राव प्रतापसिंहजी को मुगल सम्राट द्वारा 'राजाबहादुर' का पद दिए जाने के संबंध में है। राव प्रतापसिंह मुगलों की ओर से भरतपुर के जाटों से लड़े थे। यह सब काम खुशालीराम हल्दिया के परामर्श से किया गया था। अपनी सेना के साथ प्रतापसिंह आगरा पहुंचे, और वहां मुगलों की सहायता की। इस युद्ध में जाटों की पराजय हुई और बादशाह ने प्रतापसिंहजी को 'राजाबहादुर' की पदवी दी।

'..............प्रतापसिंह वल्द मोहब्बतसिंह मनसबे पंच हजारी जात व पंच हजारी सवार व खिताबे राजाबहादुर व अताये आलम व नक्कारा सर अफराज शुद वाके ५ दहम शहर.........'

इस प्रकार प्रतापसिंहजी 'राजाबहादुर' बने।

पहले पत्र भी पद्य में लिखे जाते थे। गद्य-पद्य मय पत्र का एक नमूना देखें।[1]

गो ....
स्वा ....(इधर का अंश फट गया है। किन्तु 'गोस्वामी' स्पष्ट लिखा मिलता है।)
मी ....
श्री पद अंबुज के सदा, रहत तुहारे ध्यान।
करत रहत रजनी दिवस, रूप सुधारस पान॥
ध जा प्रेम की गोपिका, सुनीयत हीं निज कान।
उन हूं ने कछु सरस तुम, प्रगट लखे नेंनान॥
र सिकन के सिरताज तुम, करुणासिन्ध दयालु।
तुम्हरी कृपा कटाक्ष तें, सब कोऊ होत निहाल॥
जी वन धन नेहीन के, तुमही कृपानिधान।
तुमरी महिमा कौ कोऊ, कहि विधि करैं बषान॥
जो ....
(फट गया है।)
ग ....

प्रथम तुकनि के प्रथम अंक, सब जोर निहारौ।
दसदनि में लिष्यौ सु जहि, विध नाम तिहारौ॥

यह 'गोस्वामी श्रीधरजी जोग' यह पत्र लिखा गया है। इस १८१७ में लिखे गए पत्र के गद्य भाग का नमूना इस प्रकार है—

'अब आपकी कृपा तें जीवासिर ह्वै गयो हूं। श्री जी करेगें तो जलदी वा कार्ज तें छूट जावोगो आप कृपा राषत रहौगे अरु पत्र लिषत रहौगे। मेरी बौहत बौहत जै श्रीकृष्ण की कहै—

दीप दिवाकर वसु अरु ससी, सुक्ल पच्छ बुद्धवार।
चैत्रमास सुभ नंद तिथ, संवत मिती विचार॥[2]

---

[1] यह पत्र गोस्वामी श्रीधरानंदजी को लिखा गया था। श्रीधरानंदजी ने 'साहित्य-सार-चिन्तामणि' आदि ग्रन्थ लिखे हैं। महाराज रणजीतसिंह ने इनको 'कवीन्द्र' की उपाधि दी थी। यह पत्र १७०-७५ वर्ष पुराना है।

[2] तिथि पद्य में है संवत् १८७१।

इस पत्र के नीचे पुन: लिखा है—

'सब को जै श्री कृष्ण बोहत बोहत लिखी है।
साष्टांग दंडवद्वंचन।

श्री गिर्धरजी महाराज यहां राजापेरा तें आये हे सो काल ही फेर राजापेरा कू गये और बोहत प्रसन्न है।'

गुसाई श्रीरामजी का पत्र दीवान जवाहरलाल के नाम ('रणजीतकाल')[1]

'श्री हरदेवजी सहाय

'श्री गुसाई श्रीरामजी कौ आसीरवात श्री दीवान जवाहरलालजी कौं आपकौ ब्रह्मनि धरमग्य जानि कै हम तै यह अहैवाल आपकौ लिष्यौ सो तुम याह वाचौगे आगे हम जैपुर कू जाते है तो अ.पनै पूवसी ठाकुर और हीरालाल आमिल और च्यारि भले आदमी भेजि धरम करम दै आनै हमकौ बुलाय लीनो सु बुलाए की सी राषो सो हमारो दो रूपैया रोजीना धरती दैन कैहै कै आपनै हमकौ बुलायो सो आप धरमातमा हो सो करज काढ़ि काढ़ि अब ताईं भोग लगायो सो……

गाड़ी चारि छकरा दो भेजि दीजै जहा हम जाय तहा करि आवै।[2]

………हमारी चाकरी तौ कथा भजन है जौ कोऊ सुने तौ।

प्राचीन सुक्का, रुक्का परवाने देखने पर कुछ बातें विशेष रूप से पाई जाती हैं-

१. सरकारी अर्द्ध-सरकारी पत्रों में विक्रमी संवत् के साथ हिजरी संवत् भी पाया जाता है। ३०० वर्ष पुराने कागजों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है।

२. देवता, ठाकुरजी का नाम केवल ऊपर लिखा जाता है; यदि पत्र के बीच में देवता का नाम कहीं आ जाय तो'………'इस प्रकार स्थान छोड़ देते हैं और ऊपर देवता का नाम लिखते हैं।

---

[1] श्री हरिदेवजी, भरतपुर, के वर्तमान पुजारी ने मुझे बहुत से सुक्के, पत्र, कविता आदि दिखाए जो १५०–२०० वर्ष पुराने हैं। उनमें उस समय के गद्य और पद्य के नमूने तथा कुछ ऐतिहासिक सामग्री भी मिलती है। ये पुजारी राजाओं के गुरु रहे हैं, किस प्रकार गुरु-परिवर्तन हुआ इस बात के भी प्रमाण मिले।

[2] जैपुर जाते हुए गुसाईजी को भरतपुर ठहरा लिया गया। फिर 'भोग-राग' में कमी होने से उसकी शिकायत से भरा यह व्यंग्य युक्त पत्र है। यह विरक्ति इस कारण हुई कि गुसाइयों ने राजा के साथ युद्ध में जाने से मना कर दिया। वैरागियों ने साथ दिया इसका परिणाम यह हुआ कि भरतपुर के राजा वैरागियों के चेले हो गये।

३. इन रुक्कों में से बहुत से हिन्दी-फारसी दोनों में हैं और उनमें बादशाही मोहर लगी हुई है। हस्ताक्षर की प्रणाली नहीं देखी जाती, मोहर ही लगाई जाती थी। जैपुर के परवानों में फारसी-हिन्दी दोनों भाषाएं हैं।

४. इतना समय होने पर भी अक्षर बहुत ही स्पष्ट हैं। घसीट का नाम नहीं। ऐसा मालूम होता हैं कि उस समय पत्र बहुत ही सावधानी के के साथ लिखे जाते थे। पत्रों की भाषा ब्रज है, कहीं-कहीं खड़ीबोली के रूप भी मिल जाते हैं।

५. पत्रों में सब प्रकार की सामग्री मिलती है--सरकारी, अर्द्ध-सरकारी, व्यक्तिगत। पत्रों में पद्य का प्रयोग भी होता था। कुछ राजा लोग भी अपने गुरु को पत्र लिखते थे। भरतपुर के महाराज ने भी अपने गुरु को युद्धस्थल से एक पत्र लिखा था।[1]

---

[1] महाराज रणजीतसिंह द्वारा अपने गुरु श्रीधरानन्दजी को लिखे पत्र का कुछ अंश-

कीनो परमारथ पै स्वारथहू बन्यो नाहिं,
गयो सब अकारथ सो कैसे के वषानो जू।
लैन कहूयो दिल्ली अरु आगरो दोऊन पै,
दई थून उलटी अैसो भयो यह वषानो जू।
निसदिन पछितांऊ वा घरी को न पाऊं,
हरिदेव सों रषाऊं अब अति ही खिसानो जू।
दिसानें जू पेल्यो सो तो भयो हूं अकेलो अब,
मेलो कब होइगो सु नाही यह लषानो जू।

यह पत्र भी उक्त गुसाई जी के पत्र-संग्रह से मिला; क्योंकि बहुत दिनों तक वह राज का गुरुद्वारा रहा।

गुसाई जी का पत्र-संग्रह बड़ा महत्त्वपूर्ण है जिसमें उस समय की धार्मिक तथा ऐतिहासिक अनेक बातों का पता लगता है। बड़े यत्न के साथ गुसाइयों के ये वंशज इन पत्रों को अपने पास सुरक्षित रखते रहे हैं तथा समय पर अपने अधिकारों की रक्षा हेतु इनका उपयोग भी किया है।

अनुवाद - ग्रन्थ

अनुवाद के क्षेत्र में मत्स्य-प्रदेश काफी आगे रहा। भरतपुर के दो प्रसिद्ध कवि सोमनाथ तथा कलानिधि के नाम इस विषय में अग्रगण्य हैं। सोमनाथजी मथुरा से तथा कलानिधिजी अन्य राजाओं के दरबारों से आकर वैर के राजा प्रतापसिंहजी के आश्रय में रहने लगे। अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त इन दोनों कवि-श्रेष्ठों ने अनुवाद का काम भी बड़ी लगन के साथ किया और दोनों ने मिल कर संपूर्ण वाल्मीकीय रामायण का अनुवाद कर डाला। सोमनाथ ने अयोध्या, आरण्य, किंष्किधा और सुन्दर काण्ड को लिया और कलानिधि ने बाल, युद्ध तथा उत्तर काण्ड को संभाला और इस प्रकार संपूर्ण रामायण को हिन्दी पद्य में परिवर्तित कर दिया। इनके द्वारा किए गए अनुवादों का पूर्ण संग्रह तो मुझे प्राप्त हो नहीं सका फिर भी जो सामग्री मिली है उनके आधार पर कहा जा सकता है कि इतना बड़ा काम करने पर भी काव्य-छटा का उत्कर्ष निभाया गया है। इसके अतिरिक्त महाभारत के अनेक पर्वों के अनुवाद भी मिले। कर्ण पर्व की भाषा गोवर्द्धन नाम के एक कवि ने की जिसमें पद्य के अतिरिक्त गद्य भी मिलता है। यह बहुत पुराना अनुवाद है। रसानंद द्वारा की गई अश्वमेध पर्व की 'भाषा' भी मिली है।[1] यह अनुवाद संवत् १८७५ वि० के आस पास का है।

काव्य तथा अनुवाद दोनों की दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि मत्स्य में किया गया यह कार्य निम्नकोटि का नहीं है। वैसे प्रायः छायानुवाद ही किया गया है क्योंकि उस समय की प्रचलित प्रणाली कुछ इसी प्रकार की थी। परन्तु इस अनुवाद में काव्य के गुण भी पाए जाते हैं।

भागवत का अनुवाद करना उस समय एक प्रचलित बात थी, विशेष रूप से इस ग्रंथ के दशम स्कंध का प्रचार था। इस दशम स्कंध में ही भगवान कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। इस कार्य के करने में भी माथुर कवि सोमनाथ आगे रहे। इनके द्वारा किया गया 'दशम स्कंध भाषा उत्तरार्द्ध' ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। उपनिषदों के भी अनुवाद हुए। कलानिधि ने तैत्तिरीय, मांडूक्य, केन और प्रश्नोपनिषद् के अच्छे अनुवाद किए और व्यवस्था करते समय अपनी बुद्धिमत्ता का सुन्दर परिचय दिया। कलानिधि संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान् थे और

---

१ 'संग्राम-रत्नाकर', 'संग्राम-कलाधर' नाम के दो ग्रंथ बताये जाते हैं। हो सकता है ये दोनों ग्रंथ एक ही हों और इनमें रसानंद द्वारा लिखित संपूर्ण महाभारत का पद्यानुवाद हो।

संभवत: वैर में रहते समय उनका ध्यान संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद की ओर अधिक गया। कहा जाता है इन्होंने 'दुर्गासप्तशती' का भी अनुवाद किया था। उन्होंने 'रामगीतम्' के नाम से संस्कृत में एक मौलिक गीतिकाव्य भी लिखा था।[1] गीता का अनुवाद भी हुआ। इस प्रकार मत्स्य प्रदेश में सभी धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद हुए—

१. रामायण,
२. महाभारत,
३. भागवत,
४. गीता,
५. उपनिषद्, आदि

इनके अतिरिक्त संस्कृत के तथा नीति साहित्य के ग्रंथों का अनुवाद करने की ओर भी प्रवृत्ति रही। हितोपदेश के कई अनुवाद मिले। 'सिंहासन बत्तीसी' का हिन्दी रूपान्तर अनुवाद तथा छाया दोनों में पाया गया। संस्कृत पुस्तकों के उर्दू अनुवाद भी किए गए और सर्व साधारण के हेतु उन्हें नागरी में लिपिबद्ध किया गया।

संस्कृत के अतिरिक्त फारसी ग्रन्थों का भी अनुवाद होता रहा। इनमें कथा-साहित्य का तो आधिक्य रहा ही जैसे 'अनवार सुहेली', साथ ही राजनीति के ग्रन्थ भी हिन्दी में अनूदित किए गए। 'आइने अकबरी' का एक छोटा छायानुवाद 'अकलनामा' के अंतर्गत प्राप्त हुआ है।

मत्स्य-प्रदेश में भारत की अन्य भाषाओं में लिखित पुस्तकों के अनुवाद नहीं मिलते। उन दिनों इस प्रकार की पुस्तकों के अनुवाद करने की प्रथा भी

---

[1] रामगीतम् का एक श्लोक—

खेलन्मंजुल-खंजरीटनयना पूर्णेन्दु-बिंबानना।
तारामंडलमंडनातिविशदज्योत्स्नादुकूलावृता ॥
वक्षो जायित-चक्रवाकमिथुना चंचन्मृणालीभुजा।
फुल्लत्कोकनदौघ पाणिचरणा भाते शरत्कामिनी ॥

शरत्कालीन वर्णन के साथ कामिनी का रूप-लावण्य। शरद ऋतु के सदृश यह कामिनी किसे अच्छी न लगेगी। यह ग्रंथ गीत-गोविन्द की पद्धति पर है। शृंगार के सभी गुणों से परिपूर्ण यह ग्रंथ वर्तमानकाल के कवि 'हरिऔधजी' का पथ-प्रदर्शक सा प्रतीत होता है। ऊपर दिए गए छंद से मिलाते हुए 'हरिऔधजी' की यह पंक्ति देखिए जो उसी छंद में है—

शार्दूलवि०—'रूपोद्यानप्रफुल्लप्रायकलिका राकेन्दुबिंबानना' आदि।

नहीं थी। संस्कृत तथा फारसी ग्रन्थों के ही अनुवाद हुआ करते थे। इसी के लिए विद्वान पंडित दरबारों में रखे जाते थे। मत्स्य-प्रदेश का हस्तलिखित साहित्य देखने पर पता लगता है कि दरबारों में १. संस्कृत, हिन्दी तथा फारसी के विद्वान, २. रीति तथा काव्यकार, ३. लिपिकार, ४. नीतिकार, ५. कर्मकाण्ड के विद्वान पंडितों का सम्माननीय स्थान था। राजाओं के यहां रीतिग्रंथों का निर्माण, धार्मिक पुस्तकों का हिन्दी-रूपान्तर आदि साहित्यिक कार्य बराबर चलते रहते थे। राजा यद्यपि स्वयं विद्वान नहीं होते थे, किन्तु गुणीजनों का सत्कार करते थे और अपना आश्रय प्रदान कर उन्हें अपने-अपने कामों में लगाए रखते थे। उस समय पुस्तकों को लिपिबद्ध करना भी एक कला थी। जीवाराम चौबे, बालगोविंद गुसांई, देवा बागबान, गोवर्द्धन आदि कई ऐसे लिपिकारों के नाम मिले हैं जो राजदरबारों में नियमित रूप से ग्रन्थों को लिपिबद्ध करने का काम किया करते थे। पुस्तकों को लिखने में पुष्ट पत्र पर चमकदार काली स्याही का प्रयोग होता था। शीर्षक तथा हाशिये के लिए और रंगों की स्याही भी काम में आती थी। कुछ पुस्तकों[1] में चित्रों का होना इस बात को बताता है कि यहां के दरबारों में चित्रकला विशारदों को भी आश्रय मिलता था। अलवर के म्यूजियम में एक उत्कृष्ट कोटि का चित्र-संग्रह है जिनमें कुछ चित्र राज्य के कर्मचारियों द्वारा निर्मित किए गए हैं। इन संग्रहों की अंग्रेज विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।[2] संक्षेप में कहा जा सकता है कि अन्य भाषाओं के ग्रन्थों को हिन्दी का कलात्मक रूप देने में इन राज्यों द्वारा अच्छी व्यवस्था की गई थी।

कलानिधि ने वालमीकि-रामायण के बाल, युद्ध और उत्तर काण्डों का अनुवाद किया है। इन्होंने भी अनुवाद करने में उसी प्रचलित परम्परा का अनुकरण किया जो हमें अखैराम तथा सोमनाथ में मिलती है। सूदन के काव्य में भी हमें वही प्रवृत्ति मिलती है। इन कवियों द्वारा अपनी रचनाओं के प्रत्येक अध्याय या सर्ग के उपरान्त अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में एक छंद की पुनरावृत्ति की गई है। इस छंद के प्रथम तीन चरण तो सभी जगह एक समान होते हैं किन्तु चतुर्थ चरण में वर्ण्य-वस्तु के अनुसार परिवर्तन हो जाता है जिससे कथानक का संकेत बराबर मिलता रहता है। युद्ध काण्ड के अंतर्गत कलानिधि

---

[1] जैसे चत्रभुजदास' कृत 'मधुमालती'। हमें इस पुस्तक की दो प्रतियां मिलीं जिनमें से एक सचित्र है।

[2] टी० एच० हेन्डले—अलवर एन्ड इट्स आर्ट।

का एक छंद देखिए—

व्रज चक्रवर्ति कुमार गुनगन गहर सागर गाजई।
श्री रामचरणसरोज अलि परतापसिंह विराजई।।
तेहि हेत रामायण मनोहर कवि कलानिधि ने रच्यौ।
तहं युद्ध काण्ड व्यासि में पुनि इन्द्रजित गर्जन मच्यौ।।

इस छंद को मूल श्लोक से मिलाइये—

अथेन्द्रजिद्राक्षसभूतये तु जुहाव हव्यं विधिना विधान वित्।
दृष्ट्वा व्यतिष्ठन्त च राक्षसास्ते महासमूहेषु नयानयज्ञाः।।

(सर्ग ८२ — श्लोक २८ अंतिम श्लोक)

इस बयासीवें अध्याय में बताया गया है कि मेघनाद ने राक्षसों की शक्ति को बढ़ाने के लिए पुनः यज्ञ किया।

अपने आश्रयदाता कुमार प्रतापसिंहजी के हेतु कवि कलानिधि ने रामायण के जिन काण्डों का भाषा में प्रकाश किया उनमें स्वयं कवि की काव्य-प्रतिभा भी गौण नहीं है।

संवत् १८०५ का लिपिबद्ध **'भाषा कर्ण-पर्व'** अलवर की खोज में मिला। इसके प्रथम दोहे से पता लगता है कि इस पर्व की भाषा करने वाला कोई गोवर्द्धन नाम का कवि था—

"श्री गणेशाय नमः अथ भाषा कर्णपर्व लिष्यते—

दोहा— गणपति गवरि गिरीस गुर, सुमर सारदे माय।
कर्ण-पर्व भाषा करत, गोवर्द्धन कवि गाय।।"

इस पुस्तक में आरम्भ तथा अंत में कुछ टिप्पणियां भी मिलती हैं, जो संभवतः किन्हीं अन्य व्यक्तियों द्वारा दी गई हैं। पुस्तक अधूरी ही रह जाती है और उसके अंत में एक नोट लिखा है जिससे संवत् आदि का पता लगता है—

'कर्न पर्व इतनौ ही छै। सं० १८०५ असाढ़ सुदि ४ लिषी पोंथी हरिराम—कान्हजी पवास दीन्ही।'

इस नोट के आधार पर पता लगता है कि यह अनुवाद संवत् १८०५ के पहले ही हुआ होगा। लिपिकार को पूरा अनुवाद नहीं मिल सका, पता नहीं अनुवादक ने इतना ही अनुवाद किया अथवा अनुवाद का कुछ अंश लुप्त हो गया। लिपिकार को 'इतनौ ही छै' कह कर संतोष करना पड़ा। यह हस्त-लिखित ग्रन्थ बहुत ही अस्पष्ट लिपि में है और अक्षरों की बनावट भी बहुत बेढंगी है। कर्ण को किस प्रकार सेनापति के पद पर नियुक्त किया गया इस

प्रसंग को देखिए—

करन नृपति गुर सुत प्रबल अस्त्र सकल गुन ग्राम।
जुध अयुध करैं सुभट सिकल अघट गनि काम।।
दिय अभिषेष जु करन कौ कियब सेन सिरदार।
अन धन कंचन मनि गुनिक दांन मान जुत भार।।

इससे संबंधित श्लोक देखिए—

ततोऽभिषिक्ते राजेन्द्र निष्कैर्गोभिर्धनेन च।
वाचयामास विप्राग्र्यान् राधेयः परवीरहा।।

(कर्णाभिषेके दशमोऽध्यायः। ४८)

इस पुस्तक में दोहा तथा छप्पय छंद की ही प्रधानता है। यद्यपि यह पुस्तक अधूरी है किन्तु कर्णपर्व का बहुत सा अंश आ गया है। इस प्रति की पत्र संख्या ९३ है और बहुत छोटे अक्षरों में पास-पास लिखा हुआ है। स्थान-स्थान पर इस प्रकार का गद्य मिलता है—'संजयोवाच', 'धृतराष्ट्रोवाच' के स्थान पर गद्य में 'संजय कहतु है', 'धृतराष्ट्र पुछतु है' आदि लिखा है। युद्ध-वर्णन में कवि की ओजमयी वाणी की छटा देखिए जो उस समय की वीर-काव्य-प्रणाली के अनुरूप है—

प्रातः जुटं दिष्षिनी वोट पथ्थं समथ्थैं। छुटैं वान वानं अमानं सुहथ्थैं।।
अयं जुध जोधा कीयं ऊडू भारी। सबै भेद भेदे अयुध सम संभारी।।[1]

कहा जाता है कि **'संग्राम रत्नाकर'** के नाम से भरतपुर के प्रसिद्ध कवि रसानंद ने महाभारत का अनुवाद किया। यह पूरा अनुवाद तो नहीं मिल सका परन्तु मेरी खोज में 'जैमन अश्वमेध' का अनुवाद अवश्य मिला। अनुवाद में दी गई पंक्तियों से विदित होता है कि इस कार्य को करने की आज्ञा राजा द्वारा दी गई थी—

लहि बृजेंद्र अज्ञा हितकारी। रसआनद निज चित्त विचारी।।
जैमन अस्वमेध की भाषा। रचवे हेत वढ़ी अभिलाषा।।

ग्रन्थ आरम्भ करने का समय भी दिया हुआ है—

ठारैं सैं पच्यानवैं, भजि हर-चरन निदंभ।
कातिक शुक्ला सप्तमी, कियौ ग्रंथ आरंभ।।

---

[1] सूदन के 'सुजान-चरित्र' से मिलायें।

इस पर्व के अंत में दी गई पंक्तियों से यह सिद्ध होता है कि इस कवि ने अश्वमेध पर्व से पहले के अन्य सभी पर्वों का अनुवाद किया था। कवि ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

'इमि पर्व चतुर्दस में सुभाइ। राजेंद्र दिए तुमको सुनाइ॥

इस प्रकार हे राजेन्द्र! मैंने आपको १४ पर्व सुना दिए हैं।

इसके पश्चात् कवि कहता है—

"अब वासास्रम पर्व[1] जु बिसेस। कहि हों सुनि चित दे कुरु नरेस॥
कुन्ती समेत गजपुर मझार।[2] है भरतर्षभ पार्थंव उदार॥
एकादस वर्ष प्रमान थित। वहं बसे सु सुख संपति सहित॥
यह सकल चरित उत्तम महान। बलवंत भूप आज्ञा प्रमान॥
सुरवानी के अनुमान वेस।[3] भाषा किय रस आनंद विसेस॥"

इससे भी यही पता लगता है कि बलवंत भूप की आज्ञा को मान कर कवि रसानंद ने सस्कृत भाषा में लिखे चरित्र और कथाओं को भाषा के माध्यम द्वारा सुनाया।

इस पुस्तक के समाप्त होने का समय १८९९ वि० है। इससे पता लगता है कि इस पुस्तक का कार्य चार वर्ष में पूरा हुआ।

संवत् ठारै पै नवै नो गुनों (१८९९)। कार्तिक की कृष्णा सु पंचमी तिथि गुनों।
ससि वासर लषि उत्तम ससि की प्राप्ति है। कृष्ण कृपा ते भयो सु ग्रंथ समाप्त है॥

हमें इस ग्रन्थरत्न की संवत् १९०३ की लिखी एक प्रति प्राप्त हुई थी।

---

[1] आश्रम वासिक पर्व नं० १५।

[2] हस्तिनापुर में। 'घननाद', 'रिपुसूदन' 'दशकंधर' वाली तुलसी-प्रणाली 'हस्तिनापुर' में भी लक्षित हो रही है।

[3] देववाणी—संस्कृत—में लिखे अनुसार। कवि की इस उक्ति से विदित होता है कि यह एक अनूदित ग्रंथ है। कवि ने इस ग्रंथ को 'संग्राम रत्नाकर' कहा है जो 'महाभारत' के लिए बहुत उपयुक्त है। कवि ने अपने अनुवाद में मूल पुस्तक के 'अध्याय' को 'तरंग' कहा है। रत्नाकर में तरंगों का होना स्वाभाविक है।

यह प्रति राजा के लिए लिखी गई थी, और इसके लिपिकार थे चौबे जीवाराम।

"चौबे जीवाराम ने, पुस्तक लिष्यौ सुधारि।
भूल चूक जो होइ तौ, बांचौ नृपति विचारि।।

श्री जी सदां सहाइ ।। संवत १९०३। मिती भाद्रपद वदि त्रयोदसी।। १३ ।। लिषी भरतपुर गढ़ किले मधि ।। १ ।।

पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार से है—

श्री······न······हा ······णा······प ······न······अ······सं······म······त्ना······र ······ष्य······दोहा[1]

इस पुस्तक में इस प्रकार अक्षरों का स्थान छोड़ कर लिखने की प्रवृत्ति स्थान-स्थान पर पाई जाती है। कई अन्य ग्रन्थों में भी इसी प्रवृत्ति का अनुगमन किया गया है। यद्यपि यह पुस्तक अनुवाद रूप में प्रस्तुत की गई है किन्तु काव्य की दृष्टि से भी यह रसानंद के स्वरूपानुसार ही है।

गणेश-वंदना देखिए—

"बिघनहरन असरनसरन, करत सुरासर सेव।
मोदकरन करुनाभरन, जय जय गणपति देव।।

छप्पै—सोभित मुकट सिषंड गंड मंडित अलकावलि।
करत चंददुति मंद कुंदनिंदक दसनावलि।।
कटि सुदेस पट पीत करन कुंडल छबि छाजै।
'रस आनंद' दुति देषि कोटि मन्मथ छबि लाजै।।

अतुलित प्रताप विक्रम विदित, सकत न स्त्रुति और सुमृति भनि।
व्रज - मंडन पूरन अंस जय, अवतारी अवतार मनि।।

गणपतिं, शिव, हनुमान आदि की प्रार्थना के उपरान्त 'राजवंस' का वर्णन है। इस पुस्तक में ६७ तरंगें हैं और प्रत्येक तरंग के अन्त में भरतपुर की प्रचलित प्रणाली के अनुसार एक ही छंद की आवृत्ति है, जिसका चौथा चरण विषय के अनुसार बदल जाता है। इस ग्रन्थ में निम्न तीन चरणों की आवृत्ति हुई है—

वृज अवनि कर भरतार सुजस भंडार गुन आगार है।
जदवंसमनि अवतार श्री बलवंत भूप उदार है।।
तिहि हेत रस आनंद यह संग्राम-रत्नाकर रच्यौ।

[1] बीच के अक्षर नहीं हैं जो इस क्रम से होने चाहिए—
म म ग धि तये मः थ ग्रा र क लि ते।
इन सब को मिला कर यह बनता है—
'श्री म न म हा ग णा धि प त ये नमः अ थ सं ग्रा म र त्ना कर लि ष्य ते।

और फिर 'तरंग' के अनुसार चौथे चरण में इस प्रकार कहते हैं—

प्रथम तरंग—तह ग्रंथ के आरंभ माहि तरंग प्रथमहि कौ सच्यौ ।
द्वितीय तरंग—तहं जग्य के प्रारम्भ माहि तरंग दूजे को सच्यो ।
षष्टम तरंग—किय पराजय नृप यौवनास्व तरंग षष्टम को सच्यौ ।
नवम तरंग—व्यासोक्त धर्म नरेस प्रति सु तरंग नवमहि कौ सच्यौ ।
अंतिम तरंग—वर्नन स्रवन माहात्म्य कौ सु तरंग सतसठि को सच्यौ ।[1]

---

[1] अश्वमेध पर्व में दिग्विजय के हेतु बहुत से संग्राम हुए थे । महाराज बलदेवसिंहजी ने भी अनेक युद्ध किए और विजय प्राप्त की । कवि ने दोनों समय के युद्धों में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है । कवि लिखता है—

समर घोर किय लिक्क संग, श्री बलदेव सुजान ।
ताकौ कछुक उदाहरन, कीजत मति अनुमान ।।
श्री वृजेंद्र बलदेव इमि, जीति लिक्क संग्राम ।
लह्यौ सुजस रूपी जगत, जैत पत्र अभिराम ।।
विक्रम त्याह प्रताप को, सुनियत सुजस दिगंत ।
तिनके पुत्र प्रसिद्ध जग, प्रगटे श्री बलवंत ।।
तिनके माथें सोंपि सब, राजकाज को भार ।
सेवन किय गिरिराज कौ, निज कुल-धर्म विचार ।।

पुस्तक में बलदेवसिंह का रणकौशल भी दिखाया गया है—

१. पग्ग गहि कर में उमगि बलदेवसिंह,
अैसे कोपि लिक्कदल उप्पर निकारे कर ।
भन 'रसआनंद' बितुंडन के षंडन के,
सुंडन मुसंडन के पारे भुव भारे भर ।।
ठट्ट जुरि कोट पै इकट्ठे जो सुभट्ट चढ़े,
कट्टि कट्टि जट्टन ने दट्टि के उतारतर ।
वर कों वरंगना टटोरति न रुंडन औ,
हार हेत मुंडनि बटोरत न हारे हर ।।

२. अैसो कीनों समर प्रतापी बलदेवसिंह,
जाकौ लषि छाती धधकाती अमरन की ।
भनि 'रस आनंद' जमात भूत जुग्गिन के,
नचत चरन लागी कीच रुधिरन की ।।
प्रमुदित वरनि बरंगना वरन लागी,
कांति उभरन लागी ज्योति बिवरन की ।
काटि काटि वटका मग खी करन लागी,
परवी परन लागी चरबी-चरन की ।।

अश्वमेध पर्व की कथा दूसरी तरंग से प्रारम्भ होती है—

जन्मेजय नृप सुनि चुक्यौ, निजकुल कथा अनूप।
पारथ कृष्ण सहाय तें, जात्यौ भारथ भूप।।
पुन्यश्लोकी धर्म सुत, तासु चरित्र पवित्र।
सुनि कुरु नृप मुनि सों करचौ, और प्रश्न विचित्र।।

प्रार्थना के श्लोकों का अनुवाद भी अच्छा हुआ है—

तुम नर नारायन रूप स्वच्छ, मैं लषे भाग्य केवल प्रतच्छ।
हे कमलनैंन हे जग अधार, है तुम कौं मेरौ नमस्कार।।

अन्त में फल इस प्रकार दिया हुआ है—

यह अस्वमेध उत्तम जु पर्व, तोते में बर्नन कीन सर्व।
याकौ सु स्रवन फल है सनाय, मैं वरन्यौ सुनु तू सत्य भाइ।।
गोदान सहस कौ फल जु आहि, पर्वहि जु सुनें पावहि उमाहि।।

सुनिवेते अष्टादस पुरान। जा फल कों पावत है प्रमान।
श्रद्धा युत या पर्वहि सुनंत। ताही फल को पावत तुरंत।।

गीता के कई अनुवाद मिले। इन अनुवादों में संस्कृत के श्लोकों का क्रम-बद्ध अनुवाद करने की चेष्टा की गई है। प्रथम अध्याय के दो तीन श्लोक देखिए—[1]

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में, मिले युद्ध के साज।
संजय मो सुत पांडवनि, कीने कैसे काज।।

मिलाइए—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।। १

पांडव सैंना बहु लषै, दुर्योधन ढिग जाइ।
निजु आचार्य द्रोंन सों बोले ऐसे भाइ।।

मिलाइए—

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत्।।

पांडव सेना अति बड़ी, आचारज तू देषि।
धष्टदुम्न तुव शिष्य नै, व्यूह रच्यौ जु विसेषि।।

---

[1] यह अनुवाद अधूरा ही मिला। परन्तु अनुवाद की दृष्टि से बहुत उपयुक्त प्रतीत हुआ, गीता के अनुवादकों का पता नहीं लग सका, किन्तु भाषा, लिपि आदि को देखते हुए प्रतीत हुआ कि ये अनुवाद यहीं किये गये।

मिलाइए—

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता।।

इस अनुवाद में पंक्ति का पंक्ति में अनुवाद किया गया है, किन्तु पद्यात्मक अनुवाद होने के कारण कुछ शब्दों का अनुवाद छूट भी गया है और साथ ही कुछ छोटे मोटे शब्द बढ़ भी गए हैं। वैसे अनुवाद काफ़ी अच्छा और मंजा हुआ है। भागवत के भी कई अनुवाद मिले। ये अनुवाद अधिकतर भजन करने के बस्तों में पाए गए। मेरे पूज्य पिताजी के पूजा वाले बस्ते में भागवत और गोता भाषा टीका की दो हस्तलिखित प्रतियां अब तक सुरक्षित हैं किन्तु अनुवाद-कर्ता तथा अनुवाद करने के समय का कुछ पता नहीं लगता, इसीलिए ऐसे अनुवादों को मत्स्य-प्रदेश के साहित्य में सम्मिलित करने में संकोच होता है।

कलानिधिजी के सहयोगी कवि सोमनाथजी ने 'भागवत दशमस्कंध' के उत्तरार्द्ध का अनुवाद किया।[1] उदाहरण देखें—

पंचासै अध्याइ में, जरासंध के त्रास।
दुर्ग रचायौ सिंधु में, श्री गोविंद प्रकास।।
तहां आपने नरनि को, राषि कुटुंब सहित्त।
मार कपट जुत दैत्य को, करि के कपट-चरित्र।।
परम सुघर श्रीकृष्ण ने, धरमरीति कों साजि।
जरासिंधु को जीत लिय, पुनि विनु जतनें गाजि।।

इस अनुवाद के कुछ अंश मूल सहित दिए जा रहे हैं—

"श्री शुकोवाच—

अनुवाद	मूल
अस्ति प्राप्त इमि नामनि वारी।	अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य
नृपति कंस की द्वै वरनारी।।	महिष्यौ भरतर्षभ।
कंस कंत के मरे दुष्यानी।	मृते भर्तरि दुःखार्ते
गई पिता के गृह अकुलानि।।	ईयतुः स्म पितुर्गृहान्।

---

[1] कवि ने इस पुस्तक का नाम 'व्रजेंद्र विनोद' रखा था। देखिए—

'इति श्रीमन्महाराजाधिराज व्रजेंद्र श्री सुजानस्यंघ हेतवे माथुर कवि सोमनाथ विरचिते भागवत दशमस्कंध भाषायां 'व्रजेंद्र-विनोद' द्वारका दुर्ग निवेशनं नाम पंचाशत्तमोध्याय।। ५०।।

यह प्रति संवत् १८३७ की लिखी हुई है। पुस्तक के अन्त में लिखा है—
'श्री मन्नमहाराजधिराजा व्रजेंद्र रणजीतसिंह पठनार्थं लिपिकृतं काश्मीरी पंडित भास्करेण। संवत् १८३७ ज्येष्ठ शुदि दस सोमवासरे।'

मगध राजधानी कौ नाइक ।	पित्रे मगधराजाय
जरासंध हो पितु सब लाइक ॥	जरासंधाय दुःखिते ।
तासों सिगरी कही कहानी ।	वेदायांचक्रतुः सर्वमात्म-
कंत मरन की सोक समांनी ॥	वैधव्य कारणम् ॥
सो सुनि बात दुष्प्रद भारी ।	स तदप्रियमाकर्ण्य
शोक अमर्ष भर्‌यौ पन धारी ॥	शोकामर्षयुतो नृपः ।
जादव बिनु धरनी कौ करनौ ।	अयादवीं महीं कर्तुं
उद्यम करतु भयौ सुष हरनौ ॥	चक्रे परममुद्यमम् ॥

इसी प्रकार मूल से मिलता हुआ अनुवाद चलता है । अनुवाद में काव्य-छटा और शब्द-सौंदर्य बराबर मिलता है । हाथियों का वर्णन देखिये—

सजे पुंज दंतीनि के अंग भारे । उतंगे जलद्नि के रंग कारे ॥
श्रुंडनि के मद्धि सिंदूर सोहै । कनौंती सिरी कुंभ पै चित्त मोहै ॥

उपनिषदों का अनुवाद होना बहुत दुष्कर है, क्योंकि सूत्रों का अनुवाद एक प्रकार से असंभव सा ही है । संस्कृत में तो समासयुक्त पदावली के कारण 'गागर में सागर' की उक्ति चरितार्थ हो जाती है, किन्तु हिन्दी में ऐसा होना संभव नहीं । अतएव कलानिधि का लिखा हुआ जो 'उपनिषत् सार' नामक ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है उसे अनुवाद-ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता, उसमें तो एक प्रकार से सूत्रों की व्याख्या की गई है । इसीलिये हमने इस ग्रन्थ के उदाहरण 'गद्य-ग्रंथ' के अंतर्गत दिए हैं । यह नहीं कहा जा सकता कि कलानिधि की इस व्याख्या का अनुवाद की दृष्टि से क्या मूल्य लगाया जाय । यद्यपि अनेक विद्वान् इस प्रकार की पुस्तकों को अनुवाद ही कहते हैं; पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र ने भी इसी प्रकार लिखा है—

'कलानिधि ने ब्रह्मसूत्र तैत्तिरीय, मांडूक्य, केन , प्रश्नोपनिषद के अच्छे अनुवाद किये ।[1]'
किन्तु हमें इस ग्रन्थ को अनुवाद कहने में संकोच होता है—इसे तो व्याख्या, विवेचन, स्पष्टीकरण आदि नाम दिये जा सकते हैं, अनुवाद नहीं ।

'हितोपदेश' बहुत समय से प्रचलित रहा है । भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अन्य देशों की भाषाओं में भी इस ग्रन्थ के अनुवाद किये जा चुके हैं । इस ग्रन्थ को भारतीय नीति और आचार का प्रमाण-ग्रथ मानना चाहिये । मत्स्य-प्रदेश में भी हितोपदेश के कई अनुवाद मिले । एक अनुवाद रामकवि कृत

---

[1] पटना यूनि० लेक्चर्स 'इतिहास पर हिन्दी साहित्य का प्रभाव ।'

'हितामृतलतिका' नाम से मिला। यह अनुवाद भरतपुर के महाराज बलवंतसिंह के लिये किया गया था। इस पुस्तक की पत्र संख्या १३३ है। इस ग्रंथ में विभिन्न प्रसंगों को इस 'लतिका' की शाखा, दल आदि कहा गया है। कवि का कथन है—

पाटव पुर हरि सस्त्र नप तिह कृत हित उपदेस।
वाचा परम विचित्र जह नीति अनेक नरेस॥

तिहि के मत अनुसार मैं नृप बृजेस के हेतु।
हित अमृत लतिका करूं सुमरि उमा वृषकेतु॥

साखा नीति अनेक बढ़ि भई हित अमृत वेलि।
जान सजीवन रामकवि कीनी इकत् सकेलि॥[1]

इस लतिका में चार दल हैं। किसी भी दल के अंत में वर्ण्य-विषय की ओर संकेत नहीं किया गया है। केवल इतना हो कहा है "............ हितामृतलतिकायां (अमुक) दल समाप्तम्"। प्रकरण ये हैं—

मित्त लाभ सज्जन सुमिति, विग्रह संधि उपाय।
बरनौ यह में पांच विधि अपरग्रंथ मत लाय॥

अनुवाद की दृष्टि से मिलाने योग्य कुछ अवतरण—

'पूछौ जो कछु मुहि अपर बात। मैं कहौं तुम्हारे हेत तात॥
"अपरं किं कथयामि कथयताम्।"

मूरष कौ सिष दियैं हानि अपनो हित सब सु होई।
ज्यौं बानर सिष दयैं षगन अपनी बुधि तें थल षोई॥
मूल—विद्वानेवोपदेष्टव्यो नाविद्वांस्तु कदाचन।
वानरानुपदिश्याथ स्थानभ्रष्टा ययुः खगाः॥

हितोपदेश—देविया षवास[2] का लिखा हुआ। हितोपदेश के इस अनुवाद में 'विग्रह', 'संधि' नाम के केवल दो प्रसंग मिले हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रति बिक्री हेतु लिखी गई थी। इसके ऊपर लिखा है—'हितोपदेश भाषा कलमी

---

[1] रामकवि के संबंध में कुछ वर्णन रीतिकाव्य के अंतर्गत मिल सकेगा—विशेषतः 'छंदसार' के प्रसंग में।

[2] देविया खवास कवि श्रेष्ठ रसानंदजी का खवास था। सत्संग का सुन्दर प्रभाव यदि देखना हो तो देविया से बढ़ कर दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता। सैंन वंश में उत्पन्न यह व्यक्ति अपने मालिक के कारण संस्कृत तथा भाषा दोनों में पारंगत हो गया।

जिल्द समेत १।।)'। पुस्तक की लम्बाई चौड़ाई काफी है और सुन्दर लिपि में लिखे हुए ४५ पत्र हैं। इस पुस्तक को संवत् १८६१ वि० में पूर्ण किया गया—

"ते मुहि पर अनुकूल, रहौ सिया सानुज सहित।
हतौ जगत की सूल, पाहि पाहि रघुकुल तिलक॥
ससि रस रूद्र वदंत, संवत महिनौ वृद्धि रवि।
कवि कृत गुप्त मतंत, एकातिथि ससि दिन सुचित॥[1]"

इस पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"श्री मन्न महागणाधिपतये नमः अथ विग्रह कथा तृतीय हितोपदेश की देविया कृत लिष्यते।

श्री रघुवर के पद कमल सुमरि मनाय गणेश।
कहौ कथा विगूह तृतीय भाषा हित उपदेश॥
तिनराजकुमारिन सुहृदभेद। सब सुन्यौ सुचित है विगत हेत॥
पुनि विप्र विश्नु सर्मा सभाग। कछु और कथा कौ कहन लाग॥

भवत्प्रसादाच्छ्रुतः। सुखिनो भूता वयम् यदेव भवद्भ्यो रोचते तत्कथयामि।"

कथानक इस प्रकार आरम्भ होता है—

अनुवाद

इक कर्पूर देस के मांही। पद्मकेलि सरवर उहि ठांही॥
काहू एक समय हरषाई। सब पंछिन मिलि रच्यौ उपाई॥

मूल संस्कृत

अस्ति कर्पूर द्वीपे पद्मकेलि—नामधेयं सरः। स च सर्वैर्जलचरपक्षिभिर्मिलित्वा पक्षिराज्येऽभिषिक्तः॥

सरल, अविकल और धारा प्रवाह अनुवाद और भी देखें। यथा—

अथ वानर खग की कथा—

कवित्त

नर्वदा नदी के तीर पर्वत है ताके तरैं,
सैंमरि कौ वृक्ष तापै पंछिन कौ घर है।
एक सम्है वर्षा काल भादौं की आधी रात,
दामिनी दमक रही वरषा कौ भर है।

---

[1] हमें यह कलमी पुस्तक संवत् १६११ माघ शुक्ल ५ की लिखी मिली—

'इति श्री पंचमोपाख्यान राजनीति शास्त्र हितोपदेश संधि कथा चतुर्थ देविया सैंन वंस कृतेन समाप्तोयं॥ ४॥

घुमड़ि गरजि मेघ परन सलिल लाग्यो,
जोर सौं मुसलधार मारुत को सर है।
ताही काल कीस एक भीजतो पहार त्यागि,
बैठ्यो वाही वृक्ष तरे कांपतो सो धर है॥

मूल संस्कृत से मिलाएं—

'अस्ति नर्मदा तीरे पर्वतोपत्यकायां विशालः शाल्मलीतरुः। तत्र निर्मितनीड-क्रोडे पक्षिणः सुखं वर्षास्वपि निवसंति। अथैकदा वर्षासु नीलपटलैरिव जलधरपटलै-रावृते नभस्तले धारासारैर्महती वृष्टिर्बभूव। ततो वानरांस्तरुतलेऽवस्थितान् शीता-र्तान्कम्पमानानवलोक्य·········'

ताते मूरख को उपदेस। कबहुन दीजै सुनौं नरेस॥

मूल संस्कृत—'अतो हंऽब्रवीमि—विद्वानेवोपदेष्टव्यो नाविद्वांस्तु कदाचन।'

पुस्तक की समाप्ति पर कवि का कथन है—

यह कथा विग्रह संस्कृत की वरनि मैं भाषा करी।
नृप हेत जसमतस्यंघ जू के सदां रस आनन्द भरी॥
विख्यात सैंना वंस में कवि देविया गुरुसों सुनी।
तिनकी कृपा को लाय बल अनुसार मत अपने भनी॥[1]

हितोपदेश का एक और अनुवाद मिला किन्तु दुर्भाग्य से यह पुस्तक भी अपूर्ण है। प्रथम ३५ श्लोक नहीं मिलते। इस हस्तलिखित प्रति में मूल संस्कृत श्लोक भी दिए हुए हैं और उनका अनुवाद भी। गद्यभाग का अनुवाद गद्य में ही किया गया है। श्लोक भी गद्य में ही अनूदित हैं।

एक उदाहरण देखिए--

मूल–उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमः।
काक्या कनकसूत्रेण कृष्णसर्पो निपातितः॥

अनुवाद– जाते जु कारज उपाय कर होई, सु बल तै कबऊ न होई। जातें एक कागनी सोने के सूत्र कर कालो सांप मरवायो।

मूल– करकटः पृच्छति, कथमेतत्। दमनकः कथयति—

कस्मिंश्चित्तरौ वायसदंपती निवसतः [स्म]। तयोश्चापत्यानि तत्कोटरावस्थितेन कृष्णसर्पेण खादितानि। ततः पुनर्गर्भवती वायसी वायसमाह–नाथ त्यज्यतामयं तरुः। अत्र यावत्कृष्णसर्पस्तावदावयोः संततिः कदाचिदपि न भविष्यति।

---

[1] बलवंतसिंहजी के पश्चात् जसवंतसिंहजी भरतपुर के राजा हुए। इनका राज्यकाल १९०९ से चला। संभव है बलवंतसिंहजी ने अपने पुत्र के लिए इस पुस्तक का आरंभ कराया हो। कवि ने अपने गुरु रसानंद का नाम भी इस छंद में युक्ति से धर दिया है। यह ग्रंथ निश्चय-पूर्वक महाराज जसवंतसिंहजी के समय में ही समाप्त हुआ—

'ऐसें विंकटेस श्री ब्रजेंद्र जसवंत स्यंघ मंगलसमेत तुमै देउ मेरू मन के।'

अनुवाद– तब करकट कही यह कैसी कथा है। तब दमनुक कहत है। कौंने ऐक रूष पाई ऐक काग अरु अेक कागनि रहैं। सु वा व्रष के पोड़र में ऐक कारी सांपु रहै। सु येह कागु के बालकान्ह को षावौ ही करै। जब कागुनी को गरभ बहुर रह्यौ तब उन कागु सों कही, अहो स्वामी यह रूष छाड़ अन्यत्र वास कीजे। ईहां ईह कारे सांप तै हमारी संतत न उबरिहै।

इसी प्रकार विग्रह कथा भी है। एक श्लोक इस कथा का भी देखें––

श्लोक– 'हंसै: सह मयूराणां विग्रहे तुल्य-विक्रमे।
विश्वासवंचिता हंसा: काकै: स्थित्वारिमंदिरे ।।

टीका–हंस सौं अरु मयूर सौं जब वैरु उपज्यो तब काग मयूर के कंदि होइ करि हंस हरायो।

एक और भी—

श्लोक– य: स्वभावो हि यस्य स्यात्तस्याऽसौ दुरतिक्रम:।
श्वा यदि क्रियते राजा तत्किं नाश्नात्युपानहम् ।।

टीका–जाते जाकौ जु सुभाव है सु तासों छोड्यो न जाइ। जातें कूकर जो राजा करिये। तेहू पनहीं के षाइबो न छाडै।

हितोपदेश आदि के अनुवाद इस बात को बताते हैं कि अनुवाद करने वालों ने मूल की बारीकियों पर कोई खास ध्यान नहीं दिया, फिर भी भाव की रक्षा संतोषजनक रूप में हो सकी है। उस समय मत्स्य-प्रदेश में अनुवाद का पुष्कल कार्य जिस द्रुत गति से हुआ उसको देख कर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है।

'सुजानविलास' के नाम से सोमनाथ ने सिंहासन बत्तीसी का अनुवाद किया है। इस ग्रंथ को सरलता से अनुवाद ग्रन्थ माना जा सकता है। सुजानसिंहजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था—

सभा मद्धि इक दिन कही, श्रीं सुजान मुसिक्याइ।
सोमनाथ या ग्रंथ की, भाषा देहु बनाइ॥

इस ग्रन्थ को कथा साहित्य में लेकर वहीं विवरण दिया गया है।

मत्स्य प्रदेश में संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य पर्याप्त हुआ। इस संबंध में कुछ बातें उल्लेखनीय हैं—

१. अनुवाद के लिए सभी प्रकार की धार्मिक पुस्तकें तथा नीति-संबंधी साहित्य चुना गया।

२. महाभारत और रामायण जैसे दीर्घकाय ग्रन्थों के पद्यात्मक अनुवाद मत्स्य के कवियों का गौरव बढ़ाने में ज्वलंत प्रमाण हैं। उन कवियों की विद्वत्ता, कर्मण्यता और साथ ही राजाओं की गुणग्राहकता तथा उदारता वास्तव में प्रशंसनीय है।

३. मत्स्य में अनुवाद का कार्य साधारणतः अच्छा ही हुआ। मूल से बिलकुल मेल खाना तो उस समय न आवश्यक था और न सम्भव, परन्तु इन अनुवादों में मूल को भाव-रक्षा अच्छी तरह हो पाई है।

४. मत्स्य के अन्य साहित्य ग्रन्थों के सदृश अनुवाद साहित्य भी अधिक अलंकृत नहीं है। साथ ही यहाँ पर अलंकृत ग्रन्थों के अनुवाद भी नहीं हुए क्योंकि उनका प्रचार केवल संस्कृत की विद्वन्मंडली तक सीमित था।

५. यहां के कवियों का ध्यान लोक-साहित्य की ओर अधिक गया। धर्म की दृष्टि से रामायण, महाभारत, भागवत और गीता हिन्दू धर्म के अभिन्न अंग हैं। आज भी इन सभी के पारायण तथा पाठ होते रहते हैं। इन ग्रंथों का प्रचार तथा सम्मान दोनों ही हैं। ये ग्रंथ जन-जीवन का अंग बन चुके हैं, और मत्स्य के कवियों ने भी इन्हीं ग्रंथों की ओर ध्यान दिया, जन-साहित्य में प्रचलित लोक कथाओं के भी अनुवाद किए गए जैसे— हितोपदेश, सिंहासन बत्तीसी, शुक बहत्तरी आदि।

संस्कृत पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ फारसी पुस्तकों के अनुवाद भी हुए। मुसलमानों के प्रभाव से यहां भी फारसी का प्रचार था और पढ़े लिखे लोगों में फारसी जानने वालों की ही संख्या अधिक होती थी। मुगलों की राजभाषा होने के नाते देश में फारसी का प्रचार सर्वत्र हो गया था। हमें विश्वस्त रूप से यह कहा गया था कि 'अनवार सुहेली' का हिन्दी अनुवाद भरतपुर राज्य में किया गया था, किन्तु बहुत खोजने पर भी यह अनुवाद प्राप्त नहीं हो सका।[1]

आईने अकबरी–हिंदी में लिखी मिली। पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार है—

> 'यह राजनीत अरु आईन माफिक हुकम अकबर बादसाह के लिषी जात है, साहजादे अरु उमराव अरु आलिम अरु कोतवाल अरु सब कारवारी याही आईन माफिक राज काज में बरते।'

यह पुस्तक अलवर राज्य में ही लिखी गई। इसमें राजनीति तथा सामान्य नीति संबंधी अनेक बातें हैं—

> 'ईश्वर को मनतें न भुलाइये। बिना उपदेश और भली चर्चा के मुष तें कोई वचन नहीं काढ़िये। जो कछु कारज किया चाहे ताका भेद काहू को न दीजे। बालक

[1] हर्ष का विषय है कि अपने लन्दन-प्रवास में ब्रिटिश म्यूजियम के प्राच्यविभाग में मुझे इस का हिन्दी पद्यानुवाद 'हितकल्पद्रुम' नाम से मिल गया। इस पर मेरा विस्तृत लेख 'अनुशीलन' सन् १९६२, भाग २ में प्रकाशित हो चुका है।

और स्त्री जो कहे ताकी प्रतीत न कीजिये और इनों ते मन का भेद न कहिए। लुगाई के बस न हो जाइये। राजन के हित की प्रतीत न कीजिये।[1]

फारसी की अधिक पुस्तकों के अनुवाद प्राप्त नहीं हो सके। मत्स्य के पुस्तकालयों में उर्दू विभाग देखने से पता लगता है कि फारसी ग्रंथों का उर्दू भाषा में अनुवाद अधिक हुआ। इन सभी बातों से पता लगता है कि मत्स्य के राजा वास्तव में साहित्यसेवी थे। हिन्दी और संस्कृत को तो प्रोत्साहन मिलता ही था, फारसी और उर्दू पर भी उनकी कृपा रहती थी। भरतपुर तथा अलवर के पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों में उर्दू और फारसी के अनेक हस्तलिखित ग्रंथ मिले। अलवर का संग्रह तो बहुत ही मूल्यवान् समझा जाता है। फारसी की कुछ प्रतियां तो सहस्रों रुपये के मूल्य की हैं। यहां संस्कृत की पुस्तकें भी बहुत बड़ी संख्या में हैं। मत्स्य के कवियों ने अनुवाद करते समय संस्कृत-ग्रंथों की ओर विशेष ध्यान दिया और यदि ये सभी अनुवाद एकत्र हो जायें तो हिन्दी साहित्य के लिए बड़ी ही गौरव की बात हो।

एक बात विशेष रूप से देखी गई। सोमनाथ, देविया, गोवर्द्धन, रसानंद आदि अनुवादकर्ता उच्चकोटि के कवि भी थे। अतः इन अनुवादों में पद्यकी प्रधानता है। गद्यानुवाद बहुत कम मिलते हैं और वे भी साधारण कोटि के। फिर, हिन्दुओं के धार्मिक संस्कृत ग्रंथ पद्य में अधिक हैं और अनुवादक यही ठीक समझते थे कि उन ग्रन्थों की पद्यात्मकता नष्ट न होने पावे। यों कविजन अनुवाद के क्षेत्र में भी अपना काव्य-चातुर्य प्रदर्शित कर सकते थे किन्तु यह मानी हुई बात है कि इस तरह अनुवाद का स्तर ऊँचा रखना बहुत कठिन है। फिर भी, मत्स्य के साहित्यकारों द्वारा अनुवाद के क्षेत्र में संतोषजनक कार्य हुआ।

---

[1] कलकत्ता मदरसा के एच० ब्लाकमैन के द्वारा किये गये आईने अकबरी के अंग्रेजी अनुवाद में ये प्रसंग इस रूप में नहीं मिले।

अध्याय ८

उपसंहार

मत्स्य प्रदेश का हस्तलिखित साहित्य एकत्रित करने में मुझे अनेक स्थानों, व्यक्तिगत पुस्तकालयों तथा संस्थाओं की खोज करनी पड़ी और तभी इस प्रांत के कुछ गौरवमय, किन्तु अब तक अप्राप्त पृष्ठ हाथ लग सके। जो कुछ सामग्री मुझे मिल सकी उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि 'नागरी गुणागरी' के साहित्य-भण्डार की वृद्धि करने में मत्स्य प्रदेश किसी भी प्रकार पीछे नहीं रहा। यह अवश्य है कि विद्वानों और अन्वेषकों का इस ओर यथोचित ध्यान न होने के कारण यहाँ का बहुत-सा साहित्य तो नष्ट हो गया और जो बचा भी है वह प्रकाश में नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि कुछ खोजकर्ताओं ने इस कार्य में बहुत संकुचित मनोवृत्ति का परिचय दिया। कुछ ने तो सामग्री एकत्रित कर उसे इधर-उधर दे डाला और किसी प्रकार के प्रकाशन के लिए अवसर नहीं दिया। प्रकाशन से भी पता लगता है कि मत्स्य के साहित्यकार किस प्रकार अपने कार्य करते रहे। कुछ ऐसे महानुभाव भी हैं जो बहुत-सी मूल्यवान सामग्री को संचित करके उसे दबाये बैठे हैं। दिखाने की प्रार्थना करने पर वे समझते हैं कि यदि उस सामग्री का पता किसी अन्य व्यक्ति को हो गया तो अनर्थ हो जायगा। यदि उनसे उस सामग्री को प्रकाशित करने के लिए कहा जाता है तो बहुत से बहाने उपस्थित कर देते हैं। बहुत सी मूल्यवान सामग्री अभी बस्तों में बंद है जिनके अधिकारी यह जानते ही नहीं कि उस सामग्री का क्या उपयोग हो सकता है। अनुसंधान करने वालों के लिए निश्चय ही मत्स्य प्रदेश में प्रचुर सामग्री है किन्तु आवश्यकता है कार्य और लगन की।

खोज में मिले ग्रन्थों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मत्स्य के साहित्यकार प्रायः राज्याश्रित थे। इनमें से कुछ लोग वेतनभोगी थे और कुछ सामयिक पुरस्कार आदि के द्वारा अपनी जीविका चलाते थे। यह बात माननी पड़ेगी कि यहां के साहित्य-सृजन तथा विकास में राजाओं का बहुत हाथ रहा। कुछ साहित्यकार मस्त-फकीर भी हुए जिन्हें किसी राजा-रईस की चिन्ता नहीं थी। पहले ही लिखा जा चुका है कि बहुत समय पहले लालदास एक ऐसे महात्मा हुए। इनकी रचनाएं सन्त-साहित्य के अंतर्गत आती हैं। ये मेव थे और मुसलमान और हिन्दू दोनों को ही मिलाना चाहते थे। ये बड़े स्वतन्त्र जीव थे और अकबर की प्रार्थना पर भी दिल्ली नहीं गए, बादशाह ने स्वयं ही इनके स्थान पर आकर इनका दर्शन किया। इसी प्रकार चरनदास तथा उनकी

शिष्याएं थीं जिनका किसी भी प्रकार की राज्य सहायता से कोई सम्बन्ध नहीं था। परंतु अधिक संख्या उन्हीं साहित्यकारों की थी जो नियमित रूप से राजाओं द्वारा सहायता प्राप्त करते रहते थे।

साहित्यकारों में प्रमुखतः ब्राह्मण थे और उनमें भी विशेष रूप से 'चौबे'। अन्य वर्गों के व्यक्ति भी मिलते हैं जैसे बलदेव वैश्य, रसानंद जाट, चतुर्भुजदास कायस्थ, अलीबख्श रांगड मुसलमान, देविया खवास आदि। परन्तु ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम थी। कविता करने का स्थान राजाओं का प्रधान नगर होता था। कुछ कवि अन्य विशेष स्थानों जैसे वैर, राजगढ़, डीग, वसवा, माचेड़ी, मंडावर आदि में भी निवास करते थे किन्तु वहाँ भी उनका संबंध ठिकानेदारों अथवा राजकुमारों से होता था। राज्याश्रित कवियों के अतिरिक्त कुछ राजा स्वयं भी अच्छे कवि थे—भरतपुर के महाराज बलदेवसिंह, अलवर के महाराव बख्तावरसिंह और विनयसिंह, मंडावर के राव अलीबख्श, करौली के राजकुमार रतनपाल और भरतपुर की महारानी अमृतकौर स्वयं ही साहित्यकार थीं। कुछ कृतियां देखने पर इन राजाओं की रचनाओं के बारे में यह कहा जा सकता है कि इन पुस्तकों का राजाओं द्वारा लिखा जाना संभव नहीं; हो सकता है, इन्हें उनके आश्रित कवियों ने रच कर अपने आश्रयदाता के नाम से चलाया हो। यह बात दृढ़ता के साथ कही जा सकती है कि मत्स्य-प्रदेश के राजाओं ने कला तथा कलाकारों को बहुत प्रोत्साहन दिया।

जो साहित्य मुझे मिला उसमें से बहुत कुछ ऐसा है जिसे हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी कहा जा सकता है। इसमें से कुछ कृतियों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१. **नवधाभक्ति-रागरस सार**– यह ग्रन्थ न केवल ३६,००० रु० का पुरस्कार प्राप्त कर सका प्रत्युत नवधा-भक्ति और रस के अतिरिक्त रागों की व्याख्या करने में पूर्ण रूप से सफल हुआ। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की पुस्तकें बहुत ही कम मिलती हैं।

२. **बलभद्र के 'सिखनष' पर टीका**– आज तक समस्त हिन्दी संसार यही जानता रहा है कि बलभद्र के सिखनष पर सबसे प्रथम टीका गोपाल कवि द्वारा संवत् १८९१ वि० में हुई। किंतु हमारी खोज ने यह सिद्ध कर दियो है कि इस टीका से ५० वर्ष पूर्व ही संवत् १८४२ वि० में मनीराम कवि द्वारा इस ग्रंथ-रत्न की टीका की जा चुकी थी। कवि मनीराम ने यह टीका मत्स्य-प्रदेश में ही की और इनकी टीका को एक सफल ग्रंथ मानने में किसी प्रकार संदेह नहीं

किया जा सकता। कवि मनीराम की टीका को ही बलभद्र के सिखनप पर प्रथम टीका मानना चाहिए, अन्य प्रयास इससे बहुत पीछे के हैं।

३ **बख्तविलास**– हिन्दी संसार में यह माना जाता रहा था कि देव कवि सनाढ्य ब्राह्मण थे और हिंदी साहित्य के प्राय: सभी इतिहासों में इसी बात का समर्थन किया जाता है। किंतु महाराज बख्तावरसिंहजी के आश्रित कवि भोगीलाल की इस पुस्तक ने सिद्ध कर दिया है कि देव कवि कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, सनाढ्य नहीं। इसी बात को डॉ. नगेन्द्र ने स्वीकार किया है।

४. **ध्वनि-प्रकरण**– हिंदी के रीति-ग्रंथों में नायक-नायिका भेद, सिखनख, शृंगार आदि के प्रकरण तो मिलते हैं किंतु संस्कृत के वास्तविक रीतिकार मम्मट, विश्वनाथ आदि के अनुगमनकर्ता नहीं दिखाई देते। सोमनाथ का रस-पीयूषनिधि, कलानिधि का अलंकार-कलानिधि आदि ग्रन्थ इस बात के प्रबल प्रमाण हैं कि मत्स्य में ध्वनि-प्रकरण का काफी विश्लेषण हुआ और अनेक रीतिकारों के मतमतांतर पर सुस्पष्ट व्याख्या हुई थी।

५. **शृंगार की दृष्टि से अयोध्या का शृंगारी वर्णन—राम-सीता तथा लक्ष्मण-उर्मिला के वर्तमान शृंगार वर्णन** हिन्दी में नवीन वस्तु नहीं है। भरत-पुर के कवियों ने इनके शृंगार का अच्छा वर्णन किया है। इन स्वरूपों की स्थापना झूला, होली, चित्रसारी आदि सभी शृंगारी स्थानों में की है किंतु पूज्य भाव के साथ। कैलाश पर्वत पर निवास करने वाले शंकर और पार्वती की होली भी शामिल कर दी गई।

६. **प्रेमरतनागर**– इस ग्रन्थ में प्रेम की व्याख्या का इतना सुन्दर और वैज्ञानिक स्पष्टीकरण देख कर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। साधारणतया इस प्रकार के ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में नहीं मिलते। इसी प्रकार का एक ग्रन्थ 'नेहनिदान' ग्वालियर के 'नवीन' ने निर्मित किया था। मानना पड़ेगा कि प्रेम के स्वरूप का इतना सुन्दर और उदाहरणसहित विश्लेषण 'प्रेमरतनागर' जैसे ग्रंथों में ही मिल सकता है।

७. **विचित्र रामायण**–खंडेलवाल वैश्य कुलोत्पन्न बलदेव कृत यह रामायण वास्तवमें विचित्र है। बालकाण्ड तथा उत्तरकांड के दार्शनिक तथा आध्यात्मिक प्रसंगों को निकाल कर रामायण के कथानक को सुन्दर रीति से १४ अंकों में विभाजित किया है। इस ग्रंथ में काव्यगुण और कथा वर्णन दोनों की छटा मिलती है और स्थान-स्थान पर कवि केशव का स्मरण हो आता है। प्रकृति वर्णन इसकी विशेषता है।

८ राधामंगल– पार्वतीमंगल, जानकीमंगल तथा रुक्मिणीमंगल तो हिन्दी में चलते थे किन्तु मत्स्य के एक कविराज ने राधामंगल उपस्थित करके राधा और कृष्ण का विवाह करा दिया है और यशोदा दूल्हा तथा दुल्हिन को लिवा कर घर में ले जाती है। इस पुस्तक में कल्पना का अद्भुत प्रयोग है। प्रबंध-काव्य की दृष्टि से वर्णन की सफलता दर्शनीय है, साथ ही स्थानीय रीति-रसूमात का विस्तृत वर्णन भी।

९. महादेव कौ व्याहुलौ– हिन्दी के कवियों द्वारा कई पार्वतीमंगल बनाए गए किन्तु 'महादेव कौ व्याहुलौ' द्वारा कवि ने ब्रज में प्रचलित परम्परा का एक सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है। इस पुस्तक की पद्धति को जोगियों के व्याहुलौ जैसा कहा जा सकता है किन्तु कवि की काव्य-प्रतिभा उत्कृष्टकोटि की है।

१० गिरवर विलास– कवि उदयराम लिखित यह एक ऐसा सुन्दर ग्रन्थ है जिसमें रास के रहस्य को बताने के साथ-साथ प्रकृति का एक सजीव चित्र उपस्थित किया गया है। ऐसा मालूम होने लगता है जैसे कवि ने पर्वत, सरोवर, वृक्ष, रज आदि सभी में जीवन डाल दिया हो। इसमें वर्णित रास प्रसंग द्वारा ब्रज की लीलाओं का एक समा सा बँध जाता है।

११ राम-करुण, हनुमान, अहिरावण नाटक– इन पुस्तकों को नाट्य साहित्य का अंग तो नहीं माना जा सकता किन्तु इनमें जो सक्रियता देखी जाती है उसके आधार पर हम इनके नाम को सार्थकता पर ध्यान दे सकते हैं। यदि इनको श्रव्य-काव्य के रूप में नाटक मान लें तो कोई अनुचित बात नहीं होगी। इन नाटकों पर संस्कृत साहित्य के नाटकों की छाया है और हिन्दी में एक सुन्दर प्रयोग है।

१२. लाल-ख्याल– इस पुस्तक को लाल संग्राम भी कह सकते हैं जो एक 'ख्याल' के रूप में है। ख्याल का अर्थ होता है 'क्रीड़ा',। इसमें लाल नामक चिड़िया की लड़ाई का वर्णन है। इस पुस्तक की लिपि परम विचित्र है तथा हस्तलिखित पुस्तकों में भी इसको मूल्यवान् मानना चाहिए। हिन्दी में पशु-पक्षी साहित्य बहुत कम मिलता है परन्तु मत्स्य के कवियों ने इस ओर भी ध्यान दिया है। 'सभाविनोद' भी एक ऐसी ही पुस्तक है जिसमें तरु, सरोवर, पुष्प आदि मानवीय भावनाओं से युक्त हैं।

१३. इतिहास-प्रधान वीर-काव्य– मत्स्य प्रदेश की विशेषता है। सुजान-चरित्र और प्रतापरासो को ही लीजिए। इन वीर काव्यों में उच्च कोटि की

वीरता के दर्शन होते हैं और साथ ही इनमें वर्णन की हुई घटनाएं व्यक्ति, तिथि और संस्थाएं सभी इतिहास द्वारा प्रमाणित हैं। इस प्रकार का वीर-काव्य एक अनूठी वस्तु है और इसके द्वारा इतिहास के पृष्ठों का स्पष्टीकरण करने में पूरी सहायता मिलती है।

१४. **महाभारत, रामायण आदि के अनुवाद**– इतनी बड़ी पुस्तकों के अनुवाद करना कोई साधारण कार्य नहीं हैं और काव्यमय सुन्दर पद्यों में अनुवाद करना तो और भी कठिन होता है। इन कवियों और इनके आश्रयदाताओं का उत्साह देखिए कि इन बड़े-बड़े ग्रंथों का पूरा अनुवाद किया। गीता, भागवत आदि के अनुवाद तो होते ही थे किन्तु मत्स्य के कलाकारों ने आज से दो सौ वर्ष पहले रामायण और महाभारत जैसे भीमकाय ग्रंथों के अनुवाद भी कर डाले।

१५. **भाषा-भूषण की टीका**– भाषा-भूषण की तीन टीकाओं के नाम मिलते हैं—१. बंसीधर की, २. प्रताप साहि की, ३. गुलाब कवि की। किन्तु किसी स्थान पर अलवराधीश विनयसिंह की टीका का नाम नहीं मिलता। इस टीका के ज्ञान-विस्तार और विद्वत्ता को देख कर चकित रह जाना पड़ता है। टीकाकार का काव्य-ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा है तथा काव्य के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में भी उनकी गति है। मत्स्य प्रांत में ही नहीं समस्त हिन्दी प्रान्त में, 'राजाधिराज बषतेस सुत विनयसिंह' की टीका निश्चय ही अत्यन्त उत्कृष्टकोटि की है।

१६. **चरनदासी साहित्य**– यह साहित्य प्रकाश में आ चुका है और यह प्रमाणित हो चुका है कि चरनदासजी और उनकी शिष्याओं द्वारा सगुण-निर्गुण का उत्कृष्ट समन्वय उपस्थित किया गया था। इनका समाधान इतना अच्छा है कि भक्ति के इन दोनों अंगों में कोई झगड़ा ही नहीं। इस साहित्य में जहाँ एक ओर निर्गुण संतों की वाणी का आनंद मिलता है वहाँ दूसरी ओर भगवान के सगुण रूप की लीलाओं का सरल वर्णन भी मिलता है। इनकी धारणाएं दृढ़ हैं और भक्ति के इन दोनों अंगों में किसी प्रकार का विरोध दिखाई नहीं देता।

१७. **रामगीतम्**– गीत गोविंद की कोटि का रामगीतम् भी द्रष्टव्य है। इसके वर्णन हरिऔधजी के पथ-प्रदर्शक से लगते हैं। शार्दूल-विक्रीड़ित छंद का उदाहरण देते हुए राधा की सुन्दरता के वर्णन से समानता अन्यत्र दिखाई जा चुकी है। संस्कृत काव्य होते हुए भी यह ग्रंथ हिन्दी वालों के लिए भी सुगम है। यह ऐसा ही ग्रन्थ है जैसे तुलसी की संस्कृत गर्भित प्रार्थनाएं अथवा हरिऔध के संस्कृत-गर्भित प्रिय-प्रवास के अनेक प्रसंग।

१८. **गद्य साहित्य**– मत्स्य में गद्य भी प्रचुर मात्रा में मिला। एक गद्य

पुस्तक से सूरदासजी के जीवन पर नया प्रकाश पड़ता है कि वे राज थे तथा भड़ौवा गाया करते थे। उनका बनाया पहला पद जिसके द्वारा आज तक गोवर्द्धनजी की पूजा का आरम्भ होता है इस पुस्तक में बताया गया है। जन्मांध होने का भी पक्का प्रमाण मिलता है।

यदि मत्स्य प्रदेश के साहित्य को हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की दृष्टि से भी देखा जाय तो मत्स्य की देन पीछे नहीं पड़ती। शुक्लजी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार भागों में बांटा है—१. वीरगाथाकाल, २. भक्तिकाल, ३. रीति तथा शृंगारकाल, और ४. गद्यकाल।

मत्स्य के साहित्य में वीरगाथा काल अथवा भक्तिकाल इस रूप में तो नहीं पाए जाते जैसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में देखे जाते हैं, किन्तु उन कालों में साहित्य की जो प्रवृत्तियाँ रहीं तथा जिस प्रकार का साहित्य निर्मित हुआ वे सारी बातें यहाँ के साहित्य में भी पाई जाती हैं। हमारा संकेतित काल हिंदी के रीतिकाल के अंतर्गत आता है किंतु हिन्दी साहित्य की संपूर्ण प्रवृत्तियां प्रचुर मात्रा में देखी जा सकती हैं।

हिन्दी के आदि युग की वीरगाथाओं के रूप में हम सुजानसिंह, जवाहरसिंह, प्रतापसिंह, रणजीतसिंह आदि से संबंधित वीर-साहित्य को ले सकते हैं। सुजानसिंहजी की वीरगाथाओं का चित्रण 'सुजान चरित्र' के अतिरिक्त अन्य किन्हीं ग्रंथों में नहीं पाया जाता, परन्तु यदि चित्रण की पूर्णता देखनी हो तो उदयराम का 'सुजान संवत्' एक अच्छा ग्रंथ है। जाचोक जीवण के 'प्रतापरासौ' में अलवर के प्रारम्भिक काल के संघर्ष का ऐतिहासिक चित्रण है। यह ग्रंथ प्रताप के साहसिक कार्यों की अमर कहानी है। रणजीतसिंह और लार्ड लेक की लड़ाई का बहुत-सा स्फुट साहित्य भी मिलता है। मत्स्य के वीर साहित्य में दो तीन विशेषताएं दिखाई पड़ती हैं—

१. वीरगाथा काल की तरह मत्स्य प्रदेश में शृंगार-प्रधान वीर-काव्य नहीं है। यहाँ की लड़ाइयां सुंदरियों को पाने के लिए नहीं लड़ी गईं वरन् राज्य की स्थापना तथा उसका गौरव बढ़ाने हेतु लड़ी गईं। यहाँ के वीरगाथाकार भूषण की राष्ट्रीय पद्धति का अनुकरण करते प्रतीत होते हैं। ये वीर देश की स्वतंत्रता और उसकी स्थिरता के लिए तलवार चलाते थे, जनाने महल का गौरव बढ़ाने के लिए नहीं। उनके व्यक्तिगत जीवन में विलास नाम की कोई चीज थी ही नहीं।

२. हिन्दी के आदियुग की वीरगाथाओं का ऐतिहासिक मूल्य बहुत कम है

यहाँ तक कि चंद के 'रासो' को भी कुछ लोगों द्वारा कल्पित और उसके बहुत से अंश को प्रक्षिप्त समझा जाता है। मत्स्य के काव्यों को इतिहास का पोषक समझना चाहिए। जहां कहीं साहित्य द्वारा इतिहास-प्रतिपादन का प्रसंग आवेगा वहाँ मत्स्य साहित्य को अवश्य ही प्राथमिकता मिलेगी। अपने आश्रयदाताओं की वीरता का गान करते हुए भी इन कवियों ने अपनी वाणी पर पूरा संयम रखा और इतिहास के तथ्यों की रक्षा की।

३ इन काव्यों में युद्ध का चित्र उपस्थित करते समय कवियों ने ओजपूर्ण शैली का ऐसा सुन्दर संयोग किया है कि घटना की वास्तविकता का आनंद आने लगता है। सूदन का सुजानचरित्र इस विषय में एक अनूठा ग्रंथ समझना चाहिए।

मत्स्य के साहित्य में भक्ति-संबंधी काव्य भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुआ। रामाश्रयी धारा में विचित्र रामायण, अहिरावण तथा राम करुणानाटक, हनुमान नाटक, वाल्मीकि रामायण के अनुवाद, पदों में राम-कथा के प्रसंग, रामजन्मोत्सव आदि मूल्यवान पुस्तकें हैं। कृष्ण की तो यह लीला भूमि है ही और भरतपुर के राजाओं को 'व्रजेंद्र' कहलाने का गौरव प्राप्त है। कृष्ण की लीलाओं का गान यहां के राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, हिन्दू-मुसलमान सभी ने किया और कृष्ण लीलाओं से संबंधित विभिन्न प्रकार के काव्यों की रचना हुई। कृष्ण की लीलाएं, रास पंचाध्यायी, अन्य मंगलों के साथ राधा-मंगल, होरी आदि अनेक प्रकार की काव्य सामग्री दिखाई पड़ती है। निर्गुण संतों की वाणी निर्गुणिये भक्तों के द्वारा ही नहीं प्रत्युत् सगुण भक्तों के मुख से मुखरित होती है और प्रेम-मार्गीय शाखा भी 'प्रेम-रसाल' के रूप में गुलाममुहम्मद सुनाते हैं। इसके साथ ही प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद भी मिलते हैं। उपनिषदों का प्रचार, देवी की उपासना आदि हिन्दू धर्म के अंग मत्स्य के साहित्य द्वारा परिवर्द्धित और पुष्ट हुए। इस साहित्य की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं—

१. यहाँ के साहित्य में राम और कृष्ण दोनों ही अवतारों की कथाएं समान रूप में मिलती हैं। मत्स्य में पाई गई सामग्री को देख कर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यहां राम-संबंधी साहित्य भी काफी लिखा गया। यह नोट करने की बात है कि मत्स्य का राम-संबंधी साहित्य इतना गम्भीर नहीं है जितना प्रायः पाया जाता है। भक्तों ने अपनी सहृदयता से राम-साहित्य को भी बहुत सरस बना दिया है।

२. यहां के कवियों ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि सरसता के साथ-साथ अवतारों के प्रति पूज्य-भाव में किसी प्रकार की कमी न आने पावे।

अनेक श्रृंगार-प्रधान वर्णनों के होते हुए भी मत्स्य के कवियों ने इस बात को नहीं भुलाया कि कृष्ण और राम भगवान के अवतार हैं तथा उनकी शक्तियां सीता और राधा भी हमारे पूज्य भाव की अधिकारिणी हैं। दो एक स्थलों को छोड़कर यहां के साहित्य में वासनामय प्रसंग दिखाई नहीं पड़ते।

३. इस प्रदेश के भक्ति-काव्य में सगुण और निर्गुण का एक विचित्र समन्वय पाया जाता है। चरणदासजी के द्वारा किया गया सगुण और निर्गुण का समन्वय तथा अन्य कवियों द्वारा राम और कृष्ण में सम्पूज्य भावना इस प्रदेश की परंपरा सी रही।

मत्स्य में रीति संबंधी अनेक पुस्तकें लिखी गईं और इन पुस्तकों में सभी विषयों का विवेचन हुआ। रससिद्धान्त, ध्वनिसिद्धान्त, अलंकारनिरूपण, पिंगलप्रकाश, नायक-नायिका भेद, सिखनख, ऋतुवर्णन आदि सभी विषयों पर पुस्तकें लिखी गईं। इस ओर काम करने वालों में कलानिधि, सोमनाथ, रसानंद, भोगीलाल, शिवराम, रामकवि, हरिनाथ, गोविंद, जुगलकवि, मोतीराम आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के इतिहास में आचार्य और कवियों का विभाजन करने में प्रायः कठिनाई होती है। मत्स्य के कुछ कवि तो वास्तव में आचार्य नाम के अधिकारी हैं। संस्कृत के रीति-ग्रन्थों का अध्ययन और मनन करने के उपरान्त ही यहां के कवियों ने अपने रीति-ग्रन्थ लिखे। भरत का नाट्यशास्त्र, विश्वनाथ का साहित्यदर्पण, मम्मट का काव्य-प्रकाश अभिनवगुप्त का 'लोचन' आदि रीति ग्रन्थ बहुत प्रिय रहे और इन्हीं के आधार पर रीतिसिद्धान्तों का प्रतिपादन करने की चेष्टा की गई। हिन्दी में प्रचलित पद्धति के अनुसार श्रृंगाररस का वर्णन करते हुए श्रृंगारी कविता की रचना भी हुई। यहां के रीति साहित्य में कुछ बातें विशेष रूप से देखी जाती हैं—

१. मत्स्य के रीतिकारों ने रस और ध्वनि आदि मुख्य प्रसंगों को छोड़ा नहीं वरन् उनकी पूरी व्याख्या की। ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य, अधम काव्य पर उसी प्रकार विचार किया गया जिस प्रकार संस्कृत के आचार्य करते थे। कुछ ग्रन्थों में तो अध्यायों का क्रम भी संस्कृत के प्रसिद्ध रीति ग्रंथों के अनुसार ही रखा गया। उनमें पिंगल-प्रकरण बढ़ाना यहां के रीतिकारों की विशेषता थी। हमारी खोज में अनेक पुस्तकें ऐसी मिली जो कि काव्य-विवेचन की दृष्टि से सर्वांगीण कही जा सकती हैं।

२. आचार्यत्व के गुणों से पूर्ण कई कवि मिलते हैं। शिवराम, रसानद कलानिधि, हरिनाथ और सोमनाथ के द्वारा जो लक्षण और उदाहरण दिये गये हैं तथा उनका जो स्पष्टीकरण किया गया है उससे लेखकों की वैज्ञानिक बुद्धि

का परिचय मिलता है। मत्स्य के रीतिकारों में दास, तोष, देव आदि के साथ बिठाने के लिये कई कवि हैं।

३. रीति ग्रन्थों का प्रणयन राजाओं के पठन-पाठन हेतु होता था इसलिये उनमें इस बात का ध्यान रखा जाता था कि पाठ्य सामग्री संयत हो और शृंगार के वर्णन भी शील की सीमा का उल्लंघन न करने पावें। समझ में आने की सुगमता की ओर भी ध्यान दिया जाता था। राग-रागिनियों आदि को भी सुगम प्रणाली में ही अभिव्यक्त किया गया। यह स्वीकार करना पड़ता है कि यहां के ग्रन्थ सरलता के साथ-साथ वैज्ञानिकता लिये हुये हैं।

हिन्दी का आधुनिक काल गद्य काल के नाम से संबोधित किया जाता है। इस काल का आरंभ संवत् १९०० से माना जाता है। गद्य के विकास हेतु अनेक प्रयत्न हुए और धीरे-धीरे खड़ी बोली गद्य का आधुनिक रूप भी विकसित हुआ। मत्स्य के गद्य साहित्य में खड़ी बोली या किसी अन्य गद्य को विकसित करने की कोई प्रेरणा नहीं देखी जाती। यहां जो कुछ भी गद्य लिखा गया वह अपने स्वाभाविक रूप में ही विकसित हुआ। हमारे आलोच्य काल में मत्स्य का ब्रज-भाषा गद्य ही देखने को मिलता है। भाषा-भूषण की टीका, अकलनामे, हितोप-देश की कहानी, सिंहासन बत्तीसी, वैराग्य सागर, उपनिषदों की व्याख्या आदि में ब्रजभाषा गद्य का रूप मिलता है। अपेक्षाकृत पिछले गद्य में कुछ खड़ी बोली के रूप भी मिलते हैं। अंग्रेजी प्रान्तों की तरह मत्स्य में गद्य की वेगवती गति दृष्टिगोचर नहीं होती, किन्तु जो भी मिला है वह संयत और मधुर है—

१. मत्स्य का ब्रजभाषा गद्य ही यहां के साहित्यिक गद्य की प्रतिष्ठा करता है। अंग्रेजी प्रान्तों में तो साहित्यिक गद्य खड़ी बोली का गद्य कहलाता था किन्तु १९५० वि० तक मत्स्य प्रदेश में ब्रजभाषा गद्य ही काम में लिया जाता रहा। पत्र, परवानें, रुक्के, गद्य पुस्तकें, व्याख्या आदि सभी इस रूप में मिलते हैं।

२. कहानी साहित्य के कुछ अंश, उर्दू गद्य का नागरी लिपि में रूपान्तर, मुसलमानों की वार्ता आदि में खड़ी बोली के रूप भी मिल जाते हैं किन्तु यह प्रवृत्ति गद्य के साथ पद्य में भी देखी जाती है। 'उपनिषत् सार' में गद्य के सुन्दर प्रयोग मिलते हैं और 'भाषा भूषण' की टीका में प्रयुक्त गद्य तो ब्रजभाषा गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रान्त की प्रचलित भाषा होने के कारण इस प्रदेश में ब्रजभाषा गद्य ही चलता रहा।

३. अंग्रेजी की गद्य-प्रेरणा, गद्य की द्रुत गति, विषय-विविधता यहां नहीं मिलती। हमारे सामने केवल ब्रजभाषा गद्य का ही मधुर रूप आता है जो यहां

की आवश्यकताओं के अनुसार अपनी मंथर गति से चलता रहा ।

खोज में प्राप्त ग्रन्थों की लिपि के संबंध में भी कुछ बातों का संकेत अप्रासंगिक न होगा—

अ. इस प्रदेश में पाये गये हस्तलिखित ग्रन्थ इस बात का प्रमाण हैं कि हस्तलिखित प्रतियां बहुत सावधानी के साथ लिपिबद्ध की जाती थीं। काली स्याही बहुत चमकीली होती थी और कभी-कभी लाल स्याही तथा अन्य रंगीन स्याहियों का प्रयोग भी होता था। कागज या तो देसी होता था अथवा विलकोर्ट आदि कंपनियों का बना विलायती। प्रतियों को सुरक्षित रखने की ओर काफ़ी ध्यान दिया जाता था और अच्छी जिल्द बंधी होती थी। सैकड़ों वर्षों के बाद आज भी कुछ प्रतियां अपने सुन्दर रूप में उपलब्ध हैं।

आ. यहां की हस्तलिखित प्रतियों में कुछ बातें समान रूप से देखी जाती हैं—

१. आधुनिक 'ख' के लिए 'ष',
२. 'घ्र' के लिए 'घ्र',
३. कभी कभी 'ऊ' के स्थान में 'उँ',
४. 'ई' के स्थान में 'इी',
५. 'ऐ' के स्थान में 'अै',
६. विरामों में केवल पूर्ण विराम " । " मिलता है वह भी कहीं-कहीं और लेखक की रूचि के अनुसार,
७. बीच के वर्ण छोड़ने की प्रणाली अ–सं–म–त्ना थ ग्रा र क अथ 'संग्राम रत्नाकर'
८. तालव्य 'श' के स्थान में प्रायः दंत्य 'स',
९. इकारान्त और ईकारान्त तथा उकारान्त और ऊकारान्त का मिश्रण।

इ. मत्स्य-प्रदेश के अंतर्गत पाई गई हस्तलिखित प्रतियों में बहुत साम्य है—उनके लिखने की पद्धति, अक्षरों की बनावट लगभग एक प्रकार की हैं। नवीन प्रतियों में 'ख', 'ऐ' आदि रूप मिल जाते हैं।

ई. कहीं-कहीं चित्रमय प्रणाली का भी प्रयोग हुआ है। वर्णों का रूप चिड़ियों आदि से निर्मित किया गया है और अनेक प्रकार की स्याही लगाई गई है। कहीं-कहीं वर्णों को 'दोहरा' लिख कर उन्हें रंग-बिरंगा किया गया है।

उ. रचयिता, लिपिकार, संवत्, स्थान, लिखवाने वाले का नाम, ग्रन्थ का नाम, विषय निर्देश आदि देने की अत्युत्तम प्रणाली जिनसे किसी भी शोध करने वाले को अमूल्य सहायता मिलती है।

परिशिष्ट १

कवि-नामानुक्रमणिका

रचनाओं आदि के उल्लेख सहित

१. अकबर – १७२।

२. अखैराम – १९८, २०२, २०५, २४८। भरतपुर के महाराज सूरजमल के आश्रि ।

१. विक्रमविलास, सं० १८१२, सिंहासनबत्तीसी की कथा। २. गंगामहात्म्य, सं० १८३२, २० प्रकरणों युक्त। ३. स्वरोदय, शिवतंत्रोक्त ज्ञान, श्लोकों के अनुवाद सहित।

३. अजुध्याप्रसाद 'काइथ' – १५१। भरतपुर-निवासी संवत् १८५० के लगभग।

रसिकमाला, सं० १८७७, स्वामी हरिवंशजी की परचई, दोहाचौपाई छंदों में है।

४. अमृतकौर, रानी – १०५, २६४।

५. अलीबख्श – ११, १६, १३५, १६८, २६४। मंडावर के 'प्रिंस' या राव : रैगड़ मुसलमानों में से। हिन्दी-उर्दू दोनों में कविता लिखते थे।

कृष्णलीला : भगवान कृष्ण की अनेक लीलाओं का सरस वर्णन।

६. उदैराम – ७, १२६, १५४, १५७, १८८, २१०, २६६, २६८। समय १८३४ से १८६२। २४ ग्रन्थों के रचयिता।

१. हनुमान नाटक, २. अहिरावण-वध-कथा, ३. रामकरुण-नाटक, ४. सुजान-संवत्, ५. गिरिवरविलास, आदि।

७. उम्मेदराम बारहठ – २०।

८. उमादत्त 'दत्त' – २४, १५३, १७८, १९१।

१. दत्त के कवित्त, विभिन्न विषयों पर लिखित। २. यमन-विध्वंस प्रकास (सं० १९२४) राजपूतों से जागीरें छीनने का प्रसंग।

९. करमाबाई – २३।

१०. कलानिधि – ३५, ३८, ५०, ५७, ५९, ९०, २२९, २४६, २४८, २५५, २५६, २६५, २७०। अनेक ग्रन्थों के रचयिता और सोमनाथ के समकालीन तथा उनके सहयोगी। वैर के राजा प्रतापसिंह के आश्रित।

१. अलंकार कलानिधि, अलंकार का ग्रंथ भोगीलाल की आज्ञा से रचित। २. उपनिषद्सार, उपनिषद्-ग्रंथों पर गद्य की पुस्तक। ३. दुर्गामाहात्म्य, दुर्गा-सप्तशती का अनुवाद। ४. रामगीतम्, गीत-गोविन्द-शैली पर लिखित ग्रन्थ।

११. कासीराम – ४२।

१२. किशोर – ४२।

१३. किशोरी रानी – ४।

१४. कृष्ण कवि – ३८। मधुपुरी (मथुरा) के निवासी और सूरजमल के आश्रित।

१. बिहारीसतसई की टीका : 'मल्ल' के हेतु लिखित। 'मल्ल' से तात्पर्य महाराजा सूरजमल से है। २. गोविन्दविलास : रीतिकाव्य का ग्रन्थ।

१५. गंगेस – २०३।

१६. गणेस – २०६, २०९। बलवंतकालीन कवि।

विवाहविनोद, संवत् १८८९, डीग में कटारे वाले महलों में आयोजित श्री बलवंतसिंहजी के विवाह का वर्णन।

१७. गुलाम मोहम्मद – ११, १२५, १६७, २६९। रणजीतकालीन प्रेमगाथाकार।

प्रेमरसाल : सूफी कवियों की प्रेम-गाथा-पद्धति पर लिखा भक्ति और प्रेम-मिश्रित ग्रंथ।

१८. गोकुलचन्द्र दीक्षित – ४, ९१। ब्रजेन्द्रवंशभास्कर।

१९. गोपाल कवि – ६९।

२०. गोपालसिंह – १८, २६४। संग्रहकर्त्ता।

२१. गोवर्द्धन – २४७, २४६, २४८, २४९, २६२। महाभारत का अनुवादकर्ता, अलवरनिवासी।

कर्णपर्व : भाषा में–भाषा पर अलवरी प्रभाव है। अनुवाद, दोहा-छप्पय-पद्धति में। स्थान-स्थान पर गद्य का प्रयोग।

२२. गोबिन्द – ३८, २७०। जयपुर-निवासी।

गोबिन्दानंदघन, संवत् १८५८ का लिखा सुन्दर रीतिग्रंथ। अलवर तथा भरतपुरमें अनेक प्रतियां उपलब्ध हैं।

२३. घनस्याम – ४२।

२४. घनानंद कवीश – २३१, २४३, २४५।

२५. चतुर – १०५, १०६, १०७। चतुर नाम से अनेक पुस्तकों की रचना।

१. तिलोचन लीला : लक्ष्मणजी को इष्ट मान कर की गई कविता। २. पद मंगलाचरण, वसंत होरी : लक्ष्मण-उर्मिला संबंधित श्रृंगार।

२६. चतुरप्रिया – १०५।

२७. चतुरभुजदास – १५, १६७, २४८, २६४। कायस्थों में निगम कुल में उत्पन्न हुए।

मधुमालती कथा : इसकी कई हस्तलिखित प्रतियां मिली जिनमें दो सचित्र भी हैं।

२८. चतुर्भुज मिश्र – १८। अलंकार-आभा।

२९. चन्द्रशेखर – २३। हमीरहठ (सं० १९०२) के कर्ता।

३०. चरनदास – १६०, १६२, १६५, २६३, २६७। उत्तरी भारत के प्रसिद्ध महात्मा : अलवर राज्य में डहरा के निवासी। शुकदेव के शिष्य। भार्गवों-द्वारा मान्य।

१. ज्ञानस्वरोदय : आध्यात्मिक तथा दार्शनिक ग्रंथ।
२. भक्तिसागर : सम्पूर्ण ग्रंथों का संग्रह, प्रकाशित।

३१. जयदेव – २४, १४३। अलवर-राज्याश्रित।

१. राधिकाशतक : १०० कवित्त, प्रकाशित।

२. रामदल रासा, ३. प्रताप रासा, ४. महल रासा, ५. मानस की टीका आदि अनेक ग्रंथों के रचयिता।

३२. जयसिंह – २१९। अलवर के महाराज।

१. मेवाती गीतमाला : इनकी आज्ञा से किया गया संग्रह-ग्रंथ। २. शिकार-साहित्य : अनेक स्फुट छंदों में समय-समय पर लिखा संग्रह। 'वहशी' नाम से उर्दू में भी कविता करते थे।

३३. जाचीक जीवण – २४, १७०, १७२, १७८, १८१, १९७, २३६, २६८। अलवर के प्रताप-कालीन कवि।

प्रतापरासो : ऐतिहासिक सामग्री से परिपूर्ण ग्रंथ। राम से प्रतापसिंहजी तक का वर्णन।

३४. जीवाराम – ७, २६, १७६, २१९, २२०, २४८, २५२। बलवंतकालीन।

१. सभाविलास : (१८९६) राजा के विनोदों का वर्णन। २. अक्कल नामा : नीति की कहानियाँ तथा सामान्य ज्ञान।

३५. जुगल – १७, ३५, ३८, ७४, ८१, ८२, २७०। रीतिकार।

रस कल्लोल : प्रथम तरंग मात्र प्राप्त। भरत के मत पर रस का निरूपण।

३६. जोधराज – २३। नीमराणा के श्री चन्द्रभान हेतु लिखित। हमीर-रासो।

३७. दयादास – १६२।

३८. दयाबाई – १२५, १६०, १६२, १६८। महात्मा चरनदासजी की शिष्या।

१. दया बोध (संवत् १८१८) : दयादासि नाम भी मिलता है। २. विनय-मालिका : प्रकाशित।

३९. देविया – १८, १७४, २४८, २५७, २६२, २६४। ये रस-आनन्दजी के खवास थे।

हितोपदेश का अनुवाद। संवत् १८९१, पंचम कथा तक। कुछ बिखरी कविता भी प्राप्त हुई।

४०. देवीदास – ६, १८, ६६, ९७, १७२, २२९। करौली के रतनपाल भोया के आश्रित। ये आगरा निवासी थे किन्तु प्राय: करौली में रहते थे।

१. प्रेम-रतनागर : प्रेम की उत्कृष्ट व्याख्या। २. राजनीति : हितोपदेश पर आधारित।

४१. धीरज – १११।

४२. नन्द – ११४। संस्कृत-हिन्दी के विद्वान्।

नाम मंजरी : पर्यायवाची शब्दों का अमरकोश के समान संस्कृत गर्भित ग्रंथ।

४३. नल्लसिंह – २२। विजयपाल रासो के कर्ता।

४४. नवलसिंह – ११४। रास पंच्चाध्यायी के कर्ता।

४५. नवीन – ९१, ९२। ये मालवा के निवासी थे किन्तु भरतपुर आते-जाते रहते थे।

१. नेहनिदान : प्रेम का सुन्दर विवरण। २. प्रबोधरससुधाकर, ३. रस तरंग आदि ग्रंथ।

४६. नीलकंठ – २०६।

४७. परसिद्ध कवि – २९, १७८, १९५।

४८. पंगु कवि – १८ कृष्णगायन ।

४९. फितरत – ११, २३७, २३८ । यह इनका उपनाम प्रतीत होता है ।

सिंहासन बत्तीसी, समय संवत् १८९७ : पोथी उर्दू की लिखी हिन्दी में ।

५०. बख्तावरदान बारहठ – २० ।

५१. बख्तावरसिंह – १५, १००, १०३, २६४ । अलवर के महाराज ।

१. दानलीला : (संवत् १८२५) । २. श्रीकृष्ण-लीला : कृष्ण और राधा के नखसिख तथा क्रीड़ा आदि का वर्णन ।

५२. बटुनाथ – १८. ११४, ११५ । राग रागनियों के ज्ञाता ।

रास पंचाध्यायी : संवत् १८९६ । प्रकृति वर्णन हरिऔध से मिलाने योग्य ।

५३. बलदेव – १७, १२९, २६४, २६५ । भरतपुर-निवासी, खंडेलवाल वैश्य ।

विचित्र रामायण : समय संवत् १९०३ । बाल्मीकि रामायण के आधार पर १४ अंकों में रामकथा का वर्णन । रामचंद्रिका के समान छंद-अलंकार आदि ।

५४. बलदेवसिंह – १००, २६४ । भरतपुर के महाराज ।

पद संग्रह : राम और लक्ष्मण को इष्ट मान कर पद लिखे हैं । इनकी रानी भी कविता करती थीं ।

५५. बलभद्र – ३८, ६८, २६४, २६५ । महाराज महीसिंह के आश्रित ।

५६ बलवन्तसिंह – १७ ।

५७. बुद्धसिंह – ५९ । महाराजा बूंदी ।

५८. ब्रजचन्द – १८, ७७ । बलवन्तसिंह के आश्रित ।

शृंगार तिलक : संवत् १८९५ ।

५९. ब्रजदूलह – १०० ।

६०. ब्रजवासीदास – १३७ । ब्रजविलास के कर्ता ।

६१. बालगोविंद गुसांई – २४८ ।

६२. भोगीलाल – ९, ३८, ६५, ६७, ६८, ९०, ९१, १०१, २६५, २७० । बख्तावरसिंह के आश्रित ।

बखत विलास : नायक नायिका वर्णन । उच्चकोटि का रीति ग्रंथ, कवि और राजा की वंशावली सहित ।

६३. **भोलानाथ** – १८, १०९ । महाराजकुमार नाहरसिंह के आश्रित ।

लीला पच्चीसी : प्रकृति-चित्रण पर सुन्दर छंदों सहित ।

६४. **मणिदेव** – १८ । महाभारत के कुछ पर्वों का अनुवाद ।

६५. **मनीराम** – ६८, ६९, २६४, २६५ । बलभद्र के सिखनख पर प्रथम टीकाकार ।

सिखनख की टीका : संवत् १८४२ । यह इस ग्रंथ की सर्वप्रथम हिंदी टीका है, जो अभी तक अज्ञात थी ।

६६. **मान** – १०४ । शिददान के आश्रित ।

शिवदान चन्द्रिका : रीतिग्रंथ । अनेक स्थानों पर बरवै छंद का प्रयोग । शुद्ध संस्कृत-गभित भाषा ।

६७. **मुरलीधर** – १६ । यह भट्ट थे । इनका उपनाम प्रेम था । राधाकुंड से आये और अलवर में कविता की ।

श्रृंगार-तरंगिणी : समय १८५० ।

६८. **मोतीराम** – १८, ३५, ३८, ७४, ७८, २७० । संभवतः वृन्दावन के निवासी ।

व्रजेन्द्र-विनोद : समय १८८५ विक्रमी । रीति संबंधी अनेक विषयों का सुन्दर कविता में विवेचन ।

६९. **रतनपाल** – १००, २६४ । करौली महाराज ।

७०. **रस आनन्द** – १५, १८, ३५, ३८, ६८, ७४, ८४, ८६, ९०, ९१, ११७, १५०, २४६, २५०, २५७, २६२, २६४, २७० । भरतपुर का प्रसिद्ध कवि ।

१. संग्राम रत्नाकर : ४७४ पत्रों का वृहद् ग्रंथ । २. रसानंदघन : २० पत्रों की अधूरी पुस्तक । ३. सिखनख : संवत् १८९३, विस्तृत वर्णन. ४ गंगा भूतल आगमन कथा : इसकी कई प्रतियां मिलीं । ५. व्रजेन्द्र-विलास : संवत् १८९५, ७ विलासों सहित । ६. हितकल्पद्रुम : 'अनवार सुहेली' का व्रजभाषा-पद्यानुवाद ।

७१. **रसनायक** – १३८ ।

विरह विलास : समय संवत् १७८२ । गोपियों के प्रसंग में सूर का अनुकरण । दोहा, कवित्त तथा सवैया छंद का प्रयोग ।

७२. **रसरासि** – १४१ ।

रसरासि पचीसी, (उद्धव पचीसी) : राज्याज्ञानुसार लिखित ।

७३. **रामकृष्ण** – १८ । दानलीला ।

७४. राम कवि – १७, ३५, ३८, ७४, ११६, १७४, २५६, २५७, २७० । राज्याश्रित ।

१. हितामृत लतिका : हितोपदेश पर आधारित पुस्तक । २. अलंकार मंजरी : अलंकार पर लिखित पुस्तक । ३ छंदसार : ६ सर्ग ऐतिहासिक सामग्रीयुक्त । ४. विरह पचासी : एक खर्रे के रूप में ।

७५. रामजन – १२५ । निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत ।

गोपीचन्दजी कौ वैराग-बोध : कृति में 'रामजन' और 'हरिजन' शब्द विचारणीय है ।

७६. रामनाथ बारहठ – १८ ।

७७. रामनारायण – ६, १३३, १४३, १४४ । जसवंत कालीन, गुसांई ।

१. राधा मंगल : सवत् १६५३, यह ११ सर्ग का प्रबन्ध काव्य है । २. पार्वती मंगल : किसी पुजारी के पठनार्थ लिखी पुस्तक ।

७८ रामलाल – २०६ । विनयसिंह के आश्रित ।

विवाह विनोद : विनयसिंहजी की लड़की के विवाह का वर्णन ।

७९. रामप्रसाद शर्मा – १५१ । अलवर के सेनापति पदमसिंह के आश्रित ।

गंगा भक्त तरगावलि : यमराज आदि की शिकायत के रूप में गंगा की प्रार्थना ।

८०. रूपराम – १७ । ज्योतिष ग्रन्थ ।

८१. ललिताप्रसाद – १८ । रामशरण ग्रन्थ ।

८२. लक्ष्मीनारायण – १७ । गंगालहरी ।

८३. लाल – ४२ ।

८४. लालदास – १५, २२, २४, १२४, १६६, १६८, २६३ । लालदास की वाणी ।

८५. विनयसिंह – ८, ३७, २३३, २६४, २६७ । अलवर नरेश ।

भाषा भूषण की टीका : व्रजभाषा गद्य में की गई उत्कृष्ट टीका ।

८६. वीरभद्र – ११२, १३६, १३७ । ये गोवर्धन के पंडे थे ।

१. फागु लीला : संवत् १८८७ अमृतकौरजी के पठनार्थ । २. व्रजविलास : संवत् १९११ दोहा, चौपाई, छंद में व्रजवासीदास के अनुकरण पर ।

८७. वैद्यनाथ – १७, २०३ । कविवर सोमनाथ के वंशज ।

विक्रम चरित्र : संवत् १८८४, विक्रम द्वारा ५ खंड जीतने की कथा ।

८८. व्रजचंद – ७४ । शृंगार तिलक ।

८९. व्रजदूलह – १८ । पद-संग्रह ।

९०. व्रजेश – १८, १३३ । बलवंत आश्रित ।

रामोत्सव : इसमें दशहरे का वर्णन भी है । जन्म-उत्सव तथा बधाई आदि भी हैं ।

९१. **शिवबख्शदान** – १२, १६, २०, १७१, २१०, २१४, २१६। अंग्रेजों से प्रभावित।

अलवर-इतिहास : संवत् १८९४, ऐतिहासिक तथा प्रामाणिक ग्रंथ। अनेक गोपनीय रहस्यों का उद्घाटन।

९२. **शिवराम** – ३८, ४४, ४८, ४६, २७०। महाराजकुमार सूरजमल के आश्रित।

नवधा भक्ति-राग-रस-सार : समय संवत् १७६२, राग-रागनियों का सुन्दर स्वरूप। ३६००० रुपयों से पुरस्कृत ग्रंथ।

९३. **श्रीधरानंद** – १७। बलदेव कालीन। इन्हें कवीन्द्र की उपाधि मिली थी।

साहित्य-सार-चिन्तामणि : काव्य-प्रकाश पद्धति पर गद्ययुक्त रीति ग्रंथ।

९४. **सहजोबाई** – १२५, १६०, १६८। स्वामी चरणदास की शिष्या, हरप्रसाद की पुत्री, अलवर के डेहरा गांव में उत्पन्न।

सहजोप्रकाश : (संवत् १८२५) प्रकाशित।

९५. **सिरोमन** – ४२।

९६. **सूदन** – ९, ११, २४, १७२, १७८, १८०, १८१, १८३, १८५, १८६ १८७, १९७, २३६, २४८, २५०। भरतपुर का सुप्रसिद्ध कवि।

सुजान चरित्र : कुछ लोग सोमनाथ और सूदन को एक ही व्यक्ति मानते हैं किन्तु यह प्रमाणित नहीं होता।

९७. **सेनापति** – ४२।

९८. **सेवाराम** – १८। नलदमयन्ती चरित्र।

९९. **सोभनाथ** – २२०, २२१, २३६। अलवर निवासी थे। इनके गुरु रसरासि थे।

सभाविनोद : पूरी पुस्तक दोहों में है।

१००. **सोमनाथ** – ९, ३५, ३६ ३७, ४२, ४३, ५०, ५२, ५३, ५४, ५५, ५७, ९०, ९८, १४७, १५८, १६५, १७८, १८६, २०३, २०५, २०६, २३२, २३५, २४६, २४८, २५५, २६२, २६५। प्रतापसिंह के आश्रित।

१. सुजानविलास, २. भागवत दशमस्कंध टीका, ३. प्रेम पचीसी, ४. ध्रुव-विनोद, ५. महादेवजी को ब्याहुलो, ६. रसपीयूषनिधि, आदि-आदि।

१०१. **हरिनाथ**—२८, ७०, ९०, १७४, १७५, २७० विनयसिंहजी के आश्रित।

१. **विनय प्रकाश :** (संवत् १८८९) उच्चकोटि का रीति-ग्रंथ। २ **विनय विलास :** (संवत् १८७५) राजनीति संबंधी पुस्तक।

परिशिष्ट २

ग्रन्थनामानुक्रमणिका

२५. गंगाभक्त तरंगावली – १५०, १५१, रचयिता रामप्रसाद शर्मा, १९३५ ।
२६. गंगाभूतल आगमन कथा – ८४, १५०, रसानंद कृत ।
२७. गंगालहरी – १७, लक्ष्मीनारायण कृत ।
२८. छंदसार – ७४, ७५, ८७, रामकवि, बलवंतसिंहजी के हेतु ।
२९. जानकी मंगल – १३३, २६६, रामनारायण कृत ।
३०. जानकी मंगल – ९, रचयिता हनुमंत कवि, संवत् १९३४ ।
३१. तिलोचन लीला – १०५, रचयिता चतुर पीव ।
३२. दयाबोध – २१, १६०, १६२, रचयिता दयाबाई, संवत् १८१८ ।
३३. दानलीला – १०३, अलवर नरेश-बख्तावरसिंह ।
३४. दानलीला – रचयिता भूधर संवत् १८५० ।
३५. दानलीला – १६१, चरणदास कृत ।
३६. दानलीला – १८, रामकृष्ण कृत ।
३७. दुर्गामहात्म्य – ५९, १५३, १५८, रचयिता कलानिधि, संवत् १७९० ।
३८. देवशतक – ९१, देवकृत ।
३९. ध्रुव विनोद – १४७, १५८, रचयिता सोमनाथ, संवत् १८१२ ।
४०. ध्वनिप्रकरण – २६५ ।
४१. नखसिख – ६८, ७० ।
४२. नलदमयन्ती चरित्र – १८, सेवाराम कृत ।
४३. नवधा भक्ति – ४४, २६४, रचयिता शिवराम 'कविराज', संवत् १७६२ ।
४४. नेह निदान – ९१, ९६, २६५ रचयिता 'नवीन', संवत् १८९६ विक्रमी ।
४५. पद्यमुक्तावली – ५९, कलानिधि कृत ।
४६. पद मंगलाचरण बसंत होरी – १०५, रचयिता 'चतुर', वल्देव काल ।
४७. पार्वती मंगल – ९, १२४, १३३, १५०, २६६, रचयिता गुसाई राम-नारायण, संवत् १९३८ ।
४८. पिंगल ग्रन्थ – ४०, गोविन्द कवि कृत ।
४९. प्रताप रासो – २४, १७०, १७२, १७८, १८०, १८१, १९१, १९७, २१०, २६६, २६८, रचयिता जाचीक जीवण, संवत् १९०४ ।
५०. पृथ्वीराज रासौ – १८२ ।
५१. प्रबोधरस सुधासार – ९२, नवीन कृत ।
५२. प्रशस्ति मुक्तावली – ५९, कलानिधि कृत ।
५३. प्रेम पचीसी – ९८, ९९, १६५, सोमनाथ ।
५४. प्रेमरतनागर – ९६, २६५, देवीदास ।

५५. प्रेमरसाल – ११, १६७, २६६, गुलाम मुहम्मद, रणजीतकाल ।
५६. फागुलीला – ११२, रचयिता वीरभद्र, सं० १८८७ ।
५७. बखतविलास – ६५, २६५, रचयिता भोगीलाल ।
५८. बलवंतसिंहजी का विवाह – २०६, गणेश कृत ।
५९. बारहमासी – ८४, रसानंद कृत ।
६०. ब्रजेन्द्र विनोद – ७४, ७८, ८१, रचयिता मोतीराम, सं० १८८५ ।
६१. ब्रजेन्द्रवंशभास्कर – ४, ६१, रचयिता पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित ।
६२. बैरागसागर – २४१ ।
६३. भक्तिसागर – १६०, चरनदास की बानी । प्रकाशित ।
६४. भागवतदशमस्कंध – १५८, २५५, रचयिता सोमनाथ ।
६५. भाषाभूषण की टीका – ८, २३३, २६७, २७१, टीकाकार विनयसिंह ।
६६. भोजप्रकास – ८४, रसानंद कृत ।
६७. मखदूम साहब ग्रन्थ – १५ ।
६८. मधुमालती की कथा – १६७, २४८, रचयिता चतुर्भुजदास कायस्थ ।
६९. महल रासो – २४ ।
७०. महादेवजी कौ ब्याहुलौ – २६, १२४, १४७, १५०, १६८, २६६, रचयिता सोमनाथ सं० १८१३ ।
७१. यमन विध्वंस प्रकास – २४, १७०, १७८, १९१, १९७, रचयिता दत्तकवि, सं० १९२४ ।
७२. युगलरसमाधुरी – ४०, गोविन्द कवि कृत ।
७३. रसकल्लोल – १७, ७४, ८१, जुगल कवि, बलवंतकाल ।
७४. रसदीपका – ८३ ।
७५. रसपीयूषनिधि – ३५, ३६, ५०, ५४, ८८, ९०, २३२, २६५, रचयिता सोमनाथ, सं० १७९४ ।
७६. रसरासि-पचीसी – १४१, रचयिता कवि रसरासि, प्रतापकाल ।
७७. रसानन्दघन – ८४, ११७, ११८, रचयिता रसआनंद सं० १८९५ ।
७८. रसानन्दविलास – ८४, रसानंद कृत ।
७९. रसिकगोविन्द – ४०, गोविन्द कवि कृत ।
८०. राधामंगल – ६, १२४, १३३, १४३, १४४, १४५, १६८, २६६, २६९, २५, रचयिता गोसाईं रामनारायण १९३३ ।
८१ राधिका-शतक – १४३, रचयिता जयदेव, सं० १९५० ।
८२ रानी केतकी की कहानी – २३६, इंशा अल्लाखां कृत ।

११२. व्रजविलास – १३६, १३७, वीरभद्र ।
११३. व्रजविलास – १३७, व्रजवासीदास ।
११४. व्रजेन्द्रविनोद – ७४, मोतीराम कृत ।
११५. व्रजेन्द्रप्रकास – ८८ ।
११६. व्रजेन्द्रबिलास – ३५, ७४ ८४, ८६, रचयिता रसानंद, संवत् १८९५ ।
११७. वृत्तमुक्तावली – ५९, कलानिधि कृत ।
११८. वृन्दावनशतक – २१४, रचयिता ध्रुवदास ।
११९. शिवदानचंद्रिका – १०४, रचयिता कवि 'मान', समय संवत् १९०८ ।
१२०. शंकरशरण – १८, भोलानाथ कायस्थ कृत, शिवपुराण का अनुवाद ।
१२१. शृंगारतिलक – १८, ७४, ७७ रचयिता 'व्रजचन्द्र' संवत् १८९५ ।
१२२. शृंगारमाधुरी – ५९, ६० रचयिता 'श्रीकृष्ण भट्ट' कलानिधि ।
१२३. शुकबहोतरी – २६१ ।
१२४. षोडश शृंगार वर्णन – ८४ रसानंद कृत ।
१२५. षड्ऋतु – २१४, शिवबख्शकृत ।
१२६. सभाविनोद – २२०, २२२ कवि सोभनाथ, अलवर, संवत् १८२९ ।
१२७. समयप्रबन्ध – ४० गोविन्द कवि कृत ।
१२८. सरस रसास्वादः – ५९ कलानिधि कृत ।
१२९. सभाविलास – २१८, २१९, २२० रचयिता जीवाराम चौबे, १८९६ ।
१३०. सहजप्रकाश – १६० सहजोबाई कृत ।
१३१. साहित्यसार चिंतामणि – २३१, २४३ रचयिता 'श्रीधर कवीन्द्र' ।
१३२. सिखनख की टीका – ६८, २६४ मनोराम कृत, संवत् १८४२ ।
१३३. सिखनख – ६८, ७४, ८४, ८६, ८८ रचयिता 'रसानंद', संवत् १८९३ ।
१३४. सिंहासन बत्तीसी – १९८ कवि अखेराम ।
१३५. सिंहासन बत्तीसी – ११, १७१, २३७, २३८, २४७, २६०, २६१, २७१ लेखक 'फितरत', १८९७ ।
१३६. सुजान चरित्र – ९, ११, २४, १६९, १७२, १७८, १८०, १८१, १८३, १८६, १८७, १९१, १९७, २१०, २४०, २५०, २६६, २६८ सूदन कवि, सूरजमल का चरित्र ।
१३७. सुजानविनोद – ९१ देवकृत ।
१३८. सुजानविलास – २००, २०५, २६० रचयिता 'सोमनाथ' ।
१३९. सुजानसंवत – १८८, २१०, २११, २१२, २१३, २६८ रचयिता उदयराम, संवत् १८२० ।

परिशिष्ट ३

कुछ अन्य कवि

१. ब्रह्मभट्ट पूर्णमल्लजी

ये अलवर नरेश महाराव राजा विनयसिंहजी के राजकवि थे। इनका जन्म संवत् १८९७ में हुआ। विद्याध्ययन के हेतु अपने ग्राम पीपलखेड़ा से काशी गए और संस्कृत का अध्ययन किया। इनका लिखा कोई ग्रन्थ तो नहीं मिलता, वैसे इनकी स्फुट कविताएं काफी मिलती हैं जो उत्सवों पर राजदरबारों में सुनाई जाती थीं। ये संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में कविता करते थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ग्वाल से इनका काव्य-विवाद हुआ था। अपनी पराजय स्वीकार करते हुए ग्वाल कवि ने कहा था—'इस समय सरस्वती आप पर ही प्रसन्न हैं।' उस समय की समस्यापूर्ति का एक उदाहरण—

समस्या— 'कैसे कै बखान करूं मेरे तो है एक जीभ'

पूर्ति— कीन्हों नाहिं वेद पदे भयौ बलमीक तै न,
जन्म्यौ न नाभि हरिदारन असुर ईभ।
भाष्यकार नाहि पुनि कहि न पुराण कथा,
जागत जगत जस पावन सुरसरीभ॥
पूरण प्रमित होत रजकण हू की कभू,
देव मग देख दक्ष गिनती गिनै गुनीभ।
गुनन अधिकान अप्रमाण भगवान तब,
कैसे कै बखान करूं मेरे तो है एक जीभ॥

विनयसिंहजी की प्रशंसा में कहा गया संस्कृत श्लोक—

अहनि नो रविणा परिभूयते, हसति नेन्दुरिवासितपक्षके।
चरमवारिधिवारि न मज्जति, जयति ते विनयेशयशः शशी॥

बसन्त की बहार—

ललित लवंग लवलीन मलयाचल की,
मंजु मृदु मारुत मनोज सुखसार है।
मौलसिरी मालती सुमाधवी रसाल मौर,
मौरन पै गुञ्जत मिलिन्दन कौ भार हैं।
कोकिला कलाप कल कोमल कुलाहल कै,
पूरण प्रतिच्छ कुहू कुहू किलकार है।
बाटिका बिहार बाग वीथिन विनोद बाल,
विपिन बिलोकिवो बसन्त की बहार है।

२. ठाकुर बिडदसिंह 'माधव'

यह किशनपुर के जागीरदार थे। इनका जन्म संवत् १८९७ में हुआ। कविराव गुलाबसिंहजी के पास विद्याध्ययन किया और उनकी कृपा से संस्कृत-हिन्दी के अच्छे पंडित हो

गए। गुरु के पास समस्त काव्य-अंगों का अध्ययन किया और काव्य-कला में अतिप्रवीण हुए। यह महाराजा विनयसिंहजी के सभासद थे। कौंसिल के समय भी यह उनके मुसाहिब थे। कवि जयदेव ने इनसे ही काव्य-कला सीखी। अलंकार, ऋतुवर्णन, प्रकृतिनिरीक्षण में इनकी विशेष अभिरुचि थी। अनुप्रास की ओर भी इनका झुकाव था। शृंगार रस इन्हें विशेष प्रिय था और उसके दोनों पक्ष इनकी कविता में मिलते हैं। सं० १९२४ में इनका शरीर शान्त हुआ। कवि ईश्वरीसिंह ने अपने काव्य में 'माधव' कवि की अनेक बातों का उल्लेख किया है। लिखते हैं—

१ अलंकार रस आदि काव्य के सकल अंग पढ़ि।
भे प्रवीण सब भांति शवित रचना में बहु बढ़ि॥
वर कविता नर वानि करत 'माधव' स्वनाम धरि।
अलवर जनपद मांहि नाहि कोऊ जो करे सरि॥
अड़सठ्ठ बरस की आयु अब स्नान करत नित शीत जल।
पुनि षोड़शाब्द मोते वड़े तोहू सकल इन्द्रिय सबल॥

२ तनमन तैं विनयेश नृपति की सेवा बहु किए।
तेरह हय जागीर ग्राम मय पटा माहि दिए।
पुनि शिवदान भुग्राल भये बिनयेश सुवन जब।
अहद अजन्टी मांहि भयौ मन जनक मुसाहिब॥

'माधव' कवि की रचना—

१ इकन्त विलोकि अनन्दित होय दुकूलन दूर किए अति प्रीति।
समाधि के हेत विधान अनेकन साधत आसन प्रेम प्रतीति॥
मिल्यो गुरु ए री विदेह मनो दई 'माधव' तानै अद्वैतता नीति।
निरन्तर सीकर मंत्र जपै लखी सब भोग में जोग की रीति॥

२ नहीं गाजत बाजत दुंदभि है चपला न कढी तलवार अली।
धुरवा न तुरंग ये 'माधव' चातक मोर न बोलत वीर बली॥
जलधार न जार शिलीमुख कौ घन है न मतंगन की अवली।
बरसा न बिचारि भटू शिव पै सज साज मनोज की फौज चली॥

३ कविराव गुलाबसिंह

इनका जन्म संवत् १८८७ है। इन्होंने संस्कृतकाव्य का गम्भीर अध्ययन किया और उसके उपरांत हिन्दी भाषा की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया। महाराव राजा शिवदानसिंहजी ने इन्हें अपना मुख्य राजकवि नियुक्त किया। बूंदी के प्रसिद्ध कवि सूर्यमल्ल से इनका संस्कृत काव्य पर विवाद हुआ और थोड़े समय तक आपस में विचार परिवर्तन और आलोचना-प्रत्यालोचना होती रही। अन्त में इन्होंने सूर्यमल्लजी के हृदय पर गम्भीर प्रभाव डाला और दोनों मित्र बन गए। सूर्यमल्लजी से प्रशंसा सुन कर बूंदी नरेश रामसिंहजी भी इन पर बहुत मुग्ध हुए और कुछ दिनों के पश्चात् इन्हें बूंदी बुला लिया गया और यह वहीं रहने लगे। बूंदी नरेश इनका बहुत आदर करते थे। 'रसिक कवि-सभा' कानपुर की ओर से इन्हें 'साहित्य-

भूषण' की उपाधि मिली थी। इनके लिखे ग्रंथों की संख्या ३४ बताई जाती है, जिसमें नीति, कृष्णलीलाएं तथा देवी-देवताओं संबधी कविताएं आदि हैं। संवत् १९५८ में आपका देहावसान हुआ। अलवर के अनेक कवि इनके शिष्य थे। इनके जीवन के पिछले ३० वर्ष बूंदी में व्यतीत हुए, किन्तु कविता का आरम्भ अलवर में ही किया तथा अलवर भूमि और राजाओं का मनोहर वर्णन भी किया—

१ बटत बधाई आज सुत के उछाह मांझ,
पाई कविवृन्द नै अनन्द सन्मान में।
दीनै घने गांव कंकन दुशाल माल,
घूमते मतंग अंग फूले सुभ थान में।
सुकवि गुलाब जमि एक सें कहा लौं कहें,
कीरति तिहारी अति छाई हिन्दुवान में।
नन्द विनयेश के प्रतापी शिवदानसिंह,
या समै न आन कोउ तो समान दान में॥

२ दाजन दै दुरजीवन कौ अरु लाजन दै सजनी कुलवारे।
साजन दै मन कौ नवनेह निवाजन दे मन मोहन प्यारे॥
गाजन दै ननदीन 'गुलाब' विराजन दै उर में गनु भारे।
भाजन दै गरु लोगन के डर बाजन दे अब नेह नगारे॥

इनकी शिष्य परम्परा बहुत विस्तृत है। अलवर में इनके शिष्य किशनपुरे के ठाकुर विड़दसिंह और ईश्वरीसिंह थे। घंबाला के ठाकुर नरूका हनवन्तसिंह भी इनके शिष्य थे। बूंदी में चौबे जगन्नाथ जी इनके प्रमुख शिष्य थे।

४. चन्द्रकला बाई

यह कविराव गुलाबसिंहजी की दासीपुत्री थीं। कविराव जी के साहचर्य से इन्हें समस्यापूर्ति में विशेष प्रवीणता आ गई और हिन्दुस्तान के अनेक प्रसिद्ध नगरों में जा-जा कर कवि-सभाओं में समस्याओं की पूर्ति किया करती थीं। अनेक स्थानों से इन्हें मानपत्र मिले। सन् १८९० में बिसवा जिला सीतापुर से अवध की कविमंडली द्वारा 'वसुंधरारत्न' की पदवी मिली। इनके लिखे चार ग्रन्थ बताए जाते हैं—

१. करुणाशतक
२. रामचरित्र
३ पदवीप्रकाश
४ महोत्सवप्रकाश

यह पहेलियां भी लिखा करती थीं। जैसे—

कारौ है पै काग न होई।
भारौ है पै शैल न होई॥
करै नांक सौ कर कौ कार।
अर्थ करौ कै मानौ हार॥ (हाथी)

रामसिंह जी की पुत्री पर लिखा एक छंद देखिए—

बूंदीनाथ प्रबल प्रतापी रामसिंह जू की,
तनया सुशील सनी परदुख हारी है।
पति सरदारसिंह परम प्रवीन पाये,
गुन रिझवार तब पूरे हितकारी हैं।
'चन्द्रकला' सकल कलान में निपुन आप,
मति माँहि शारदा सी नीकैं निरधारी है।
भाग अहिबात तेरो सदा ही अचल रहौ,
जो लौं शिव मस्तक पै गंगा सुखकारी है।।

इनका जन्म सं० १६२३ में हुआ था। इनकी स्मरणशक्ति बड़ी तीव्र थी। हिन्दी के 'रसिकमित्र', 'काव्यसुधाकर' आदि पत्रों में इनकी कविताएं छपती थीं। इनकी भाषा सालंकार, सरल तथा व्यवस्थित है। कला की दृष्टि से इनकी कविता बहुत श्रेष्ठ है।

५. कृष्णदास

कृष्णदास जी की लिखी दो पुस्तकें मिलीं—१ रसविनोद और २ भक्ततरंगिनी (स्वामिनी जी का प्रथम मिलाप)। इन कविजी का कविताकाल भरतपुर के महाराज जसवंतसिंह जी का शासनकाल है। इनका निवासस्थान नगर था। भरतपुर के एक पंडित फतेहसिंह के अधिकार में उक्त दोनों पुस्तकों को देखा था।

अनेक कवियों ने 'रसविनोद' नाम से काव्यग्रंथ लिखे। कृष्णदास जी के इस ग्रन्थ का निर्माण काल इस प्रकार है—

एक ब्रह्म नत्र भक्ति, बीस भक्त जल भेदवत्।
सप्त जो ऋषि की शक्ति, ईहि जानै संमत यही।।

समय देने की यह बड़ी ही कूट प्रणाली है किन्तु कवि ने स्वयं ही एक स्थान पर १६२७ लिखा है। पुस्तक में चार पाद हैं—

१. नवरस वर्णन, २ नायक-नायिका भेद वर्णन, ३ दूतकादि वर्णन, ४ संचार आदि वर्णन। पुस्तक की पत्र संख्या केवल ३० है।

पुस्तक के अंत में लिखा है—

'इति श्री कृष्णदास कृत ग्रन्थ रसविनोद संचारी वरणन नाम चतुर्थ पाद ।। ४ ।। संपूर्णम्। शुभ मंगल।'

१ झिलमिलात तन ज्योति, द्वित वरणत रमणीयता।
लखि अनदेखी होति, मृदुता कोमल अंग वर।।

२ कुंद कली बीनन चली, साथ अली परभात।
जहां छबीली पग धरत, कनक भूमि दरसात।।

३ रूप अनूपम राधिका, भूषन भूषन अंग।
उमा रमा प्रमदा शची, लाजत तीय अनंग।।

दूसरा ग्रन्थ 'भक्ततरंगिनी' है जिसके साथ 'श्री स्वामिनी जी का प्रथम मिलाप' भी सम्मिलित है। इस पुस्तक में बल्लभ और विट्ठल के गुणगान उपरान्त कथा अथवा ग्रन्थ का आरम्भ होता है। इसमें सन्देह नहीं कि कवि बल्लभकुली था। स्वामिनी जी का मिलन 'राधा-कृष्ण' का मिलन है।

श्री बल्लभ बिट्ठल कमल, पदरज रस मकरंद।
सरस लुभानि भृंग मन, प्रिय-प्रिया बृजचंद ॥

इस पुस्तक के मार्जिन में अनेक टिप्पणियां भी लिखी हुई हैं। कविता बहुत ही सुन्दर है—

रमण अकेले नाहिं हरि, पत पत्नि भये आप।
सो श्री राधा कृष्ण कौ, बरनौं प्रथम मिलाप ॥

राधा का वर्णन—

सारी नील लसी तन गोरें।
दामिनी नील जलद चित चोरें ॥
चरणन बजनी पायल गाजी।
काम विजय दुंदुभि जनु बाजी ॥

६. दान कवि

१९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इनकी स्थिति मानी जाती है। यह महाशय जाति के ब्राह्मण थे और भरतपुर के महाराज जवाहरसिंह जी के पास रहते थे। इनकी भाषा में भरतपुर की छाया स्पष्ट लक्षित होती है। जवाहरसिंहजी के समकालीन भगवंत राय खींची के लिए भी इन्होंने कुछ छंद लिखे थे। हमारे देखने में इनकी दो पुस्तकें आईं——

१. ध्यानबत्तीसी, तथा
२. दानलीला

ध्यानबत्तीसी का उदाहरण——

इत पीत पट उत राजत है नीलबर,
इत मोरचन्द्रिका उतै उजास हास है।
इत बनमाला उत राजत है मोतीमाला,
इत खौर किए उत बेंदा को प्रकास है ॥
कुण्डल स्रवन इत राजत तरौना उत,
इत छुद्रघण्ट उत नूपर विलास है।
इत संग सखा उत सोहे संग सखीगन,
देखो दोऊ होड़ा होड़ी रचि राख्यौ रास है ॥

दान लीला – दान लीला में रोला के दो चरण तथा एक दोहे के उपरान्त 'कहें ब्रज नागरी' अथवा 'सुनो ब्रज नागरी' टेक आती है——

दान दैन तुम कहत दान नवग्रह कै होई।
विप्र पात्र जो होय वेद को पाठक कोई ॥

तुम अचार जानो नहीं, जाति और कुल और।
गऊ चरावत फिरत हौ, तुम दानी कित ठौर।।
कहूं ब्रज नागरी।
हम दानी हैं आदि लोंहि अपनी मन मान्यौं।
बलि संकल्प्यौ मोहि बांधि पाताल पठान्यौं।।
राम हुए छत्री हते, बसुधा लई छिनाय।
फिर विप्रन कूं हम दई, मोते कहूं न जाय।।
सुनो ब्रज नागरी।

जवाहरसिंह जी के प्रति--

नृपति जवाहर तुम्हारी हलदौर सुनि,
बैरिन के बलगनि फैलत फिराके सी।।
जिनकी नवेली अलबेली बन कलिन में,
बेली वेली रोवत अकेली सचि राके सी।।
भूलनि भरोसी भयरानी भयातुर सी,
झटक झटक भेटती 'भूधर' भिराके सी।।
चंद सी चमक चारु चपलासी चांदनी सी,
चंपक कली सी चामीकर सी चिराके सी।।

७. खुमानसिंह

ये नल्लवंशी सिरोहिया राव करौली के अच्छे कवि हुए हैं। महाराज मदनपाल ने इनको उमेदपुरा गांव और हाथी दे कर करौली के सब गांवों में पीढी दर पीढी चन्दा चालू कर दिया था, और भट्ट, चारण आदि की विदा का दानाध्यक्ष भी बना दिया था जिसमें महाराज से बिना पूछे १००) तक विदा देने का इनका अधिकार था। मदनपाल जी के सम्बन्ध में लिखते हैं--

१ तिलक विजै को निरभै को नव तेज पुंज,
जवर जिल्है को जोट जाहर अनीप को।
क्षत्रिन को क्षेत्र है नक्षत्रपति जू को वंश,
जगत प्रशंस सुख सजन समीप को।
करण उदार देवतरू सो पुनीत सार,
उम्मर दराज सजि साहस प्रदीप को।
चन्दन सो चन्द्र सो चहूंघा चारु चन्द्रिका सो,
दीप दीप छायो यश मदन महीप को।।

२ कल्पतरु कज्ज से सकल करणी के कोष,
प्रभू कौं प्रमाणिक प्रचण्ड बलवेश के,
भञ्जन दरिद्र गढ गञ्जन गनीमनके,
मालिक मलूक जंग जालिम हमेश के।

सुकवि खुमान मोद उनके उजोर वीर,
सज के समूह है रखैया बृज-देश के।
कृष्ण कुल-मंडन अरनि दल-दण्डन ये,
हाथी दे नहात हैं महीप मदनेश के॥

कविता इनकी वंश परंपरागत सम्पत्ति है। इनके पुत्र जीवनसिंह जी महाराज भंवरपाल के दरबार में कविता करते थे और उनके पुत्र कृष्णकरजी भी कवि रहे। जीवनसिंह जी का एक कवित्त देखिए—

उदित उमंगी महाराज श्री भंमरपाल,
करण करोली में प्रगट दरसावे जू।
हाथी देत हरषि हजारन कविन्द्रन कूं,
बाजन के वृन्दन कूं बांटत ही पावै जू।
जीवन अनेकन कूं बकसें इनाम भारी,
ग्रामन की बकस विशेष चित्त लावै जू।
लावे नहीं द्वार आवे संपति कुबेरहू की,
पावै जो सुमेर ताहि तुरत लुटावै जू॥

परिशिष्ट ४

सहायक ग्रन्थों की सूची

१—संस्कृत

१. अग्निपुराण
२. अभिनवगुप्त — लोचन
३. कालिदास — मेघदूत
४. कालिदास — शृंगारतिलक
५. केन, कठ, प्रश्न आदि उपनिषद्
६. गीता
७. जयदेव — गीतगोविन्द
८. दुर्गासप्तशती
९. धनंजय — दशरूपक
१०. पंचतंत्र
११. भरत — नाट्यशास्त्र
१२. भर्तृहरि — नीतिशतक
१३. भागवत — दशमस्कंध
१४. महाभारत — स. ध. प्रेस, मुरादाबाद
१५. मत्स्य पुराण — न. कि. प्रेस, लखनऊ
१६. मम्मट — काव्यप्रकाश
१७. वाल्मीकि — रामायण
१८. विश्वनाथ — साहित्यदर्पण
१९. सिंहासन द्वात्रिंशिका
२०. हितोपदेश

२. हिन्दी—

१. अलवर राज्य का प्राचीन इतिहास — हस्तलिखित
२. अरावली — मासिक पत्रिका के अंक
३. ओझा — प्राचीन भारतीय लिपिमाला
४. गलाब राय — नवरस
५. चरणदास — भक्ति सागर
६. जोशी — अलवर राज्य का इतिहास
७. तेजप्रताप — साप्ताहिक पत्र के अंक
८. दास, मित्र और हीरालाल की रिपोर्टें — का. ना. प्र. सभा
९. दीनदयालु — अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय

१०. दीक्षित — व्रजेंद्रवंशभास्कर
११. देव — सुजानविनोद
१२. देशराज — जाट जाति का इतिहास
१३. धीरेन्द्र वर्मा — अष्टछाप
१४. धीरेन्द्र वर्मा — हिन्दी भाषा का इतिहास
१५. नगेन्द्र — रीतिकाल की भूमिका
१६. नगेन्द्र वर्मा — महाराज ईश्वरसिंह का जीवन चरित्र
१७. परशुराम चतुर्वेदी — उत्तरी भारत में संत परम्परा
१८. पिनाकीलाल — हमारे राजाओं की कहानी
१९. पोद्दार — काव्यकल्पद्रुम
२०. व्रजपत्र — मासिक पत्र के अंक
२१. भरतपुर के साहित्यिक — हस्तलिखित
२२. भागीरथ मिश्र — हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास
२३. भारत वीर — साप्ताहिक के अंक
२४. मत्स्यनिर्माण — हस्तलिखित
२५. महेशचन्द्र — जयविनोद
२६. माणिक्य मैथिल — बख्तेशरहस्य-हस्तलिखित
२७. राम रतन — भक्तिकाव्य
२८. राजेश्वर प्रसाद — रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन
— हिन्दी साहित्य का इतिहास पर प्रभाव
२९. शुकदेव बिहारी — हिन्दी साहित्य का इतिहास
३०. शुक्ल, चतुरसेन, दास, मिश्रबन्धु, रसाल, शिवसिंह आदि
— व्रजलोक साहित्य का अध्ययन
३१. सत्येन्द्र — हिन्दी कविता में युगान्तर
३२. सुधीन्द्र — हिन्दी नाटक साहित्य
३३. सोमनाथ गुप्त — हिन्दी साहित्य की भूमिका
३४. हजारीप्रसाद — जयमत मंजरी
३५. हंस स्वरूप

३. अंग्रेजी

1. Administration Reports of Bharatpur, Alwar etc. for several years.
2. Alwar Directory.
3. Blockmann — English Translation of Ain-i-Akbari.
— Gazetteer of E. R. States
4. Drake Burkmann

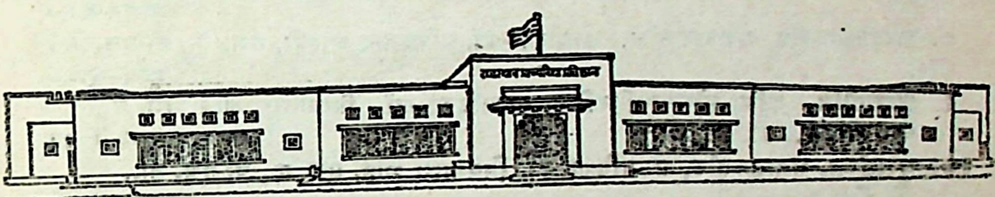
5. Gazetteer of India — Rajputana Vols. I, III
6. Glimpses of Alwarendra Silver Jubilee
7. Growse — Mathura Gazetteer
8. Grierson — Linguistic Survey of India
9. Hemchandra Ray — Dynastic History of Ancient India I, II
10. Hendley — Alwar and its Art Treasure
11. Imperial Gazetteer of India Vol. XI
12. Jha — Translation of Kavya Prakash
13. Jwala Sahai — Ever Loyal Bharatpur
14. Jwala Sahai — History of Bharatpur
15. Macdonald — India's Past
16. Peterson — Catalogue of the Sanskrit MSS. in Alwar
17. Powlett — Alwar Gazetteer
18. Powlett — Gazetteer of Karauli
19. Sarkar — Moghul Rule
20. Sharma — Bayana Through Ages
21. The three sieges of Bharatpur
22. Tod — Annals of Rajasthan
23. Walter — Gazetteer of Bharatpur

राजस्थान सरकार

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

(Rajasthan Oriental Research Institute)

जोधपुर



सूची-पत्र

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

अप्रेल, १९६३ ई०

राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

प्रकाशित ग्रन्थ

१. संस्कृत

१. **प्रमाणमंजरी**, तार्किकचूड़ामणि सर्वदेवाचार्यकृत, सम्पादक – मीमांसान्यायकेसरी पं० पट्टाभिरामशास्त्री, विद्यासागर। मूल्य—६.००

२. **यन्त्रराजरचना**, महाराजा सवाईजयसिंह-कारित। सम्पादक-स्व० पं० केदारनाथ ज्योतिर्विद्, जयपुर। मूल्य—१.७५

३. **महर्षिकुलवैभवम्**, स्व० पं० मधुसूदन ओझाप्रणीत, भाग १, सम्पादक—म० म० पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी। मूल्य—१०.७५

४. **महर्षिकुलवैभवम्**, स्व० पं० मधुसूदन ओझा प्रणित, भाग २, मूलमात्रम् सम्पादक-पं० श्री प्रद्युम्न ओझा। मूल्य—४.००

५. **तर्कसंग्रह**, अन्नंभट्टकृत, सम्पादक—डॉ. जितेन्द्र जेटली, एम.ए., पी-एच. डी., मूल्य—३.००

६. **कारकसंबंधोद्योत**, पं० रभसनन्दीकृत, सम्पादक—डॉ० हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी.। मूल्य—१.७५

७. **वृत्तिदीपिका**, मौनिकृष्णभट्टकृत, सम्पादक—स्व.पं. पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी, साहित्याचार्य। मूल्य—२.००

८. **शब्दरत्नप्रदीप**, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक—डॉ. हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच.डी.। मूल्य—२.००

९. **कृष्णगीति**, कवि सोमनाथविरचित, सम्पादिका—डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य—१.७५

१०. **नृत्तसंग्रह**, अज्ञातकर्तृक, सम्पादिका—डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य—१.७५

११. **शृङ्गारहारावली**, श्रीहर्षकविरचित, सम्पादिका—डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच.डी., डी.लिट्। मूल्य—२.७५

१२. **राजविनोद महाकाव्य**, महाकवि उदयराजप्रणीत, सम्पादक—पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., उपसञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य—२.२५

१३. **चक्रपाणिविजय महाकाव्य**, भट्टलक्ष्मीधरविरचित, सम्पादक—केशवराम काशीराम शास्त्री मूल्य—३.५०

१४. **नृत्यरत्नकोश (प्रथम भाग)**, महाराणा कुम्भकर्णकृत, सम्पादक—प्रो. रसिकलाल छोटालाल पारिख तथा डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य—३.७५

१५. **उक्तिरत्नाकर**, साधसुन्दरगणिविरचित, सम्पादक—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी, पुरातत्त्वाचार्य, सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य—४.७५

१६. **दुर्गापुष्पाञ्जलि**, म०म० पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पादक—पं० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी, साहित्याचार्य। मूल्य—४.२५

१७. **कर्णकुतूहल**, महाकवि भोलानाथविरचित, सम्पादक—पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., उप-संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। इन्हीं कविवर की अपर कृति श्रीकृष्णलीलामृतसहित। मूल्य—१.५०

१८. **ईश्वरविलासमहाकाव्यम्**, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक—भट्ट श्रीमथुरानाथशास्त्री, साहित्याचार्य, जयपुर। मूल्य—११.५०

१९. **रसदीर्घिका**, कविविद्यारामप्रणीत, सम्पादक—पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम.ए. उपसंचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य—२.००

२०. **पद्यमुक्तावली**, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक—भट्ट श्रीमथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य। मूल्य—४.००

२१. काव्यप्रकाशसंकेत, भाग १ भट्टसोमेश्वरकृत, सम्पादक—श्रीरसिकलाल छो० पारीख, मूल्य—१२.००
२२. ,, भाग २ ,, ,, मूल्य—८.२५
२३. वस्तुरत्नकोष, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०—डॉ० प्रियबाला शाह। मूल्य—४.००
२४. दशकण्ठवधम्, पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पादक—पं० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी। मूल्य—४.००
२५. श्री भुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्, सभाष्य, पृथ्वीधराचार्यविरचित, कवि पद्मनाभकृत, भाष्य-सहित पूजापञ्चाङ्गादिसंवलित। सम्पादक—पं. श्रीगोपालनारायण बहुरा। मूल्य—३.७५
२६. रत्नपरीक्षादि सप्त ग्रन्थ संग्रह, ठक्कुर फेरू विरचित, संशोधक—पद्मश्री मुनि जिनविजयजी, पुरातत्त्वाचार्य। मूल्य—६.२५
२७. स्वयंभूछन्द, महाकवि स्वयंभूकृत, सम्पा० प्रो० एच. डी. वेलणकर। मूल्य—७.७५
२८. वृत्तजातिसमुच्चय, कवि विरहाङ्करचित, ,, ,, ,, मूल्य—५.२५
२९. कविदर्पण, अज्ञातकर्तृक, ,, ,, ,, मूल्य—६.००

२. राजस्थानी और हिन्दी

३०. कान्हडदेप्रबन्ध, महाकवि पद्मनाभविरचित, सम्पादक—प्रो० के.बी. व्यास, एम. ए.। मूल्य—१२.२५
३१. क्यामखां-रासा, कविवर जान-रचित, सम्पादक—डॉ दशरथ शर्मा और श्रीअगरचन्द नाहटा। मूल्य—४.७५
३२. लावा-रासा, चारण कविया गोपालदानविरचित, सम्पादक—श्रीमहतावचन्द खारैड़। मूल्य—३.७५
३३. बांकीदासरी ख्यात, कविराजा बांकीदासरचित, सम्पादक—श्रीनरोत्तमदास स्वामी, एम. ए., विद्यामहोदधि। मूल्य—५.५०
३४. राजस्थानी साहित्यसंग्रह, भाग १, सम्पादक—श्रीनरोत्तमदास स्वामी, एम.ए.। मूल्य—२.२५
३५. राजस्थानी साहित्यसंग्रह, भाग २, सम्पादक—श्रीपुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम. ए., साहित्यरत्न। मूल्य—२.७५
३६. कवीन्द्र कल्पलता, कवीन्द्राचार्य सरस्वतीविरचित, सम्पादिका—श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत। मूल्य—२.००
३७. जुगलविलास, महाराज पृथ्वीसिंहकृत, सम्पादिका—श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत। मूल्य—१.७५
३८. भगतमाळ, ब्रह्मदासजी चारण कृत, सम्पादक—श्री उदैराजजी उज्ज्वल। मूल्य—१.७५
३९. राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिरके हस्तलिखित ग्रंथोंकी सूची, भाग १। मूल्य—७.५०
४०. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठानके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूची, भाग २। मूल्य—१२.००
४१. मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग १, मुंहता नैणसीकृत, सम्पादक—श्रीबद्रीप्रसाद साकरिया। मूल्य—८.५०
४२. ,, ,, ,, ,, २, ,, ,, ,, मूल्य—९.५०
४३. रघुवरजसप्रकास, किसनाजी आढाकृत, सम्पादक—श्री सीताराम लाळस। मूल्य—८.२५
४४. राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, भाग १ सं. पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय। मूल्य—४.५०
४५. राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, भाग २—सम्पादक—श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया एम.ए., साहित्यरत्न। मूल्य—२.७५
४६. वीरवांण, ढाढी बादरकृत, सम्पादिका—श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत। मूल्य—४.५०
४७. स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण-ग्रन्थ-संग्रह-सूची, सम्पादक—श्रीगोपाल नारायण बहुरा, एम. ए. और श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी, दीक्षित। मूल्य—६.२५
४८. सूरजप्रकास, भाग १—कविया करणीदानजी कृत, सम्पादक—श्री सीताराम लाळस। मूल्य—८.००
४९. ,, ,, २ ,, ,, ,, ,, मूल्य—९.५०
५०. नेहतरंग, रावराजा बुधसिंह कृत—सम्पादक—श्री रामप्रसाद दाधीच एम.ए. मूल्य—४.००
५१ मत्स्यप्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन, प्रो. मोतीलाल गुप्त, एम.ए., पी.एच.डी. मूल्य—७.००

12414

1234

प्रेसों में छप रहे ग्रंथ

संस्कृत

१. शकुनप्रदीप, लावण्यशर्मरचित, सम्पादक–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
२. त्रिपुराभारतीलघुस्तव, धर्माचार्यप्रणीत, सम्पादक–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
३. करुणामृतप्रपा, भट्ट सोमेश्वरविनिर्मित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
४. बालशिक्षाव्याकरण, ठक्कुर संग्रामसिंहरचित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
५. पदार्थरत्नमंजूषा, पं० कृष्णमिश्रविरचित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
६. वसन्तविलास फागु, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०–श्री एम. सी. मोदी ।
७. नन्दोपाख्यान, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०–श्री बी.जे. सांडेसरा ।
८. चान्द्रव्याकरण, आचार्य चन्द्रगोमिविरचित, सम्पा०–श्री बी. डी. दोशी ।
९. प्राकृतानन्द, रघुनाथकविरचित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्री जिनविजयजी ।
१०. कविकौस्तुभ, पं० रघुनाथरचित, सम्पा०–श्री एम. एन. गोरी ।
११. एकाक्षर नाममाला—सम्पादक–मुनि श्री रमणीकविजयजी ।
१२. नृत्यरत्नकोश, भाग २, महाराणा कुंभकर्णप्रणीत, सम्पा०–श्री आर. सी. पारीख और डॉ. प्रियबाला शाह ।
१३. इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध, सम्पा०–डॉ. श्रीदशरथ शर्मा ।
१४. हमीरमहाकाव्यम्, नयचन्द्रसूरिकृत, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
१५. स्थूलिभद्रकाकादि, सम्पा०–डॉ० आत्माराम जाजोदिया ।
१६. वासवदत्ता, सुबन्धुकृत, सम्पा०–डॉ० जयदेव मोहनलाल शुक्ल ।
१७. वृत्तमुक्तावली, कविलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट कृत; सं० पं० श्री मथुरानाथजी भट्ट
१८. आगमरहस्य, स्व० पं० सरयूप्रसादजी द्विवेदी कृत, सम्पा०–प्रो० गङ्गाधरजी द्विवेदी ।

राजस्थानी और हिन्दी

१९. मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग ३, मुंहता नैणसीकृत, सम्पा०–श्रीबद्रीप्रसाद साकरिया ।
२०. गोरा बादल पदमिणी चऊपई, कवि हेमरतनकृत सम्पा०–श्रीउदयसिंह भटनागर, एम.ए.
२१. राजस्थानमें संस्कृत साहित्यकी खोज, एस. आर. भाण्डारकर, हिन्दी अनुवादक–श्रीब्रह्मदत्त त्रिवेदी, एम.ए.,
२२. राठोडांरी वंशावली, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
२३. सचित्र राजस्थानी भाषासाहित्यग्रन्थसूची, सम्पादक–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
२४. मीरां-बृहत्-पदावली, स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण द्वारा संकलित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी ।
२५. राजस्थानी साहित्यसंग्रह, भाग ३, संपादक–श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी ।
२६. सूरजप्रकाश, भाग ३, कविया करणीदानकृत सम्पा०–श्रीसीताराम लाळस ।
२७. रुक्मिणी-हरण, सांयांजी झूला कृत, सम्पा० श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम.ए.,सा.रत्न ।
२८. सन्त कवि रज्जबः सम्प्रदाय और साहित्य डॉ० व्रजलाल वर्मा ।
२९. समदर्शी आचार्य हरिभद्रसूरि, श्री सुखलालजी सिंघवी ।
३०. पश्चिमी भारत की यात्रा, कर्नल जेम्स टॉड, अनु० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम.ए.

अंग्रेज़ी

31. Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts Part I, R.O.R.I. (Jodhpur Collection), ed., by Padamashree Jinvijaya Muni, Puratattvacharya.
32. A List of Rare and Reference Books in the R.O.R.I, Jodhpur, ed., by P.D. Pathak, M.A.

विशेष–पुस्तक-विक्रेताओं को २५% कमीशन दिया जाता है ।